मेरी दक्षिण भारत की संगीत यात्रा

–विष्णु नारायण भातखंडे

BVP-1744
15/11/17
G-2400
7/8

BVP CHECKED
DEC 2017

इं. क. सं. वि. ग्रन्थमाला क्रमांक–५

–मेरी दक्षिण–भारत की संगीत यात्रा

– विष्णु नारायण भातखण्डे

(पं. विष्णु नारायण भातखण्डे द्वारा सन् १९०४ में मराठी भाषा में लिखित दैनंदिनी "माझा दक्षिणेचा प्रवास" का हिन्दी अनुवाद)

अनुवादक

डा. अमरेश चन्द्र चौबे
प्रोफेसर एवं संकायाध्यक्ष–संगीत
इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय
खैरागढ़

भाषा परिष्कारक

श्री प्रभाकर नारायण चिंचोरे

भूतपूर्व अध्याचाय
इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय
खैरागढ़

प्रकाशक

इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय
खैरागढ़ (म. प्र.)

● प्रकाशक– कुल सचिव

इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय

खैरागढ़ (म. प्र.)

© सर्वाधिकार सुरक्षित (प्रकाशक)

● प्रथम संस्करण– १००० प्रतियां– १९८६

● मूल्य Rs 200.00

● मुद्रक– श्री मुद्रण एवम् प्रकाशन

रामसागर पारा, रायपुर, (म. प्र.)

आमुख

आज के विद्यार्थी के लिये भारतीय संगीत के इतिहास में १९वीं और २०वीं शताब्दी का विशेष महत्व हैं। २०वीं शताब्दी के आरम्भ में ही पंडित विष्णु नारायण भातखंडे पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर तथा अन्य कई संगीत-साधकों और चिंतकों का कार्यकलाप विशेष गतिशील और प्रभावशाली बना था।

आज के प्रचलित संगीत का संस्कृत के शास्त्रग्रंथों से कुछ संबंधबैठ पाता हैं या नहीं इस बलवती जिज्ञाशा को लेकर पंडित भातखंडे ने १९०४-५ में दक्षिण का प्रवास किया था। उस प्रवास का जो विवरण उनकी दॅनन्दिनी में निबद्ध हैं, वह कई दृष्टियों से अमूल्य हैं। दक्षिण के तत्कालीन विशिष्ट संगीतकारों, विचारकों के विवरण, उनकी चिन्तन पद्धति की दिशा अनेक संस्कृत ग्रंथों के विषय में हुई चर्चा इत्यादि के सारांश से तात्कालिक विचार सरणी एवं संगीत के शास्त्रग्रंथों के अध्ययन की स्थिति का बहुत कुछ अनुमान संभव हैं। इसी कारण यह दस्तावेज बहुत मूल्यवान हैं। इतिहास के मूल स्त्रोतों में इसका विशिष्ट स्थान बनेगा, इसमें संदेह नहीं।

प्रस्तुत दॅनन्दिनी में जो तथ्य दिये गये हैं, उन्हें वस्तुनिष्ठ दृष्टि से देखना इतिहास के विद्यार्थी का धर्म हैं। इस प्रकार के दस्तावेज में यदि कहीं व्यक्तिनिष्ठता की छाया आ गई हो, जो कि अस्वाभाविक नहीं हैं तो उसे अनावश्यक महत्व देने से कभी-कभी सत्य का अलोप हो जाता हैं। इसमें हम सबको सावधान रहना चाहिए। सावधानता का यह संकेत आज की परिस्थिति में कई दृष्टियों से आवश्यक हैं। मूल लेखक के प्रति न्याय करने के लिए तो उक्त सावधानता आवश्यक हैं ही, हमारी, अपनी समझ को यथार्थपरक और संतुलित रखने के लिये भी यह अनिवार्य हैं।

इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय से यह प्रकाशन हो रहा हैं, यह अत्यंत प्रसन्नता का विषय हैं। श्री प्र. ना. चिंचोरे और प्रोफेसर अमरेन्द्रचन्द्र चौंबे इस निमित्त साधुवाद के पात्र हैं।

गुरूवार,
भाद्री पूर्णिमा :
सं. २०४३, १८ सितंबर, १९८६

प्रेमलता शर्मा
उप-कुलपति,
इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय
खैरागढ़ (म. प्र.)

चित्र क्रम–१

दक्षिणोत्तर संगम के शिल्पकार

पं. विष्णु नारायण भातखंडे

साथ में :– १. अब्राहम पंडितर, तंजौर २. जाकिरुद्दीन खां, उदयपुर
३. अतिया बेगम फैजर रहमिन।

–: अनुक्रमणिका :–

निवेदन – अमरेशचन्द्र चौबे I-II

प्राक्कथन – प्रभाकर नारायण चिंचोर III-XV

			पृष्ठ
१.	यात्रा उद्देश्य		१
२.	मद्रास में आगमन	५ नवंबर १९०४	२
३.	श्री तिरूमल्लय नायडू एवं श्री शिंगराचार्य की खोज		२
४.	श्री शिंगराचार्य से भेंट– १७ नवंबर १९०४		३
५.	ओरियन्टल लाइब्रेरी		८
६.	श्री तिरूमल्लय नायडू सायंकाल		९
८.	सुश्री नागरत्नम् के गायन की बैठक १८ नवंबर १९०४		१७
९.	श्री नायडू से भेंट का पुनः प्रयत्न		२२
१०.	दक्षिण के कीर्तनों पर प्रतिक्रिया –रविवार २० नवंबर १९०४		२३
११.	श्री पंचापकेष्ट अय्यर से चर्चा २१ नवंबर १९०४		२५
१२.	पुनः श्री नारायण स्वामी एवं नायडू		२७
१३.	स्फुट विचार		३०
१४.	श्री नायडू का एक अन्य प्रश्न		३३
१५.	श्री त्यागैया के अवशिष्ट विचार		३३
१६.	श्री तिरूमल्लय नायडू से साक्षात्कार के बिन्दु		३४
१७.	प्रस्थान पूर्व शिंगराचार्य से पुनः वार्ता	२४ नवंबर १९०४	३६
१८.	संगीत नीर्थ, तंजोर	२५ नवंबर १९०४	३७
१९.	आगमन		३८
२०.	सरस्वती महल ग्रन्थालय		३९
२१.	मृदंगाचार्य श्रीदासस्वामी	२६ नवंबर १९०४	४०
२२.	विद्या विद्या		४४
२३.	पांडुलिपियां		४२
२४.	श्री निवास शास्त्री		३४
२५.	श्री नागोजी राव से साक्षात्कार		१३

पृष्ठ

२६. श्री गोपाल राव वकील से चर्चा – २७ नवंबर १९०४ ५१

२७. श्री नागोजीराव – चर्चा के निष्कर्ष ५१

२८. श्री जगन्नाथ भट्ट गोस्वामी, चर्चा – २७ नवंबर १९०४ ५३

२९. ताल पर एक स्फुट विचार तंजौर ३० नवंबर १९०४ ५४

३०. श्री जगन्नाथ पंत की नोटबुक १, दिसम्बर १९०४ ५९

३१. तंजौर में उत्तर–दक्षिण का आस्वाद ५९

३२. श्री कृष्णराव नाईक ६०

३३. श्री पंजावकेशी अय्यर ६१

३४. श्री जगन्नाथ भट्ट गोस्वामी का वादन ६३

३५. श्री सेतुराम की पखावज एवं श्री देव गोस्वामी का सरोद ६४

३६. श्री मुत्तैया भागवत एवं दासस्वामी ६५

३७. ग्रंथसंग्रह ३ दिसंबर १९०४ ६६

३८. ताल विषयक चर्चा ६७

३९. मार्गताल लक्षण ६८

४०. श्री मुरजाक्षर मालिका ७२

४१. श्री भट्टगोस्वामी की पुस्तक से ७७

४२. श्री कृष्णा आयंगार से चर्चा मदुरा ५ दिसंबर १९०४ ८०

४३. श्री सुब्रमणि अय्यर से भेंट ८५

४४. श्री कृष्ण स्वामी आयंगार से चर्चा ८९

४५. श्री पंचनंद से ताल चर्चा ९४

४६. एक स्फुट विचार, मदुरा, १ दिसंबर १९०४ ९९

४७. पुष्टीकरण – २० दिसंबर १९०४ १०२

४८. स्फुट विचार–परिवृद्धि १०३

४९. श्री एम. आर. सुन्दरम् (अय्यर) तालों के आघात देने की विधि १०७

५०. श्री निवास आयंगार से भेंट, चर्चा १०८

५१. सूचनाएं जो श्रीनिवास आयंगार से प्राप्त करनी है। १०५

५२. यति ११७

५३. स्फुट विचार–मदुरा छत्रम् १२१

पृष्ठ

५४. श्री सुब्राम दीक्षित के दर्शन १२२
५५. स्फुट विचार, इटैयापुरम् १४२
५६. स्फुट विचार, पं. शारंग देव की वंशावली, दक्षिणोत्तर संगम का स्वप्न १४७
५७. तिन्नवेली २० दिसंबर १९०४ १४८
५८. सरस्वती महल, पुस्तकालय, त्रिवेन्द्रम २३ दिसम्बर १९०४ १४९
५९. श्री रामास्वामी भागवत से वार्ता २५ दिसंबर १९०४ १५३
६०. महाराज केवल वर्मा का संगीत प्रेम, २६ दिसंबर १९०४ १५५
६१. श्री भीमाचार्य, एक नमूनेदार वार्ता, त्रिचनापल्ली २९ दिसंबर १९०४ १५६
६२. जाति प्रकरणम् त्रिचनापल्ली, ३१ दिसंबर १९०४ १५९
६३. मैसूर, ३ जनवरी, १९०५ १६८
६४. ग्रंथसूची, गर्वनमेन्ट ओरियन्टल लाइब्रेरी, मैसूर १७८
६५. श्री गोविन्दाचार्य के साथ श्री चिन्नुस्वामी की व्यथा-कथा १८१
६६. श्री सुन्दरशास्त्री से वार्ता १८२
६७. श्री कृष्ण आयंगार से सामवेद पर चर्चा १८४
६८. लेखमाला जिज्ञासुओं के लाभार्थ १८८
६९. रत्नाकार से एकवाक्यता कैसी हो १८८
७०. स्फुट विचार, संगीत की द्रविड़ पद्धति, बम्बई १८८
७१. घर लौटने पर २१२

निवेदन

भारतीय संगीत की तत्कालीन अस्तव्यस्त स्थिति से मर्माहत पं. विष्णु नारायण भातखण्डे ने दृढ़-संकल्प किया कि वे संपूर्ण देश का भ्रमण कर संगीत का अनुसंधान करेंगे तथा उसे व्यवस्थित एवं पद्धतिबद्ध कर पुनर्प्रतिष्ठित करेंगे । इसी निश्चय के क्रियान्वयन हेतु पं. भातखण्डे ने सर्वप्रथम सन् १८९६ में देश के पश्चिम में सूरत, भड़ोच, बड़ौदा, नवसारी, अहमदाबाद, राजकोट, बीकानेर, जामनगर, जूनागढ़, भावनगर इत्यादि नगरों की यात्रा की ।

सन् १९०४ में पं. भातखण्डे दक्षिण भारत में, मद्रास, मैसूर तंजौर, मदुरा, त्रिवेन्द्रम, इट्टैयापुरम्, रामेश्वरम् इत्यादि स्थानों में गये तथा वहां के लगभग सभी संगीतज्ञों से शास्त्रार्थ किया ।

सन् १९०७ में पूर्व दिशा के अन्तर्गत नागपुर, कलकत्ता, जगन्नाथपुरी, विजयानगरम्, इत्यादि तथा १९०८ में उत्तर भारत की यात्रा में जबलपुर, इलाहाबाद, वाराणसी,गया, मथुरा, आगरा, लखनऊ, जयपुर, बीकानेर, जोधपुर, उदयपुर इत्यादि नगरों में जाकर सांगीतिक स्थिति का आकलन किया । पं. भातखण्डे ने इन चारों दिशाओं में हुई यात्रा वृत्तान्तों की चार दैनंदिनी (डायरी) मराठी भाषा में लिखीं । इन दैनंदिनियों में प. भातखण्डे के प्रत्येक दिन की सांगीतिक घटनाओं, भेंटवार्ताओं आदि का विस्तृत वर्णन है ।

मैंने अपने विद्यार्थीकाल से पं. भातखण्डे जी की इन दैनदिनियों के संबन्ध में अनेक बार सुना पढ़ा था । मुझे उनका संपूर्ण वाङ्मय पढ़ने मिला परन्तु इन दैनंदिनियों के अप्रकाशित रहने के कारण वे रहस्यमय हो गई थीं तथा इनके संबंध में लगभग सभी संगीत जिज्ञासुओं के साथ मेरी भी जिज्ञासा बढ़ चुकी थी । यह मेरी हार्दिक कामना थी कि किस प्रकार मेरा इन चारों दैनंदिनियों में छिपे सांगीतिक संस्मरणों के द्वारा तत्कालिक सांगीतिक स्थितियों के यथार्थ चित्रण से साक्षात्कार हो ।

इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ के भूतपूर्व अध्याचार्य, श्री प्रभाकर नारायण चिंचोरे को पं. भातखण्डे की प्रथम दैनंदिनी "मेरा पूर्व का प्रवास" तो उपलब्ध नहीं हो सकी परन्तु अन्य तीन दिशाओं की दैनंदिनियों को प्राप्त कर उन्हें इस विश्वविद्यालय में सुरक्षित रखवा दिया था । डा. एम.आर. गौतम, उपकुलपति के कार्यकाल में स्व ठाकुर जयदेव सिंह के खैर गढ़ आने पर उनके सुझाव के कारण ही यह निर्णय लिया गया कि इन दैनंदिनियों को प्राथमिकता देकर, विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित करवाया जाय । श्री विमलेन्दु मुखर्जी, उपकुलपति ने इन दैनंदिनियों के मराठी से हिन्दी अनुवाद का कार्य जिस दिन मुझे सौंपा, मेरे हर्ष का ठिकाना न रहा । यह एक अत्यन्त पुनीत कार्य था जो मेरे द्वारा संपन्न होने

वाला था। मेरे गुरू स्व. पं. श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर तथा अन्य मराठी भाषी मित्रों के सान्निध्य में सीखी मराठी का उपयोग मैंने 'मेरा दक्षिण का प्रवास" इन दैनंदिनी के हिंदी अनुवाद हेतु प्रारंभ किया।

इसमें संदेह नहीं कि पं भातखंडे ने इन दैनंदिनियों में आज से लगभग ८० वर्ष पुरानी मराठी भाषा का प्रयोग किया था। अतः संपूर्ण अनुवाद हो जाने के उपरान्त, प्रारम्भ से ही इन दैनंदिनियों से जुड़े श्री प्रभाकर नारायण चिंचोरे जी को अनुवाद की भाषा परिष्कार का कार्य सौंपा गया। श्री चिंचोरे जी ने इसकी प्रस्तावना लिखने का अनुरोध भी स्वीकार किया साथ ही, दैनंदिनी में आये हुए संगीतज्ञों के चित्र उपलब्ध कराकर सहयोग प्रदान किया। अतः मैं, उनका तथा उन सभी व्यक्तियों का जिन्होंने इस दैनंदिनी के प्रकाशन में योगदान दिया हृदय से आभार मानता एवं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं।

पं. भातखण्डे-पुण्यतिथि की अर्धशताब्दि के सुअवसर पर उनकी कृति उन्हें ही समर्पित है। आशा है, सभी संगीत रसिक एवं जिज्ञासु इससे लाभान्वित होंगे।

अमरेश चन्द्र चौबे

अनुवादक

प्राक्कथन

छिहत्तर वर्ष के अपने जीवन काल में लगभग साढ़े सात हजार पृष्ठों का स्वकष्टा-र्जित एवं स्वनिर्मित मुद्रित साहित्य संगीतोद्धारक पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे ने नादोपासक देशबान्धवों को समर्पित किया था। उनकी जन्म शताब्दि के पावन पर्व पर संगीत के अध्ययन-अध्यापन विषयक उनके विचार, विविधि प्रकार के अभिनव प्रयोगों का वृत्तांत, सामूहिक शिक्षण की समस्याएं और उनका निराकरण जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर उनके द्वारा लिखे हुए लगभग ढ़ाइ सौ पृष्ठ "भातखण्डे स्मृति ग्रंथ"के रूप में इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय,खैरागढ़ म. प्र. प्र. ने पाठकों को उपलब्ध कराये थे। उनकी एक सौ पच्चीसवीं वर्षग्रंथी, अथवा पचासवीं पुण्य-तिथि के इस विशिष्ट प्रसंग पर उनके द्वारा मातृभूमि की चारों दिशाओं में की हुई शोधयात्राओं के स्वलिखित वृत्तांतों की प्रथम किश्त जिज्ञासुओं को उपलब्ध हो रही है । संगीत के लिये सम-र्पित उसी इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय का यह और एक सराहनीय प्रयास है। भातखण्डे स्मरण के इन दिनों प्रसंगों से किसी न किसी रूप में जुड़े रहने में मैं अपने को सौभाग्य शाली अनुभव कर रहा हूं।

बड़ा ही योजनाबद्ध जीवन पं. भातखण्डे ने जिया था। संगीत कला के प्रायोगिक प्रदर्शन द्वारा लोकानुरंजन करते रहना उनका लक्ष्य नहीं था। अटकलें, किंवदंतियों से छुटकारा दिलाकर वे संगीत को तर्कपूर्ण सिद्धान्तों के आधार पर स्थापित करना चाहते थे, तथा अन्य विद्याओं की भांति इसे विद्वानों के अध्ययन का विषय बनाना चाहते थे । वे इसमें निर्दोष एवं प्रचुर साहित्य निर्माण करके इसे विश्वविद्यालयीन अध्ययन के स्तर का दर्जा दिलाना चाहते थे। वे अध्ययन काल में ही संगीत विषयक विचार अपने मित्रों में तुरंत प्रकट करते और उनकी प्रतिक्रियाएं ध्यान में रख लेते, व समय व्यतीत किये बिना टिप्पणियां लिख लेते। उनका व्यक्ति-गत ग्रंथ संग्रह विशाल था। सभी पुस्तकों के तमाम पृष्ठ संदर्भों, प्रतिक्रियाओं व टिप्पणियों से भरे रहते। मूल लेखक के अलावा अन्यान्य लेखकों द्वारा प्रयुक्त शब्दावलियों, वैचारिक समानता अथवा भिन्नता के संदर्भों की भरमार जहां-तहां बिखरी हुई रहती। उन पर एक नजर डालते ही संपूर्ण ज्ञान कोष अपने आप प्रकट हो जाता। संस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू भाषाओं का उन्हें अच्छा ज्ञान था । संस्कृत, हिंदी, में तो फुटकर पद्य रचना करते रहने की आदत ही उन्होंने डाल रखी थी । वे प्राय: शास्त्री, पंडित, मौलवी, शायरों में उठ-बैठ कर शंकाओं का समाधान कर लेते। जिज्ञासु मित्रों के प्रश्नों का उत्तर तत्काल दे डालते अथवा आगामी बैठक में लिखित उत्तर तैयार रखते। उनका कमरा किताबों, कापियों, चिठ्ठी-पत्रादि के बंडलों से भरा रहता। कौनसा कागज कहां रखा है इसका उन्हें अचूक स्मरण रहता।जिज्ञासु मित्र का एक क्षण भी वें व्यर्थ में जाने नहीं देते। महत्वपूर्ण संवाद, चर्चा विस्तृत रूप से नोट कर रखते। काम करने की इसी शैली के फलस्वरूप संगीतोद्धार का, और वह भी उत्तरी

भारत के संगीत के उद्धार का असम्भव कार्य उन्होंने सम्भव कर दिखाया। अपनी विद्या के प्रति ऐसा निष्ठावान व्यक्ति विश्व के संगीत इतिहास में अनन्यतम है।

'भातखण्डे स्मृतिग्रंथ की छपाई के दिनों में भारतीय विद्याभवन, बम्बई के संगीत विभाग के एक शिक्षक श्री चौगुले ने पं. भातखण्डे की हस्तलिपि में एक सजिल्द कांपी मेरे पास भेजकर उसका उपयोग करने का आग्रह किया। कांपी खोलकर देखते ही मैं तो आश्चर्य में डूब गया। मित्रवर श्री चौगुले के पिता श्री पं. भातखण्डे के पास प्रायः जाकर उनके फुटकर लेख, टिप्पणी आदि पढ़ते रहते थे। सन् १९१० में श्री मल्लक्ष्य संगीतम् का प्रकाशन हुआ था। उसी प्रथमावृत्ति का स्वयं ग्रंथकार द्वारा किया हुआ मराठी अनुवाद पढ़ने की उन्हें इच्छा हुई। विद्या के आदान-प्रदान को सर्वोपरि मानने वाले पं. भातखण्डे अपने मित्र की इच्छापूर्ति में तत्काल जुट गए तथा संपूर्ण पुस्तक को संस्कृत से मराठी में भाषांतरित करके उन्हें भेंट स्वरूप दे डाली। सम्भवतः सन् १९११–१२ में लिखी हुई उस पुस्तिका की प्रतिलिपि खैरागढ़ विश्व–विद्यालय के संग्रह में आज भी होनी चाहिये। मूल लेखक की अपनी ही कलम से किये हुए उस अनुवाद का महत्व नकारा नहीं जा सकता।

स्व. शंकरराव कारनाड़ के पत्रसंग्रह से सैकड़ों गीतों की स्वरलिपि वाली ऐसी ही एक फाईल प्रो बी. आर. देवधर के पास पहुंच गयी थी, जिसमें प्रत्येक गीत के अंत में 'प्रियमित्र शंकरराव कारनाड़ के लिये' इस सूचना के साथ 'अण्गा' यह बोधचिन्ह भी अंकित है। सुसंस्कृत व उद्यत्त विचारों के प्रो. देवधर ने उक्त पांडुलिपि संगीत नाटक अकादमी, देहली तक पहुंचाते हुए सुरक्षित कर डाली। उनके ही अनुग्रह से गीतों की वह पांडुलिपि मुझे देखने को मिली और स्मृतिग्रंथ में उसका समग्र उपयोग भी किया गया। आदान–प्रदान से ही तो विद्या समृद्ध होती है। संगीत के क्षेत्र में लगभग ५०–५५ वर्ष तक अहोरात्र ठोस सेवा करने वाले इस महामानव के उन तमाम पत्रादि का क्या होगा जो अभी भी जहां-तहां बिखरे पड़े हैं ? भातखण्डे साहित्य-गंगा का प्रत्येक बिन्दु स्वरताल की हमारी धरोहर को खींचता रहे, उसे पल्लवित करता रहे, ऐसी कोई व्यवस्था समय रहते अवश्य हो जानी चाहिये।

पं. भातखण्डे के सभी पत्रादि अब ऐतिहासिक दस्तावेज तो हैं ही, इनके प्रत्येक अक्षर में उन तमाम गतिविधियों का सारांश है जिनके कारण वे अभूतपूर्व संगीतोद्धारक बन सके सोचने का, काम करने का उनका अपना एक विशिष्ट तरीका था। संगीत की उच्च शिक्षा में अपना समय और धन लगाने वालों को मनन–चिंतन का भातखण्डे जी वाला नुस्खा इन पत्रादि से अधिक स्पष्ट हुआ है। इस दिशा में शोध यात्राओं के ये वृत्तांत अवश्यमेव उपकारी सिद्ध होंगे।

ज्ञात जानकारी के अनुसार पं. भातखण्डे ने शोध यात्रा–वृत्तांतों की कुल चार फाइलें लिखी थी :–

(१) 'माझा पश्चिममेचा प्रवास, सन् १८९६ सूरत, भड़ौच, बड़ौदा, नवसारी, राजकोट, भावनगर का भ्रमण।

(२) 'माझा दक्षिणेचा प्रवास सन् १९०४:– मद्रास, तंजौर, मदुरा, रामेश्वरम्, रामनाद, इटैया-पुरम् तिवेल्ली (त्रावणकोर) किलोन, त्रिचनापल्ली, बंगलौर, मैसूर का भ्रमण। (दिनांक १४ नवंबर १९०४ से ४ जनवरी १९०५ तक)

(३) मझा पूर्वेकडील प्रवास सन् १९०७:– नागपुर, कलकत्ता, जगन्नाथपुरी, विजयनगरम्, दक्षिण हैद्राबाद का भ्रमण ।

(४) 'माझा उत्तरेचा प्रवास 'सन १९०८:– जबलपुर, इलाहाबाद, बनारस, गया, मथुरा, आगरा, लखनऊ, दिल्ली, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर का भ्रमण ।

वस्तुत: ये यात्रा वृतांत पांच फाईलों में होने चाहिये थे । सन् १८८७ से १८८९ तक पं. भातखण्डे ने करांची हाईकोर्ट में वकालत की थी । उन्होंने इसी अवधि में सिंध हैदराबाद लाहौर, कच्छ प्रदेश का भ्रमण करते हुए वहां के संगीतकारों से साक्षात्कार तथा अनेक पाण्डु-लिपियों का संग्रह भी किया था । हो सकता है एक पेशेवर वकील की हैसियत से किये हुए इस भ्रमण को फुटकर मानते हुए उन्होंने उसे अधिक महत्व नहीं दिया ।

इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ के पास इन यात्रा–वृतांतों की फाईलों में से मात्र तीन वृत्तांतों की प्रतियां हैं । जो बम्बई में किसी लिपिक द्वारा तैयार की गई थीं । स्वयं पं. भातखंडे की हस्तलिपि में लिखे हुए चारों वृत्तांतों का सुदीर्घ पठन–पाठन करने का सौभाग्य मुझे लखनऊ में अध्ययन काल में मिला था । इन वृत्तांतों को अपने शिष्य–मित्रों को मुक्तहस्त से पढ़ने के लिये देना पं. भातखण्डे की परिपाटी थी । स्व. डॉ. बालकृष्ण केसकर को इन वृत्तातों से संबंधित प्रत्येक व्यक्ति का नाम, साक्षात्कार तिथि, चर्चा के निष्कर्षों सहित स्मरण था जिस पर वे अपनी प्रतिक्रिया विस्तार से व्यक्त करते थे । इन फाईलों का बड़ा ही रोचक इतिहास है ।

जुलाई १९४० में मैरिस म्यूझिक कालेज, लखनऊ की स्नातकोत्तर कक्षा में मैंने प्रवेश लिया और गुरुवर पं. श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर के निर्देशन में अपना समय व्यतीत करने लगा । प्रात: ८ से १२–१ बजे तक गायन की तालीम चलती । कालेज से निवृत्त होकर भोजनोपरांत श्री एस. सी. आर. भट्ट और मैं गुरुवर के पास पुनः पहुंच जाते । परीक्षा के लिये संगीत रत्नाकर के प्रबंधाध्याय का गहन अध्ययन वे मुझसे कराना चाहते थे । मूल श्लोक और उस पर कल्लिनाथ की टीका गुरुवर विस्तार से समझाते । विषय को और अधिक सुस्पष्ट करते समय भातखण्डे साहित्य का संगीत परामर्श लेते रहते । पं. भातखंडे के व्यक्तिगत उपयोग की 'रत्नाकर' की जीर्णशीर्ण प्रति गुरुवर के हाथ में रहती । एक दिन अचानक मेरी पुस्तक उनके हाथ में, और उनकी पुस्तक मेरे हाथ में आ गयी । कौतुहलवश मैंने उनसे पूछा, शाङ्र्गदेव और और कल्लिनाथ के प्रत्येक शब्द की इतनी बारीकी से छानबीन करने के लिये आपको इतना समय कब और कैसे मिला ? ये सारी टिप्पणियां पं. भातखंडे की हैं, यह सुनते ही किस रत्न–राशि, को मैं टटोल रहा हूं, इसका अनुमान हुआ । गुरुवर के कमरे में एक चारपाई और छोटी सी गोलमेज के अतिरिक्त २–४ कुर्सियां रहती । कमरे में चारों ओर दीवालों से सटी हुई किताबों की आलमारियां और बक्से बिछे हुए रहते । समय बीतते उन अलमारियों और बक्सों

में रखे खजाने का उपयोग करते रहने की इजाजत मुझे मिल गई। 'श्रुति-स्वर पर लिखते समय 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में पं. भातखंडे ने, ऐसी उलझन भरी भाषा शैली का उपयोग क्यों किया, इस प्रश्न ने पं. भातखंडे की चारों शोध-यात्रा वृत्तांतों की डायरियों तक मुझे पहुंचा दिया। लखनऊ में मेरे आठ वर्ष के सतत निवास में पं. भातखंडे का वह संपूर्ण साहित्य संकलन मैं दिनरात देखते रहता, व उसका उपयोग भी करते रहता। दो-चार माह में बक्सों की सफाई, पोंछ, पुनः गिनती करके व दवाइयां छिड़क कर रख देता।

सन् १९५६ में परीक्षा संचालन के लिये मैं लखनऊ गया था। उस समय गुरुवर के कमरे में वह मूल्यवान साहित्य नहीं था। पूछने पर मालूम हुआ कि उस पर भातखंडे विद्यापीठ का मालिकाना अधिकार है, तथा उसे वाईस प्रेसिडेन्ट राय उमानाथ बली ने अपने पास दरियाबाद में रखा है। तबसे आज तक पं. भातखंडे की उन संस्मरणीय यात्रावृत्तांतों की उल्हासकारी, संयमी परंतु तिलमिलाहट भरी, दृढ़ निश्चयी, चिंतन से दीप्तिमान, थिरकनभरी हस्तलिपि का दर्शन नहीं कर सका।

सन् १९६२ में खैरागढ़ से पुनः एक बार लखनऊ गया। गुरुवर बंबई से आये हुए थे। 'डायरियों' की पूछताछ करते ही पुनः वही उत्तर मिला। उनका कहना था, "हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति" के चारों भाग प्रकाशित हो चुकने के बाद अब उन डायरियों का क्या महत्व रह गया है ? संभाषण, वाद विवाद, विषय का खण्डन-मंण्डन करते समय पं. भातखण्डे ने कहीं-कहीं कड़े शब्दों से प्रतिपक्षी पर प्रहार भी किये हैं, जिन्हें ज्यों के त्यों पढ़ना कतिपय पाठकों को अच्छा नहीं लगेगा। चूंकि ये डायरियां अभी तक अप्रकाशित रहीं है अतः इतने वर्षों बाद अब नये विवादों को जन्म देना उचित न होगा।" भातखण्डे साहित्य के दुरुपयोग के भी उनके अपने अनुभव थे। तथापि विशुद्ध चिंतन, सही दिशा में कार्य करते रहने का दृढ संकल्प, साधना तपस्या का वास्तविक अर्थ जो पं. भातखण्डे ने अपने आचरण से प्रस्फुटित किया, वह सेवाधारियों को भविष्य में प्रेरणा दायी सिद्ध होगा, इस तथ्य को भी नकारा नहीं जा सकता ! गुरुवर के सामने मन मारकर चुप हो जाना पड़ा। संयोगवश दो दिन बाद राय साहब से भेंट होते ही मैंने डायरियों की चर्चा छेड़ी। गुरुवर के विचारों से वे सहमत नहीं हुए। भातखण्डे स्मृतिग्रंथ के मेरे प्रयासों से वे परिचित थे। उसी क्षण मुझे अपने साथ लेकर गुरुवर के कमरे में प्रविष्ट हुए, और ज्येष्ठ भ्राता के लहजे में डायरियों की एक प्रतिलिपि मुझे भी सौंप देने का आग्रह किया। परीक्षा कार्य से निवृत्ति होकर खैरागढ़ लौटने समय विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलाधिपति स्व. हरि विनायक पाटस्कर से भेंट करते हुए डायरियां प्राप्त होने पर उनकी स्थायी सुरक्षा और सदुपयोग बाबत परामर्श चाहा। उन्होंने तत्काल अपने हाथ से नोट लिखकर उसे उन डायरियों में रख कर उन्हें राष्ट्रीय संपत्ति मानते हुए उनके प्रकाशन का अनुरोध किया। विश्वविद्यालय के पास जो प्रतिलिपियां है उनमें स्थान-स्थान पर लिपिक की त्रुटियां स्वयं डा. रातंजनकर की हस्तलिपि में सुधारी गयी है। डायरियों के पृष्ठ क्रमशः प्राप्त करते रहने का सिलसिला एक वर्ष तो ठीक चला, परंतु बाद में वह अचानक खंडित हो गया। अनेक प्रयत्न करने पर भी 'भाझा पश्चिमेचा प्रवास' की प्रतिलिपि उपलब्ध नहीं हो सकी। अतः यात्रा 'वृत्तांतों के क्रम में प्रथम खण्ड के स्थान पर द्वितीय खंड से ही पाठकों को संतुष्ट होना

पड़ेगा। इन पाण्डुलिपियों के सदुपयोग के प्रति सतत् सजग रहने वाले डॉ. रातंजनकर एवं राय उमानाथ बली के दिवंगत हो जाने के बाद यात्रा वृत्तांतों की बात मैं तो एकदम भूल गया था इनकी भूल प्रतियां और उनसे बनाई हुई अन्य प्रतियां कहां और किनके पास हैं यह एक रहस्य ही बन गया है। पूर्व में वर्णित पं. भातखण्डे के विशाल ग्रंथ संग्रह का, उनकी उन अमूल्य टिप्पणियों का और 'माझा पश्चिमेचा प्रवास' का अब क्या होगा ? सचमुच, यह तो राष्ट्रीय क्षति है। इस अमूल्य निधि का जो अंश खैरागढ़ विश्वविद्यालय को प्राप्त हो सका, उसके लिये उपर्युक्त दोनों महानुभावों के प्रति पाठक सदैव कृतज्ञ रहेंगे ऐसी आशा है।

वस्तुतः ये यात्रा वृत्तांत मूलतः मराठी भाषा में लिखे हुए हैं। इनका हिंदी में अनुवाद करना अत्यन्त कठिन कार्य है। १९०४ में लिखी गई मराठी, और आज की मराठी में पर्याप्त अंतर आ चुका है। तिस पर, वह एक ऐसी खाटी मराठी है जो भातखंडे जैसे पुरानी पीढ़ी के व्यक्ति ने लिखी है। अनेक स्थानों पर प्रतिशब्द देना सतत असम्भव प्रतीत हुआ। 'बहुजन-हिताय' को दृष्टि में रखते हुए किया गया डॉ. अमरेश चंद्र चौबे का यह प्रयास निश्चय ही सराहनीय है। महाष्ट्र गुजरात, बगाल, असम के बहुतांश संगीतज्ञ हिंदी भाषा और देव-नागरी से पर्याप्त परिचित हैं। कम से कम संगीत एक ऐसा क्षेत्र है, जहाँ भाषा और लिपि की कोई समस्या है ही नहीं। हिन्दी अनुवाद का सर्वत्र स्वागत होगा ऐसी आशा है।

पं. भातखण्डे की इन यात्राओं का उद्देश्य स्वयं उनके ही शब्दों में प्रस्तुत पुस्तक में पाठक पढ़ सकते है। लगभग पचास दिन तक दक्षिण के विस्तृत अचल में, दस संगीत-प्रसिद्ध स्थानों में जाकर, वहां के सुसम्प्रदायी विद्वानों से उन्होंने भेंट वार्ताएं की। उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि हमारा आज का संगीत पुराने ग्रंथों के संगीत से बहुत दूर चला गया है। पुराने ग्रंथों का वास्तविक अध्ययन किया हुआ कोई भी व्यक्ति अब जीवित नहीं है। ग्रंथों के प्रति सर्वत्र या तो अनास्था है, अथवा अंधानुकरण। तथापि उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में पुरानी परम्परा की चर्चा अधिक आग्रह पूर्वक की जाती है। दक्षिण में ग्रंथो की निकटता कितनी और कैसी है, इसका वे स्वयं अनुभव करना चाहते थे। और बन सका, तो उससे उत्तर के संगीत का सम्बन्ध स्थापित करते हुए संगीत को उन्नत विद्या की प्रतिष्ठा दिलाना वे चाहते थे।

कर्णाटकीय एवं हिंदुस्तानी संगीत का वर्तमान स्वरूप जानने पहचानने के लिये दक्षिण की सुप्रसिद्ध गानत्रयी और उत्तर के अति विशाल तानसेन सम्प्रदाय द्वारा गाये-रचे गए गीतानुबंधों का सूक्ष्म अध्ययन अत्यावश्यक है। ये गीत ही हमारे आज के संगीत की रीढ़ है। प्रो. व्ही. राघवन की मान्यता के अनुसार इस वास्तविकता की ओर प्रबुद्ध समाज का ध्यान आकृष्ट करने का और उसकी प्रतिष्ठा पुनः स्थापित करने का श्रेय राजा सौरीन्द्र मोहन टैगोर, रावबहादुर चिन्नास्वामी मुदलियार, सुब्राम दीक्षितर एवं पं. भातखण्डे को समग्र रूप से दिया जाना चाहिये। इनमें से प्रथम तीन का साहित्य-सृजन पं. भातखण्डे के पर्याप्त पूर्व हो चुका था अतः उन तीनों के अनुभवों का यशापयश का भरपूर लाभ पं. भातखण्डे ने उठाया। चिन्नास्वामी मुदलियार और सुब्राम दीक्षितर को तो उन्होंने अपना आदर्श मान लिया था।यात्रा प्रारंभ करने के पूर्व अनिवार्य रूप से साक्षात्कार करने वालों की सूचि में चिन्नास्वामी मुदलियार का नाम सर्वोपरि था। मद्रास जैसे अपरिचित स्थान में भाषा की कठिनाई होते हुये भी उनकी खोज में

वे निकल पड़े । चिन्नास्वामी की सुप्रसिद्ध पुस्तक 'ओरिएन्टल म्यूझिक इन युरोपियन नोटेशन' की प्रति तो प्राप्त कर ली परंतु पुडुपेट्टीया में उनके निवास स्थान को वे ढूंढ़ नहीं पाए । बाद में उनके शोचनीय निधन की जानकारी मिलने पर उन्हें अत्यंत निराशा हुई ।

इटैय्यापुरम् में ऋषितुल्य सुब्राम दीक्षितर से साक्षात्कार हो जाने पर जिसकी तलाश थी वह सबकुछ मिल जाने जैसा उन्हें लगने लगा । दक्षिण के संगीत की लम्बी परम्परा की एक शृंखला ही उनके हाथों में आ गयी थी । संगीत के विशाल भंडार को प्रसारित और प्रचारित करने का श्रेय सुब्राम दीक्षित को ही दिया जाता है । वे अपने समय की युगांतकारि परम्परा के पांचवे क्रम में वे उसके सर्वमान्य प्रतिनिधि थे । उनसे मिलकर अपने हिंदुस्तानी संगीत को शाङ्गदेव से जोड़ते हुए उसे शास्त्रशुद्ध आधार पर स्थापित करना अब सम्भव हो सकेगा, यह विश्वास पं.भातखंडे के मन में जागृत हुआ था । दक्षिणोत्तर संगम का मार्ग अब उनके लिये प्रशस्त हो गया था । यात्रा प्रसंगों में वे जहां–जहां गए, सभी ने सुब्राम दीक्षितर की ओर संकेत किया । प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्राय: सभी संगीतकार दीक्षितर परम्परा से जुड़े हुए प्रतीक हुए अपने यात्रा वर्णनों में इस अतिविशिष्ट कुटुम्ब का परिचय देना पं. भातखंडे के लिये अप्रासंगिक एवं अनावश्यक था । तथापि आज के पाठकों को इनमें से कुछ व्यक्तियों की जानकारी आवश्यक प्रतीत, होती है ।

व्यंकटेश्वर दीक्षितर (समय अज्ञात):– मूलत: उत्तर– अर्काट जिले में विरिंची पुरम् के इस कश्यप गोत्रीय स्मार्त ब्राम्हण परिवार के मूल पुरुष व्यंकटेश्वर दीक्षितर तंजौर जिले में गोविंदपुरम् के निवासी थे ।

रामस्वामी दीक्षितर (१७३५–१८१७) इनका जन्म गोविंदपुरम में हुआ । पिता व्यंकटेश्वर के मृत्यु के बाद तंजौर में वीरभद्रैया से इन्होंने संगीत की शिक्षा ली । इससे पूर्णत: संतुष्ट न होकर महान व्यंकटमखी के एक वंशधर गोविन्द वैद्यनाथ दीक्षित से इन्होंने वीणा की शिक्षा प्राप्त की, तथा बहत्तर मेलकर्ता और उनके जन्यरागों के लक्षणों में वे पारंगत हुए । वे संस्कृत और तेलगु के अच्छे विद्वान थे व गीतरचना में विख्यात थे । गोविंदपुर की भजनों को परम्परा का भी इन्हें पर्याप्त ज्ञान था । भगवान त्यागराज के सुप्रसिद्ध मंदिर के आकर्षण में वे तिरूवरूर में, जो तंजौर के मराठी शासकों का अध्यात्मिक पीठस्थान था, रहने लगे । मंदिर में वे गायक के पद पर नियुक्त थे । यहीं पर उन्होंने त्रिमूर्ति पूर्व की अत्यंत विद्वत्तापूर्ण आकर्षक गीत रचना की । इनके तीन पुत्र और एक पुत्री का जन्म यहीं पर हुआ था कालांतर में मनाली (मद्रास) के एक रईस जमीदार गुड्डूकृष्ण मुदलियार से इनका परिचय हुआ और वे उन्हें मनाली ले गये । उनके तीनों पुत्र पिता से तालीम लेकर यहीं पर बड़े हुए । रामस्वामी को युरोपीय स्वरलिपि का ज्ञान था । पाश्चात्य संगीत के जानकारों से इनके परिचय का लाभ उनके तीनों पुत्रों को भी मिला । वे गीतरचना के अतिरिक्त नयी रागरचना में भी कुशल थे । आज का लोकप्रिय राग 'हंसध्वनि' रामस्वामी दीक्षितर का ही आविष्कार है । मनाली में ही इनका परिचय प्रसिद्ध व्यंकटमखी के एक अन्य वंशज गोविंद दीक्षित से हुआ, जिन्होंने व्यंकटमखी की परम्परा से इनकी कितनी घनिष्टता है यह जानना चाहा । रामस्वामी ने तत्काल रागलक्षण

की जानकारी 'परीक्षा पद्य' की रचना करके सुनायी और उन्हें आश्वस्त किया। अत्यंत प्रसन्न होकर गोविंद दीक्षित ने व्यंकटमखी की 'चतुर्दण्डि प्रकाशिका' का कुछ अंश रामस्वामी दीक्षितर को प्रदान किया, जो आगे चल इस परिवार की पैतृक सम्पदा बन गया।

मुत्तस्वामी दीक्षितर (१७७५–१८३५):– अपने वंश के अतिविशिष्ट वैणिक गायकों में रामस्वामी के ये ज्येष्ठ पुत्र थे, जिन्हें सर्वाधिक ख्याति प्राप्त हुई है। आज के कर्णाटक संगीत के शिल्पकारों की सर्वमान्य संगीत त्रयि' में आयु में कनिष्ट होने से इन्हें तृतीय स्थान पर रखा जाता है। पांच वर्ष तक बनारस में रह कर उत्तर के संगीत से इनका सम्पर्क हुआ। ध्रुपद गायन से ये प्रभावित हुए थे। परंपरागत शास्त्रीय सिद्धातों पर आधारित संस्कृत, तेलगु तथा तमिल भाषा में उन्होंने असंख्य गीतरचना की। इनकी सभी कृतियां व्यंकटमखी की विशुद्ध वैज्ञानिक प्रणाली के अत्यंत निकट होने से संगीतकारों में बड़े आदर से देखी जाती हैं। 'संगीत सम्प्रदाय प्रदर्शनी' में उनकी २१० कृतियां प्रकाशित हुई है। अंग्रेजी बैन्ड की धुनों पर रचित इनके ३३ नोटु–स्वर–साहित्य दक्षिण में बहुत लोकप्रिय है। 'संगीत त्रयि' के द्वितीय क्रम के सदस्य श्यामा शास्त्री से इनकी अत्यंत घनिष्टता थी उन्होंने अपने दोनों भ्राताओं को भी संगीत के अटूट ज्ञान भंडार से अवगत कराया था। दक्षिण में इनके विषय में यथेष्ट साहित्य उपलब्ध है 'दीक्षितर गान त्रयि' नाम से प्रसिद्ध एक अन्य त्रयि के भी ये वरिष्ट सदस्य थे। "गुरुगुह" इस बोधचिन्ह का उपयोग करते हुए उन्होंने गीत रचना की। कनिष्ट भ्राता बालुस्वामी के पास इट्टैयापुरम् में इनका देहावसान हुआ।

चिन्नास्वामी दीक्षितर (१७७८–१८२३) = 'संगीत सम्प्रदाय प्रदर्शनी' में इनकी योग्यता के विषय में गौरवपूर्ण भाषा में लिखा गया है। रामस्वामी के द्वितीय पुत्र चिन्नास्वामी की मात्र दो कृतियां उपलब्ध हैं परंतु आज भी संगीतकारों में वे अत्यंत लोकप्रिय है। इनकी नेत्रज्योति चली जाने से वे कनिष्ट भ्राता बालुस्वामी के पास रहे। ज्येष्ठभ्राता मुत्तुस्वामी एवं श्यामा शास्त्री को गीतरचना में सहायता देते थे। मात्र ४५ वर्ष की आयु में मनाली में इनका देहावसान हुआ।

बालुस्वामी दीक्षितर (१७९६–१८५९)–रामस्वामी के ये कनिष्ट पुत्र गायन और वीणा के अलावा सितार, स्वरभाट,मृदंग तथा वायलिन में भी निष्णात् थे। मनाली में चिनाय्या मुदलियार के संरक्षण में अंग्रेजी संगीत के एक शिक्षक से तीन वर्ष तक वायलिन का अभ्यास किया था। इस विदेशी वाद्य को दक्षिण में प्रचारित करने का श्रेय बालुस्वामी को ही दिया जाता है। जिसके फलस्वरूप गायन के प्रदर्शन में आज वायलिन संगत का एक अनिवार्य साज बन गया है। व्यंकटमखी व वंशधर गोविंद दीक्षित के साथ पिता रामस्वामी का जो संवाद हुआ था उसमें उनके साथ मुत्तुस्वामी और बालुस्वामी भी उपस्थित थे। गोविंद दीक्षित ने अपनी परम्परा के एक राग में गीत सुनाकर राग का नाम जानना चाहा। बालुस्वामी ने केवल राग का नाम ही नहीं बल्कि उसका परंपरागत परिचय देते हुए उसी 'टक्क' राग में अन्य एक गीत भी सुनाया। बाल अवस्था में ही उन्होंने अपनी परंपरा का गहन अध्ययन कर लिया था। ज्येष्ठ भ्राता मुत्तुस्वामी सदैव स्वर भ्रमण करते। द्वितीय बंधु चिन्ना स्वामी के देहावसान का

बालुस्वामी को इतना दुख हुआ कि वे मनाली का निवास छोड़कर अनेक तीर्थस्थानों का भ्रमण करते रहे। रामेश्वरम् में इटैयापुरम् के व्यंकटेश्वर इडाप्पा (१७६१–१८३१) इनकी विद्या पर लुब्ध हुए, और इन्हें अपने साथ इटैयापुरम् ले गये। यहां पर उन्होंने इडाप्पा महाराज के दोनों पुत्रों को संगीत की शिक्षा दी। बालुस्वामी के गायन–वीणा वादन एवं गीतरचना कौशल पर इडाप्पा महाराज इतने प्रसन्न थे कि एक प्रसंग पर उन्होंने बालुस्वामी को एक हजार मुद्राएं और सुवर्णालंकारों से विभूषित किया। निवास के लिये अच्छा मकान पहले ही दे चुके थे। संस्थान गायक एवं राजगुरू होने से इन्हें उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा मिली थी। अपने बन्धुद्वय की खोज में मुत्तुस्वामी एक बार इटैयापुरम् आये और फिर वहीं स्थायी रूप से रहने लगे। इटैयापुरम् में बालुस्वामी का विवाह हुआ, और अन्नपूर्णा नामक एकमात्र कन्या रत्न की प्राप्ति हुई, जिसका विवाह शिवराम अैय्यर से हुआ। इसी अन्नपूर्णा के पुत्र सुब्राम को, राजा के स्नेह एवं आग्रह पर पांच वर्ष की अवस्था में बालुस्वामी ने गोद लिया, वे अपने वंश की समस्त गूढ़–तर विद्या में निष्णात किया।

सुब्राम दीक्षितर (१८३९–१९०६) :– दीक्षितर परम्परा की त्रिमूर्ति अर्थात् मुत्तुस्वामी–चिन्नास्वामी–बालुस्वामी को पुत्र संतान न होने से इस महान परम्परा को सुरक्षित रखने का इडाप्पा राजघराने ने निश्चय किया और कतिपय होनहार बालकों की जन्मपत्रियों की सूक्ष्म छानबीन की गई। अंततः बाल सुब्रमणियम् अैय्यर नामक अपनी ही पुत्री के पुत्र को गोद लेकर सुब्राम दीक्षितर बनाते हुए उसे तेलगु, तमिल, संस्कृत भाषाओं के साथ–साथ संगीत की वंशगत विद्या में संलग्न किया गया। मात्र सत्रह वर्ष की आयु में सुब्राम दीक्षितर ने राजा के सामने 'तान वर्णम्' की रचना करके सुनाई। राजा ने सोचा कि ऐसी रचना तो बालुस्वामी जैसे किसी परिपक्व व्यक्ति की ही हो सकती है, अतः सुब्राम दीक्षितर की परीक्षा लेने के विचार से उन्हें कहा गया कि "यमन राग में (जो उत्तर में तो एक प्रसिद्ध राग है परंतु दक्षिण में कुछ ही वर्ष पूर्व प्रचार में आया था) जातिस्वरम् की रचना मात्र आधे घण्टे में तैयार कर लें। उक्त रचना की पल्लवी और अनुपल्लवी के बाद उसमें ऐसी स्वरावली रखी जाए जो धैवत से प्रारंभ होकर विलंबित, मध्य और द्रुत लय में जाकर उलटे क्रम से लौटते हुए मुत्तयी स्वर का प्रदर्शन करके समाप्त हो।" कुछ ही देर बाद वे पुनः लौट आये। सुब्राम दीक्षितर ने समस्यापूर्ति करते हुए राजा को संतुष्ट किया और दो शालें तथा दस मुद्राएं, सम्मान स्वरूप प्राप्त की। पिता बालुस्वामी के बाद वे भी राजगायक और राजगुरू पद पर नियुक्त हुए। लम्बी अवधि तक इटैयापुरम् के पांच राजाओं के कार्यकाल तक इन्हें संरक्षण प्राप्त था। इन सभी के साथ इनके संबंध गुरुशिष्यवत् सम्मान जनक थे।

सन् १८९९ में राम व्यंकटेश्वर इडाप्पा के राज्याभिषेक के प्रसंग पर 'ओरिएन्टल म्यूझिक इन् युरोपियन नोटेशन' के लेखक रावबहादुर चिन्नास्वामी मुदलियार से उनकी प्रथम भेंट हुई और चिन्नास्वामी के कार्यों से वे अत्यंत प्रभावित हुए। पुराने विचारों के परम्परा-वादी सुब्राम दीक्षितर का स्वरलिपि की उपयोगिता पर विश्वास नहीं था। चिन्नास्वामी के निरंतर प्रयत्न करते रहने पर गमकों के सूक्ष्म उच्चारण के लिये अनेक चिन्हों का निर्धारण करते हुए १९०१ के प्रारंभिक दिनों में तेलुगू में एक स्वर लिपि बनाई गई और त्रिमूर्ति के अनेक

गीतों का स्वरकरण तैयार किया गया। १९०२ के दिसंबर माह तक 'संगीत सम्प्रदाय प्रदर्शनी' के १७०० मुद्रित पृष्ठों का खाका चिन्नास्वामी की सहायता से तैयार किया जाकर मुद्रण कार्य भी प्रारंभ किया गया। तेलुगु लिपि की इस (दो खण्डों की) पुस्तक का प्रकाशन १९०४ में इडाप्पा महाराज के प्रोत्साहन से सम्पन्न हुआ। इस पुस्तक में प्रकाशित साहित्य निम्नानुसार है:-

शाङ्गदेव से सुब्राम दीक्षितर तक ७६ संगीतकारों के चरित्र; गमकों के चिन्हों का परिचय; वीणा और गायन में इन गीतों के प्रयोग से सम्बन्धित समस्याओं का निराकरण, प्राचीन एवं वर्तमान पद्धति में संगीत के लक्षणों का स्पष्टीकरण, ७२ मेल और उनके जन्य रागों के लक्षण तथा उनके लक्षण गीत; अन्यान्य गीत व उनकी संचारियाँ जो पिछली तीन पीढ़ियों से केवल उनके ही सम्प्रदाय में उपलब्ध थी। व्यंकटमखी के १७० पद और ४१ चित्तताने; मुत्तुस्वामी की २२१ कृतियां; १० प्रबंध गान; त्यागराज-श्यामा शास्त्री के कतिपय पद; रामस्वामी की रागमालिकाएं; कुछ पद; लगभग १०० सूलादि; वर्णम् स्वर जाति, दारु, तथा अन्य अनेक फुटकर तमिल गीत। ऐसा विविध प्रकार का विपुल सांप्रदायिक खजाना सुब्राम दीक्षितर ने प्रथमबार संगीत संसार को प्रदान किया।

सन् १९०५ में २५० पृष्ठों की 'प्रथम अभ्यास पुस्तिका' अथवा 'प्राइमर' नामक एक और पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तक की अंग्रेजी प्रस्तावना पं. भातखंडे ने लिखी थी।

दीक्षितर परंपरा ने वाद्यों के सामूहिक वादन, तथा नृत्य के सामूहिक प्रदर्शन पर भी ऐसा ही मौलिक कार्य किया है। सुब्राम दीक्षितर की तमिल में लिखी हुई 'वल्ली भरत' नृत्यनाटिका भी दक्षिण में बहुत लोकप्रिय हुई है।

सुब्राम दीक्षितर के पास पुराने हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह था, जिसमें उनके पितामह को तंजौर के गोविंद दीक्षित से प्राप्त 'चतुर्दंडिप्रकाशिका' की संपूर्ण पांडुलिपि सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी। इसी पांडुलिपि के आवश्यक अंशों को पंडित भातखंडे ने प्राप्त कर (१९१७ में) प्रथम बार उसे प्रकाशित किया और संगीत क्षेत्र में चेतना निर्माण की। उधर, व्यंकटभरवी के तर्क शुद्ध सिध्दांतों को आघात पहुंचाने वाली जो गतिविधियाँ उस समय दक्षिण में चल रही थीं (संगीत चूडामणि का प्रकाशन व प्रचार इत्यादि), उन्हें देखकर सुब्राम दीक्षित अत्यंत व्याकुल थे। अतएव 'संगीत संप्रदाय प्रदर्शनी' का प्रकाशन करके उन्होंने व्यंकटभरवी की परम्परा को तो पुनः प्रस्थापित कराया ही और साथ ही साथ त्रिमूर्ति की अनेक रचनाओं को भी उनके विरूद्ध स्वरूप में प्रथम बार प्रकट कराया। बहु चर्चित बलजापेट की पांडुलिपि उनके पास थी, जिसका उपयोग करते हुए श्यामा शास्त्री की १०० कृतियां, तथा मुत्तुस्वामी के ५०० क्षेत्रीय गीत प्रकाशित करने का इनका विचार था, जो बाद में सफल न हो सका। बहुसंख्य विद्वानों का कहना है कि दक्षिण में संगीत का आज जो इतना विशाल साहित्य भंडार उपलब्ध है उसका श्रेय केवल सुब्राम दीक्षितर को ही है। अपनी दक्षिण की यात्रा पूर्ण करके बंबई पहुंचने पर पंडित भातखंडे इन्हें अपने पास बुला लिया और शेष अन्यान्य विषयों पर वार्ता परामर्श का दौर और आगे बढ़ाया।

मुत्तुस्वामी (उमनाम आम्बी दीक्षितर) (१८६३–१९३६) इनका जन्म इटैयापुरम् में हुआ। अपनी सुदीर्घ परम्परागत विद्या के समस्त रहस्यों की शिक्षा इन्हें अपने पिता से प्राप्त हुई थी। उन्हें यूरोपीय स्टाफ नोटेशन की भी जानकारी थी। पं० भातखण्डे तथा सुब्राम दीक्षितर के बीच वार्तालाप के समय आम्बी दीक्षितर सदैव साथ में रहते। सुब्राम दीक्षितर तेलुगू में बात करते जिसे अंग्रेजी में अनुवादित करके भाषा विषयक अड़चनें वे ही दूर करते। संगीत विद्या का साहित्य प्रकाशित करने का अपने पिता का व्रत उन्होंने आगे बढ़ाया। बहुजन लाभार्थ वे इटैयापुरम् से मद्रास आये तथा वहां उन्होंने सैकड़ों शिष्य निर्माण किये जिनमें डी. के. पट्टम्मल एवं टी. एल वेंकटराम अैय्यर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आम्बी दीक्षितर के पुत्र तिरूवरूर बालुस्वामी दीक्षितर अपने अति विशिष्ट कुटुम्ब की आज एकमात्र जीवित निशानी है।

चिन्नास्वामी मुद्लियार (देहावसान १९०२) विगत शताब्दी के अंतिम पच्चीस वर्षों में कर्नाटक संगीत के उद्धार की दिशा में जिन शिक्षित महानुभावों ने अपना सर्वस्व समर्पित किया। उनमें इनका नाम सर्वोपरि है। वे क्रिश्चियन मतावलम्बी थे। उस जमाने में अंग्रेजी में एम.ए. तथा मद्रास सेक्रेटरीएट में उच्च पद पर उल्लेखनीय जिम्मेदारी वहन करने के कारण वे रायबहादुर उपाधि से सम्मानित थे। मुख्यत: त्यागराज, श्यामा शास्त्री, मुत्तुस्वामी की कृतियां भावी पीढ़ियों के लिये उनके मूलरूप में सुलभ करने की इच्छा से यूरोपीय स्टाफ नोटेशन का उपयोग करते हुए लगभग ८०० कृतियां उन्होंने स्वर लिपिबद्ध कर ली थीं। बहुचर्चित वलजापेट पांडुलिपि इनके पास थी। १८८६ में सेवानिवृत्त होने के पूर्णकालिक संगीत सेवा में संलग्न हो गये। सस्ते दामों पर सगीत साहित्य उपलब्ध कराने के विचार से अपने भाई के सहयोग से उन्होंने संगीत का एक प्रेस ही स्थापित कर लिया। जहां 'ओरिएन्टल म्यूजिक इन यूरोपीय नोटेशन' शीर्षक से एक पुस्तिका का क्रमवार प्रकाशन १८९२ में प्रारंभ किया। यूरोपीय स्टाफ नोटेशन की खर्चीली छपाई की यह पुस्तिका मात्र एक रुपये में बेचते रहने के साहसिक प्रयास में उन्हें लगातार खर्च का बोझ झेलना पड़ा व इसके साथ ही संगीत की स्वरलिपि के इस नितांत अभिनव उपक्रम की उल्टी-सीधी प्रतिक्रियाओं का भी सामना करना पड़ा। फिर भी हतोत्साहित न होते हुए सात क्रमिक प्रकाशनों को इन्होंने पूर्ण किया। पुस्तिकाएं लगभग निःशुल्क ही बाँटते रहे। अंत में हार मानकर प्रेस बंद कर दी और पुस्तकें रद्दी के भाव में बेचनी पड़ी। जिन्दगी भर का कमाया हुआ धन इस प्रकार से नष्ट हो जाने पर अत्यंत विपन्नावस्था में इनका निधन हो गया।

इसी दरम्यान १८९८ में इटैयापुरम् में चिन्नास्वामी की मुलाकात सुब्राम दीक्षितर से हुई और 'संगीत संप्रदाय प्रदर्शनी' के तेलुगू प्रकाशन की योजना ने साकार स्वरूप लिया। गीतों के स्वरोच्चारण (गमक) निर्दोष एवं यथावत् बनाने के लिये चिन्नास्वामी ने नाना प्रकार के चिन्ह निश्चित किये : लगभग १९०१ में चिन्नास्वामी के अथक परिश्रमों के फलस्वरूप वर्तमान संगीत की इस आदि पुस्तक की प्रेस कापी तैयार होकर छपाई भी प्रारंभ हो गयी थी इतने में अचानक इनका देहावसान हो जाने से सुब्राम दीक्षितर की योजना को बड़ा आघात पहुंचा। संगीतोद्धार के पं० भातखण्डे के प्रयत्नों पर चिन्नास्वामी मुद्लियार और सुब्राम दीक्षितर के

अनुभवों का गहरा प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है। डॉ. राघवन इन्हें अवतारी पुरूष मानते है।

शिगराचार्य – थाचुर बंधुद्वय नाम से विख्यात इस विद्वान संगीतकार के प्रकाशन निम्नानुसार है –

१.	संगीत कलानिधि	–	१८८९
२.	गायन सिद्धांजनम्	–	१८९०
३.	गणेन्दु शेखरम्	–	१८९३
४.	गायक लोचन	–	१९०२
५.	संगीत मंजरी	–	१९३८

त्यागैय्या – त्यागराज परम्परा के गायकों के इस परिवार में इनके पिता महान गायक त्यागराज के निकटवर्ती शिष्यों में थे। त्यागैया ने 'स्वरपल्लवी' नामक पुस्तक का प्रकाशन १८९६ में किया था।

जगन्नाथ भट्ट गोस्वामी – प्रयत्न करने पर भी इनकी अधिक जानकारी नहीं मिल सकी। पं० भातखण्डे को अनेक हस्तलिखित नोट इनसे प्राप्त हुए थे। फुटकर ही सही, परन्तु इन सभी का उपयोग पं० भातखण्डे ने यथास्थान कृतज्ञता पूर्वक किया था। १९१४ में प्रकाशित 'राम लक्षणम्' को देखिये।

तिरूमल्लय नायडू – आंग्ल विद्या विभूषित म्यूनिसिपल मेम्बर तथा उस समय के विभिन्न क्लबों में संगीत विषयक गतिविधियों के संयोजक थे। छात्रों के उपयोगार्थ 'संगीत विद्या संजीवनी' नामक छोटी सी पुस्तक प्रकाशित की थी।

नागोजीराव – तंजौर में वरिष्ठ शिक्षण अधिकारी थे। सगीत विषयक गति-विधियों में लिप्त एवं विद्वान गायकों से आपका घनिष्ठ सम्पर्क था। चिन्नास्वामी मुद्लियार के निधन के बाद सुब्राम दीक्षितर को उनके प्रकाशनों में सहायता देते रहे। उनकी दोनों पुस्तकों की तेलुगू प्रस्तावना नागोजीराव ने लिखी है जिसमें उस समय की संगीत विषयक परिस्थितियों पर गहराई से प्रकाश डाला गया है। लगता है, यात्रा प्रसंगों के बाद भी लम्बे समय तक पंडित भातखण्डे से इनका सम्पर्क बना रहा।

रामनाद श्रीनिवास अयंगार – दक्षिण की यात्रा प्रारम्भ करने के पूर्व से ही पंडित भातखण्डे का इनसे निकट परिचय था। यात्रा समय में भी बीच–बीच में ये बराबर उनसे संपर्क रखते थे। अपने मित्रों के लाभार्थ सुब्राम दीक्षितर को बम्बई आने निमंत्रण देते ही एक सुलझे विचार का दुभाषिया मानकर पं० भातखण्डे ने श्रीनिवास अयंगार को भी निमंत्रित किया था। वे प्राय: पं०–भातखण्डे से मिलने बम्बई आते थे। वर्षों तक यह सिलसिला चला।

उत्तर के वर्तमान संगीत का सीधा संबंध तानसेन एवं उनके वंशधरों की गायन प्रणाली से एवं शार्ङ्गदेव के मूलभूत सिद्धांतों से प्रस्थापित करने का अतंयत तर्कशुद्ध प्रयत्न पं.

भातखंडे ने किया था। वर्तमान संगीत का स्वरुप ग्रंथों के जिन सिद्धांतों से मेल नहीं खाता, उनके स्थान पर नये सिद्धांत अपनाना युक्तियुक्त होगा, ऐसी उनकी मान्यता थी। किन्तु इसके साथ ही वे यह भी जानते थे कि ऐसे नये सिद्धांत ग्रहण करते समय भी पूर्ववर्ती ग्रंथों से उनका तालमेल तो रखना ही होगा अन्यथा उसे मान्यता मिलना कदापि संभवन होगा। अतः हमारे आज के संगीत के सिद्धांत संगीत रत्नाकर के सिद्धांतों का ही एक विकसित स्वरुप है यह तथ्य स्थापित करने का वे सतत प्रयत्न करते रहे। दक्षिण की अपनी यात्रा में लक्ष्य और लक्षण की इन क्षीण कड़ियों को बलवान करने में वे सफल हो सकें। वस्तुतः संगीत रत्नाकर में शार्ङ्गदेव ने भी किन्हीं आमूलाग्र नये सिद्धांतों को जन्म नहीं दिया था। आक्षेप तो यहां तक किया जाता है कि अपने समय के संगीत का संपूर्ण चित्रण करने की अपेक्षा पूर्ववर्ती संगीत पर ही उन्होंने अधिक जोर दिया। फलतः शार्ङ्गदेव का यह समग्र व विराट प्रयास एक प्रकार से संगीत का इन्साइ-क्लोपीडिया बन गया है। साम्राज्यों का विखंडन, राजनीतिक उथल-पुथल की तेरहवी सदी का संगीत तो वह अवश्य ही नहीं है। परन्तु ऐसी निराशापूर्ण स्थिति में भी वर्तमान की अपेक्षा विगत ज्ञान को जैसे-तैसे बचाये रखने के महान उपकारी कार्य का श्रेय तो निःसंदेह उन्हें ही दिया जाना चाहिये। अन्यथा सिघण राजकुल के विनाश के साथ-साथ शार्ङ्गदेव के वशंधर-शिष्य-पशिष्यों का क्या हुआ, यह कोई नहीं जानता। स्वयं शार्ङ्गदेव का काल सिघण राजा के काल में गिना जाता है। वे कितने वर्ष तक जीवित रहे, कोई नहीं जानता। जो भी हो दक्षिण में जो किम्वदंतियां प्रचलित हैं, उनके अनुसार शार्ङ्गदेव की परम्परा होनप्पाचार्य एवं तानप्पा-चार्य ये दो नाम ऐसे पाये जाते हैं जिनकी वजह से इस परम्परा का संबंध व्यंकट मरवी के (१६३५) संगीत से जोड़ा जा सकता है। व्यंकटमरवी के इन्हीं सिद्धांतों को सुब्राम दीक्षितर ने दक्षिण में प्रसारित किया और पं. भातखंडे ने उन्हें उत्तर भारत में प्रगठित किया। संगीत ज्ञान की इस लंबी यात्रा के सोपान इस प्रकार से भी समझी जा सकते हैं:-

	यात्रा सोपान क्रम	संरक्षण	काल	स्थान
१	'संगीत रत्नाकर'	पं. शार्ङ्गदेव	१२४७	शिंगणापुर (सातॉरा)
२	'चतुर्दण्डि प्रकाशिका	पं. व्यंकटमरवी	१६३५	तंजौर
३	अक्षय गीत संपदा	व्यंकटमरवी से दीक्षितर-त्रयी	१६३४ से १८५८	तंजौर-मनाली
४	'संगीत संप्रदाय प्रदर्शनी'	पं. सुब्राम दीक्षितर	१९०४	इटैयापुरम्
५	'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्'	पं. वि. ना. भातखण्डे (चतुरपंडित)	१९१०	बम्बई

प्रस्तुत लेख में परिशिष्ट के रुप में यही यात्रा सोपान अधिक विस्तार से देने का विनम्र प्रयास किया गया है। शार्ङ्गदेव की परम्परा के समान ही व्यंकटमरवी की परम्परा भी

विखंडित हो गई थी। उनके पिता गोविंद दीक्षित भी अत्यंत विद्वान व्यक्ति थे। संगीत सुधा नामक इनकी पुस्तक इधर कुछ ही वर्ष पूर्व प्रकाश में आई। गोविंद दीक्षित स्वयं को शार्ङ्गदेव की परम्परा में मानते थे। व्यंकटमखी, व्याकरण, मीमांसा, साहित्य और संगीत के महान ज्ञाता थे और इन विद्याओं में पारंगत ऐसे अनेक शिष्यों की परम्परा के निर्माता थे। विख्यात अप्पैया दीक्षित के कनिष्ट भ्राता नीलकंठ दीक्षित तथा तंजौर के विद्वान राजवंश के स्वयं रघुनाथ नायक (१६३६) इनके शिष्य थे। इन्हीं रघुनाथ नायक का कार्यकाल दोनों दीक्षित पिता-पुत्रों के काल भी गिना जाता है। रघुनाथ नायक के समय में व्यंकटमखी दरबारी गायक थे। सन् १६४६ में गोलकुंडा के नवाब ने तंजौर पर आक्रमण करके बहुत विध्वंस किया। विजयराघव नायक राज्य छोड़कर भाग गये लेकिन बाद में पुनः लौट आये। सन् १६७२ में मदुरा नायक से इनका पुनः युद्ध हुआ, जिसमें वे मारे गये। इस अनिश्चितता का लाभ उठाकर मराठा वंश के व्यंकोजी ने तंजौर जीत लिया। तंजौर के इसी अंतिम नायक राजा के समय चतुर्दण्डि प्रकाशिका की पाण्डुलिपि गुप्त रुप से छिपा ली गई थी और इसी के साथ व्यंकटमखी का परिवार भी अनेक वर्षों तक विस्मृत सा हो गया। इस पाण्डुलिपि के प्रकाश में लाने का श्रेय राम स्वामी दीक्षिततर, सुब्राम दीक्षितर एवं पं. भातखंडे को दिया जाता है। पं. भातखंडे ने इसका स्वर मेल-राग अध्याय 'प्रायवेट सर्क्युलेशन' की सूचना सहित प्रकाशित करके बिना शुल्क वितरित किया।

पं. भातखंडे के प्रस्तुत यात्रा वृत्तांतों से ऐसे अनेक प्रमाण खोजे जा सकते हैं जो इसी निष्कर्ष को स्थापित करते हैं कि जो ज्ञान उन्होंने अनन्त परिश्रम से प्राप्त किया वह वस्तुतः दीक्षितर, व्यंकटमखी तथा शार्ङ्गदेव की परम्परा का ही था। दक्षिणोत्तरसंगम की अपनी लक्षपूर्ति में आगामी वर्षों में ये निर्विवाद रुप से सफल हुए थे। 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' तथा 'हिन्दु-स्तानी संगीत पद्धति' के प्रतिपाद्य विषय नये वर्तमान परिवेश में उपर्युक्त तीनों परंपराओं के ज्ञान सागर का स्फुल्लिंग है इसके संकेत जहां-तहां पाये जा सकते हैं। पं. भातखंडे के प्रदीर्घ चिंतन का यह तालमेल जिज्ञासु पाठकों के समक्ष रखने का कार्य प्रस्तुत प्रकाशन द्वारा अधिक प्रभावी रुप से हो सकेगा ऐसा विश्वास है।

"सिद्धांति च निसर्गेण संतः सन्मार्गगामिनी"

इन्दौर : गुरुपौर्णिमा,
२१ जौलाई १९८६

-प्रभाकर चिंचोरे

परिशिष्ट

काश्मीर से कन्याकुमारी तक संगीत एकात्मकता की लम्बी यात्रा :-

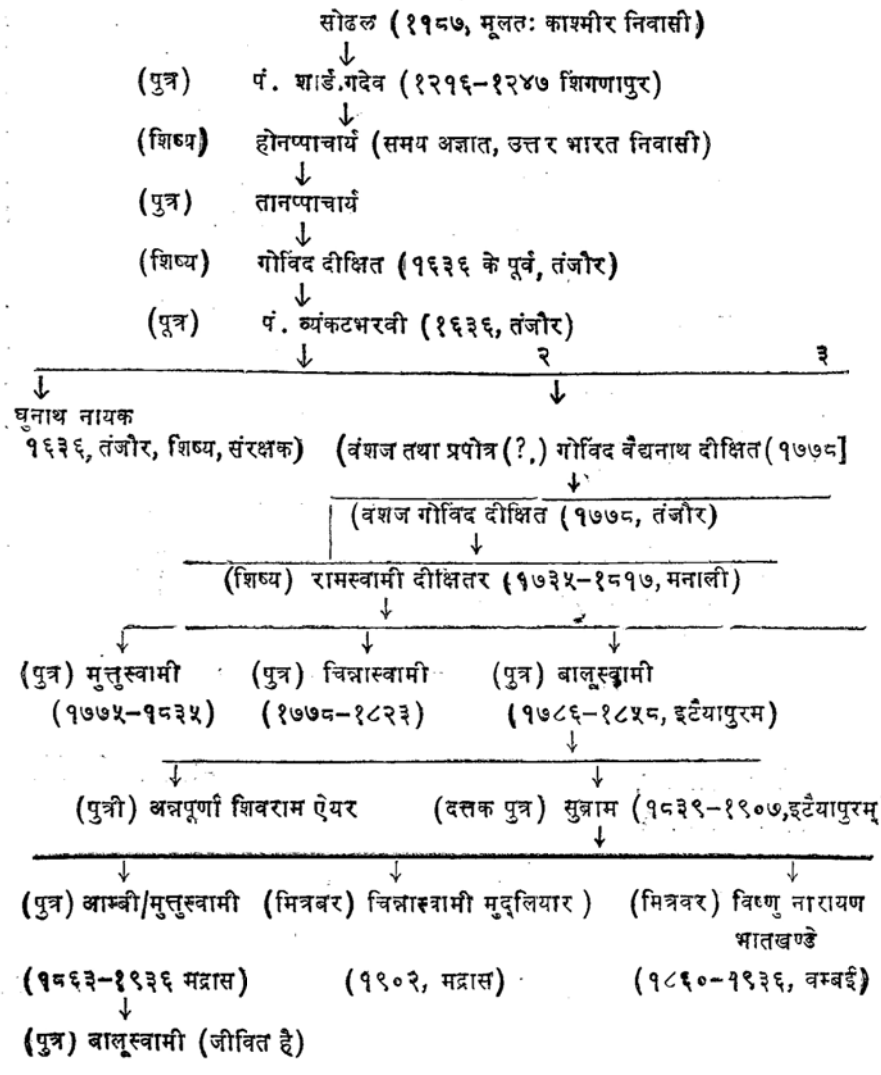

श्री त्यागराज स्वामी

सन् 1767 - 1847

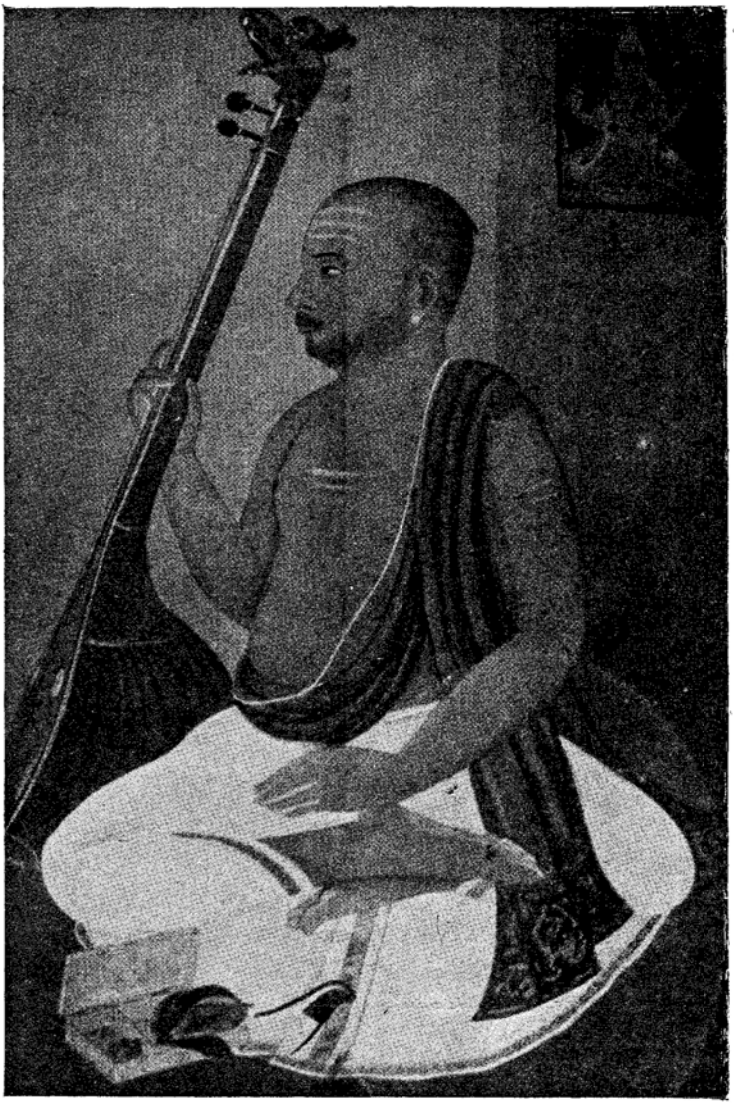

श्री श्यामा शास्त्री

सन् 1762 - 1827

श्री मुत्थुस्वामी दीक्षितर
सन् 1775 - 1835

यात्रा-उद्देश्य

सभी लोगों की यह धारणा है कि हमारा 'हिंदू संगीत' अत्यंत प्राचीन होने के कारण उसका एक बड़ा महत्वपूर्ण शास्त्र है। इस प्रकार की धारणा नितांत गलत है ऐसा कहने की कोई इच्छा नहीं है। क्योंकि ऐसा कह देना कभी शोभनीय भी नहीं होगा। अपने समक्ष, अनेक संस्कृत ग्रन्थों के नाम मौजूद है तथा इनमें से कुछ ग्रन्थ तो देखने को भी मिलते है। परन्तु मन में एक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि यह ग्रन्थ-शास्त्र और जिसे आज हम संगीत मानते है उसमें कोई संबंध है भी या नहीं ? यदि है तो वह कितने प्रमाण में है ? सभी प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ पढ़कर तथा इनका योग्य अर्थ समझकर हम समर्थ हो जायें, फिर भी यदि उस ग्रन्थ द्वारा संगीत के आज के प्रचलित स्वरूप से संबंध स्थापित न हुआ, अर्थात् यदि प्रचलित संगीत ग्रन्थ-गत-संगीत से एकदम भिन्न प्रतीत हुआ, तो ऐसी स्थिति में ग्रन्थ के अध्ययन की खटपट में पड़ने का क्या प्रयोजन होगा ? मैंने इस प्रश्न पर बहुत बार सोचा है। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उसका उत्तर ठीक से दे पाना कठिन ही है। रत्नाकर, दर्पण, रागबोध, परिजात इत्यादि ग्रन्थों द्वारा वर्णित संगीत नियमों के अनुसार आज हम गाते है, क्या हम यह कह सकेंगे ? पुस्तकों में वर्णित स्वरों के नाम आज भी प्रचार में है अथवा उनमें वर्णित रागों के नाम मात्र अभी प्रचार में है। इतने से ही कैसे कहा जा सकता है कि प्राचीन संगीत हम आज भी गाते है ? ग्रन्थगत-रागवर्णन उन उन नामों के आज के रागों पर लागू करके देखा परन्तु वह मेल नहीं खाता। ग्रन्थों के वर्णन के अनुसार राग-रचना कर यदि हम गावें तो वह हमको पसंद ही नहीं आवेगी तथा हम कुछ का नवीन नामकरण करेंगे। यदि ऐसा हुआ तो ग्रंन्थ किसलिए सीखा तथा उस सीखे हुए को संगीत-वेत्ता किसलिए कहा जाय ? आज के प्रचलित संगीत की दृष्टि से पंडित का मूल्य क्या है ? ये प्रश्न आपके सम्मुख सहज ही उत्पन्न होते है कि, नहीं ? यदि रहते है तो आप उनका उत्तर क्या देंगे ? रत्नाकर में दशविध राग तथा इनके नाम एवं लक्षण बताए हैं। परन्तु उस पुस्तक के नियमों के अनुसार इसमें के पाँच राग गाकर भी कोई दिखा सकें अथवा आज के नियमित रागों से उनका मेल स्थापित कर सके ऐसा एक भी विद्वान क्या आज मिलेगा ? तो फिर वे ग्रन्थ किसलिये है ?

आज के प्रचलित संगीत को स्वतंत्र मानकर नवीन ग्रँथ रचना करके रखना ठीक है ऐसा कहने वाले लोग है।

इस प्रकार के विचार मेरे मन में भी बार-बार आते हैं। मुझे कुछ मित्रों से यह सूचना मिली थी कि यदि मैं मद्रास क्षेत्र का प्रवास करूँ तो मुझे इस महत्व के प्रश्न पर जानकारी तथा स्पष्टीकरण मिलना संभव है। वहां जो संगीत प्रचार में है उसे ग्रंथाधार है। ग्रथों के नाम, राग-लक्षण आदि ग्रंथ में लिखे प्रमाण के अनुसार दिखाई पड़ते हैं। मित्रों की यह सूचना मैंने बहुत दिनों से ध्यान में रक्खी थी तथा योग्य अवसर मिलने पर उस अंचल में प्रवास करना भी निश्चित किया था। ईश्वर की कृपा से आज वह योग आया.....वहां जाना निश्चित हुआ है वहां के सभी महत्व के शहरों में जाकर शोध करना है वहां जिस ग्रंथ के आधार से संगीत प्रचलित

है उस ग्रंथ को प्राप्त कर "रत्नाकर" आदि प्राचीन ग्रंथों से उसका क्या संबन्ध है मैं यह शोध करने का प्रयत्न करूँगा। यदि मैं ऐसा कर सका तो एक उपयोगी काम हाथ से हुआ ऐसा समझूंगा।

मद्रास
१५ नवम्बर १६०४

मद्रास में आगमन –

आज मिति को, प्रात: छ: बजे मैं इस नगर के स्टेशन पर आ पहुंचा। मेरे बम्बई के मित्र श्री रतन सी लीलाधार ने मेसर्स ठाकुर एण्ड सन्स हेतु सिफारशी पत्र दिलवा दिया था। अत: मैंने रवाना होने के पहिले उन्हें एक पत्र डाक द्वारा भेज दिया था तथा तार भी किया था। स्टेशन पर उतरते ही देखता हूं कि श्री रघुनाथ ठाकुर के भांचे श्री शिवशंकर मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं। विशिष्ट वेषभूषा में होने के कारण उन्होंने मुझे पहिचान लिया। नाम–गांव की पहि–चान के उपरांत हमारे सामान सहित, गाड़ी में बैठाकर सावकार-पेंठ में, एकाम्बरेश्वर के समीप एक बड़े घर में, जिसे हमारे लिये देख रखा था, ले गये मकान प्रशस्त और सुविधा-पूर्ण है। अत: एक बड़ी चिंता समाप्त हुई। हमने अपने सामान को व्यवस्थित जमा लिया तथा एक कमरे में अपना संगीत कार्यालय भी स्थापित किया। घर से चलते समय ऐसा निश्चय कर लिया था कि चूंकि यह यात्रा रामेश्वर एवं संगीत-प्रेम हेतु समर्पित है अत: निरूपयोगी पहिचान करते, औप-चारिक भेंट लेते देते बैठना नहीं है। इसी प्रकार, कोर्ट, दरबार देखने भी नहीं जाना क्योंकि, ऐसा करने से कोई लाभ न होकर केवल समय भर नष्ट होगा। दूसरा निश्चय यह किया था कि इस यात्रा में शास्त्रकार-संगीतज्ञ (पुरूष) जहां भी हों वहां जाने का प्रयत्न करना है। स्त्रियों का गायन सुनने की विशेष आवश्यकता नहीं है। कारण, उनसे शास्त्रीय ज्ञान पाने की संभावना बहुत कम होती है। संगीत–पंडितों से जो वाद-विवाद अथवा संभाषण होंगे, वे जैसे होंगे वैसे प्रश्नोत्तर शैली में लिख लेना चाहिये। यह स्पष्ट है कि संभाषण के प्रत्येक शब्द व बहस को केवल याददाश्त के सहारे बाद में लिख सकना सँभव नहीं है। अत: इसका उपाय यही है कि प्रत्येक विद्वान के साथ चर्चा के मुद्दे पहिले से लिख रखना और प्राप्त उत्तरों को संक्षेप में नोट कर लेना। संगीत चर्चा के अतिरिक्त एक दिन भी व्यर्थ जाने नहीं देना है। अस्तु।

श्री तिरूमल्लय नायडू एवं श्री शिंगराचार्य की खोज –

भोजन आदि समाप्त कर प्रथम श्री तिरूमल्लय नायडू को खोजने बाहर निकला। मैं इन सज्जन को प्रत्यक्ष नहीं पहिचानता परन्तु इनसे मेरा पत्र व्यवहार हुआ था। ये सज्जन 'इस्ट एण्ड वेस्ट" में लेख लिखते है। इन्होंने स्वयं लिखी "विद्या-संजीवनी" नामक एक छोटी सी पुस्तक मुझे बम्बई भेजी थी। इसे पढ़कर मैंने उनसे कुछ शंकाओं का निवारण चाहा था। इन्होंने इनका समाधान भली भाँति नहीं किया था, इसी कारण प्रत्यक्ष भेंट कर उनसे स्पष्टी–करण प्राप्त करने की मेरी इच्छा है। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि वे ट्रिप्लीकेन में रहते है। यह मोहल्ला मेरे निवास से काफी दूर हैं अत: घर आकर इनके पास पत्र वाहक द्वारा पत्र भिजवाया। पत्र वाहक ने रात्रि को यह समाचार लाया कि वे कल सुबह आठ बजे मिल सकेंगे। वे उससे प्रत्यक्ष नहीं मिले थे। उनके घर वालों ने ऐसा बताया। अत: कल प्रात: पत्र वाहक को वहां भेजकर समय व स्थल निश्चित करना होगा।

१७ नवम्बर १९०४

आज प्रातः पत्रवाहक पत्र लेकर श्री नायडु के घर पुनः गया। उनसे मुलाकात हुई। उन्होंने मुझे आज सायंकाल पांच बजे माउण्ट रोड पर कास्मोपोलिटन क्लब में बुलाया है। श्री नायडू नगर में है तथा आज वे आवेंगे यह ज्ञातकर अत्यन्त आनंद हुआ। ये गृहस्थ इस विषय पर वर्तमान पत्रों में लेख लिखते हैं तथा अच्छे विद्वान हैं, ऐसा लगता है। मेरे मित्र श्री ठाकुर साहिब ने कहा कि वे बी. ए. है तथा नगर पालिका के सदस्य भी है। यह बात महत्व की है कि इतना सब होते हुए भी उनका यह अभ्यास भी चला हुआ है। मुझे इन ग्रंथों के संबंध में उनसे बड़ी जानकारी प्राप्त करनी है। उन्होंने मुझे लिखा था कि यहां संस्कृत ग्रंथ पढ़े हुए व्यवसायिक संगीतज्ञ नहीं हैं। परन्तु केवल जिज्ञासु बहुत से हैं। मुझे लगता है कि इनसे भी भेंट कर इस विषय पर चर्चा करने से बहुत लाभ होगा। अतः देखें आज शाम को कैसा क्या जमता है।

प्रातः, शिंगराचार्य से भेंट–

आज सुबह मुझे कुछ कामकाज न होने के कारण मन में यह विचार आया कि बम्बई रहते हुए कुछ दिनों पूर्व मद्रास के एक संगीत शास्त्री शिंगराचार्यलु से उनकी क्रमबद्ध संगीत–पुस्तकें प्राप्त की थीं, उनकी ही खोज की जावे। तथा यदि वे यहां हो तो उनसे भेंट कर इस संबंध में भी संभाषण कर लिया जाय तथा इस मद्रास क्षेत्र में कहां–कहाँ और क्या–क्या जानकारी मिल सकती है इसकी भी पूछताछ कर ली जाय। शिंगराचार्य ने 'स्वर मंजरी', "गायन परिजात", "कलानिधि" आदि पुस्तकें लिखी हैं। मुझे ऐसा लगता है कि इन सज्जन के पास कुछ संस्कृत ग्रंथ भी होंगे। कारण ये स्वयं ग्रंथकर्त्ता हैं। इस हेतु वहां जाने का निर्णय किया। कुछ प्रयत्न करने पर उनके घर का पता चला और उनसे भेंट कर पाने का आनंद हुआ। गोविंद–नायक स्ट्रीट में एक छोटे से राम मन्दिर के दूसरे मंजिल पर उनकी बैठक है। उनके रहने का घर अलग है। परन्तु इस मन्दिर में बैठकर वे अपने शिष्यों को प्रातः एवं सायंकाल संगीत की तालीम देते हैं। मैं ऊपर गया उस समय वे अपने तीन मद्रासी शिष्यों को वहां के "श्री" राग में अपनी पुस्तकों से ही गायन सिखा रहे थे। नमस्कार कर मैं पास में ही पड़े हुए दरी के टुकड़े पर जाकर बैठ गया। कमरा (८ × ८) बहुत छोटा था। वहां एक तरफ दो-एक रूद्रवीणा, एक तंबूरा, दो वायलिन रखे हुए थे। पाँच मिनट बाद उन्होने अपना काम रोक दिया तथा मैं बाहरी व्यक्ति होने से वे मेरी ओर मुड़े। मैं कौन और कहां से आया हूं इस सम्बन्ध में मुझसे पूछ–ताछ की। अपना व्यवसाय, रोजगार व शौक बताने पर उन्हें थोड़ा आश्चर्य सा हुआ। श्री शिंगराचार्य लगभग ५० वर्ष की आयु के हैं तथा गाने बजाने का ही व्यवसाय करते हैं। इनके और एक भाई थे जिनकी बड़ी प्रशंसा थी। यह भी ज्ञात हुआ कि वे वायलिन प्रथम दर्जे का बजाते थे। ये महाशय एकदम सीधे व सरल प्रतीत हुए। उन्होंने मेरी आवभगत कर बोलना प्रारम्भ किया :–

शि. – आप बम्बई के हैं, अतः अण्णा घारपुरे को जानते होंगे। उसी प्रकार नाटेकर को भी देखा होगा।

मैं – हां, मैं दोनों को जानता हूं। इनमें से अण्णा घारपुरे तो मेरे मित्र हैं। क्या आप उन्हें पहिचानते हैं ? आपकी उनके विषय में क्या धारणा है ?

शि. – हमारे यहां के गायन समाज की वजह से मैं उनको जानता हूं। श्री सहस्त्रबुद्धे, को भी जानता हूं। मुझे लगता है जहां तक विद्वत्ता का प्रश्न है नाटेकर की अपेक्षा अण्णा अधिक विद्वान है। नाटेकर का गायन मधुर होने से नाटक के लिए अधिक योग्य है।

मैं – अण्णा घारपुरे से क्या आपने संगीत की शास्त्रीय चर्चा की है ?

शि. – वे शास्त्र में बहुत कुशल होने से मैं उनसे ऐसी चर्चा कैसे कर सकता हूं। फिर भी उनकी बोल–चाल से मैं यह समझ सका हूं कि वे अत्यन्त विद्वान होंगे। मेरा-उनका इस विषय पर कभी भी ऐसा कोई संभाषण नहीं हुआ। मेरा हिन्दुस्तानी संगीत का ज्ञान वाद विवाद करने योग्य न होने के कारण मैं उनसे इस विषय में कभी नहीं बोला।

मैं – वे सचमुच संगीत विद्या में अत्यन्त कुशल है। महाराष्ट्र में उनके जैसे दो–चार ही निकलेंगे ऐसा मेरा मत है।

श्री शिंगराचार्य टूटी–फूटी अंग्रेजी बोलते हैं तथा उनका एक शिष्य भी अंग्रेजी बोलता था। अत: भाषा की अड़चन विशेष नहीं आई। मेरा उनका संभाषण इस प्रकार हुआ :–

प्र. – संगीत में हनुमन् मत, पिंगलमत, शिवमत जैसे अनेक मतों के नाम सुनने में आते हैं। अत: पूछना चाहता हूं कि क्या आपके मद्रास इलाके में किसी विशिष्ट मत का प्रचार है ?

शि. – हां, हमारे यहाँ "नारद–भरत मत" चलता है और उत्तर में "हनुमत्-भरत" मत चलता है।

प्र. – नारद और भरत यह दो भिन्न–भिन्न व्यक्ति हैं। वे अलग–अलग समय पर हुए ऐसा भी स्पष्ट दिखता है। अत: "नारद-भरत" ऐसे संयुक्त नाम का मत कैसे संभव हुआ?

उ. – मैं इस मत को "नारदीय मत" कहता हूँ।

प्र. – इस नारदीय मत का ग्रंथ संस्कृत अथवा दूसरी जिस किसी भाषा में हो उसे प्रत्यक्ष देखने की मेरी इच्छा है। तथा यदि वह आपके पास हो तो कृपा कर आप मुझे दिखावें।

उ. – इस प्रकार का ग्रँथ मेरे पास नहीं है।

प्र. – क्या पहिले कभी था ? तथा उसका नाम क्या था ?

उ. – वह मेरे पास कभी नहीं था।

प्र. – तो क्या आपने उसको प्रत्यक्ष देखा और पढ़ा है !

उ. – मैंने नहीं देखा।

प्र. – क्या आप यह कह सकेंगे कि वह इस नगर अथवा इस क्षेत्र के किसी अन्य नगर में है ? मैंने संगीत प्रसिद्ध प्रत्येक नगर में जाने का निश्चय किया है ?

उ.– मुझे ठीक से नहीं मालूम । इस ग्रंथ का नाम मात्र मैंने सुन रखा है ।

प्र.– शिंगराचार्य जी! आपने चार–पांच पुस्तकें लिखी हैं । आपने उन्हें किस ग्रंथ के आधार से लिखा है ?

उ.– हम जो परम्परा से सीखते आए हैं वही हमारी प्रायोगिक जानकारी है । हमारे यहां बहत्तर मेल तथा उनका कुटुम्ब अर्थात जन्य राग ये सब "नारदीय" पर आधारित हैं ऐसा हम मानते और सुनते भी है ।

प्र.– श्रुति, मूर्छना, ग्राम इन विषयों के बारे में आप संस्कृत ग्रंथों में पढ़ते हैं । इनके संबंध में आपकी क्या धारणा है, यह जानने की इच्छा है ।

उ.– ठीक है । जो इच्छा हो पूछिये । मुझे जो मालूम होगा वह खुशी से बताऊंगा ।

प्र.– षड्ज की चार श्रुति बताई जाती है । उन्हें (वीणा की ओर इशारा करते हुए) मुझे इस वाद्य पर दिखाइये ।

उ.– बहुत अच्छा । (उन्होंने वायलिन उठा लिया तथा "सा" स्वर तार पर दिखाया । तथा मुझसे पूछने लगे–यह स्वर "सा" है यह आपको समझ में आया ? मेरे "हां" कहने पर "सा" के आगे "रे" तक जो भाग है वह षड्ज की बाकी श्रुतियों का है, ऐसा कह दिया ।)

प्र.– आपके कहने के अनुसार क्या आपके यहां का "ऋषभ" (फ्लेट) ही "सा" की एक श्रुति है ? वाद्य पर प्रत्येक स्वर की श्रुति उसके उपरान्त बजानी चाहिये न ?

उ.– हां । मैं भी यही समझता हूं ।

प्र.– रत्नाकर, दर्पण, आदि ग्रंथों के नाम आपने सुने ही होंगे । क्या यहां उन ग्रंथों को आधारभूत मानते हैं ?

उ.– हां । इस संबंध में "नहीं" कौन कहेगा । हमारे यहां का संगीत ठीक उसमें से ही लिया है ।

प्र.– यदि ऐसा है तो उन ग्रंथों में षड्ज की श्रुतियां "नी–सा" स्वरांतर के बीच में हैं, कारण "सा" यह स्वर की चौथी श्रुति पर है इसका मेल–मिलाप कैसे बैठेगा ?

उ.– यदि ऐसा है तो मुझे नहीं मालूम ।

प्र.– मूर्च्छना से आप क्या समझते है ?

K K K K

उ.– (भैरव थाट रखकर) सारेगम पधनीसां । सांनीधप मगरेसा" । यह मूर्च्छना है ।

प्र.– ग्रँथों में शुद्ध स्वर कौन से हैं ? क्या उन्हें आपने सुना है ?

उ.– नहीं । वे मुझे नहीं मालुम ।

प्र.– मूर्च्छना का क्या उपयोग था ?

उ.– वे हमारे गायन में तान के रुप में हर बार आती हैं । तथा उसका व्यवहार तान के रूप में ही होता है ।

प्र.– तो फिर शुद्ध तान व कूट–तान जो बताई गई है क्या वे उनसे प्रथक है ?

उ.– मैं इस सम्बन्ध में नहीं समझा सकूंगा ।

प्र.– "गांधार ग्राम" इस लोक में नहीं है, ऐसा कहा जाता है इसका क्या अर्थ है, और ऐसा क्यों ?

उ.– इस लोक के मनुष्यों के गले गांधार–ग्राम गाने योग्य नहीं है । अतएव वह गांधर्व लोक में गया ।

प्र.– गंधर्व लोक में इसे कैसे गाते हैं, यह ज्ञात नहीं हो सकता यह ग्राम कैसा होना चाहिए इस विषय में आपने जो अनुमान स्वतः किये होंगे क्या उन्हें आप मुझे भी बतायेंगे ?

उ.– हां बताता हूं । (वायलिन उठाकर मन्द्र "सा" का तार बजाते हुए) यह मन्द्र "सा" स्वर देखिये । इस मंद्र सप्तक के बाद मध्य सप्तक है । उसके ये स्वर है (दिखाकर) आगे तार सप्तक प्रारंभ हो गया । अब इस तार-सप्तक का जो गांधार है उसे मन्द्र सप्तक का "सा" मानकर उसके आगे के तीन सप्तक क्या मनुष्य गा सकता है ? उससे तो मात्र दो ढाई सप्तक भी ठीक से नहीं बन पड़ते? ठीक है न ? (शिष्यों को यह स्पष्टीकरण) सुनकर प्रसन्नता हुई ।

प्र.– 'पियानों" मे सात सप्तक होते है । "उसमें गाँधार ग्राम" संभव हो सकेगा । तथापि ग्रन्थकारों के समय पियानों नहीं था यह भी सही हैं । इस ग्राम से संबंधित तर्क आपने किस आधार से किया हैं ?

उ.– प्रोफेसर शेशाद्री ने मुझे इस प्रकार समझाया था । तथा इनका कहना मुझे सयुक्तिक लगा । आपकों कैसा लगता है ?

प्र.– आपका दिया हुआ स्पष्टीकरण मैं समझ गया । परन्तु इस कल्पना को शास्त्राधार नहीं है "ग्राम" में पिच की कल्पना न होकर, श्रुतियों की नियमित रचना है ऐसा ग्रन्थों के वाक्यों से स्पष्ट दिखता है ।

उ.– ऐसा भी होगा । यह जानकारी मुझे नहीं है । मैंने जो सुना हैं वह बताया । यहां के बहुत से विद्वानों की ऐसी ही मान्यता है ।

प्र.– स्वामी, आपने बहत्तर जनक अथवा मेलराग माने है (अर्थात छत्तीस शुद्ध मध्यम के तथा छत्तीस प्रति मध्यम के) इसको किस ग्रन्थ का आधार है ?

उ.– मैंने स्पष्ट कहा ही है कि "नारदीय" मत की सुनी हुई जानकारी तथा परंपरा से प्राप्त शिक्षण के आधार से ।

प्र.– मुझे ग्रन्थ देखने को कहां मिलेंगे ?

उ.– इस प्रकार की पुस्तकें तंजौर पैलेस लाइब्रेरी में देखने को मिलेगी । उन्हें मैंने नहीं देखा है ।

प्र.– मैं तंजौर जाने वाला ही हूं । उन्हें वहां देखूंगा । अभी–अभी आप अपने शिष्यों को हमारे यहाँ के 'सारंग" जैसा प्रतीत होने वाला राग बता रहे थे वह कौन सा राग है?

उ.– इसको हम लोग "नायकी" कहते है ।

प्र.– क्या यह भी एक कानड़ा ही है ? क्या यह नाम आपके यहाँ पुराना ही है ?

उ.– यह कानड़ा नहीं है। वह "दरबार" राग जैसा प्रतीत होता है परन्तु "नायकी" एकदम स्वतन्त्र है।

प्र.– क्या दरबार, नवरोज, हुसैनी, नायकी आदि आपके यहाँ अनादि काल से चले आ रहे संगीत में ही गिने जाते हैं ?

उ.– हमारे यहां उन्हें प्राचीन ही मानते है तथा वे लोकप्रिय भी है।

प्र – आपके यहां "नट नारायण" किस प्रकार गाते हैं, उसे मुझे सुनाइये।

उ.– वह मुझे एकदम से याद नहीं आयेगा। परन्तु पुस्तक देखकर बजाता हूं (शिष्य ने वह पृष्ठ ढूंढ दिया तथा उसमें से आरोह अवरोह बजाकर) वह ऐसा है। यह प्रचार में अधिक नहीं है। यह हरिकाबोजी मेल से निकला है (शिष्य ने पुनः आरोह अवरोह पढ़ा तथा उसी प्रकार वायलिन पर उन्होंने उसे उतारा।

प्र.– आपकी पुस्तक में अनेक रागों के आरोह-अवरोह बताए गये हैं। परन्तु क्या एक सी गति से ऊपर जाने तथा उसी गति से लौटने से राग में माधुर्य उत्पन्न होगा ? माधुर्य-युक्त बजना किस प्रकार संभव होगा ? क्या इस हेतु और भी कुछ जानकारी आवश्यक नहीं है ?

उ.– यह कार्य सरल है। पहिले ऊपर जनक राग दिया ही गया है। अतः कौन सा स्केल होगा यह समझ में आ ही जाता है। उससे निकलने वाले जन्यरागों के आरोह-अवरोह स्पष्ट बताए गये हैं। दो भिन्न-भिन्न कार्ड्स हैं। बताए अनुसार उनके स्वरसमूह बार-बार धीरे-धीरे बजाना चाहिये। ऐसा करने से एक प्रकार का चलन दिखने लगता है। उस चलन को मुख्य बनाकर टुकड़े–टुकड़े बजाना चाहिये। एक बार मेल-मिलाप करने की आदत हुई कि वह तुरंत सध जावेगा। प्रत्येक राग का आरोह–अवरोह भिन्न होने के कारण एक दूसरे में मिल जाने का भय नहीं रहता। बजाते–बजाते एक प्रकार का रंग दिखने लगता है। उसी के आधार से बजाते जाना चाहिये।

प्र.– गीत गोविन्द की अष्ट–पदियों में बताये राग व ताल क्या यहां कोई गाता है ?

उ.– नहीं। मैंने ऐसा गाते हुए कभी किसी को नहीं सुना। मुझे भी वे नहीं आती। त्रावनकोर के संबंध में मुझे ज्ञात नहीं हैं। परन्तु मैंने वहां भी उनका प्रचलन नहीं सुना, मैंने तो ऐसा सुना है कि उनका प्रचार उत्तर में है।

प्र.– क्या आप श्री तिरूमल्लय नायडू को जानते हैं ?

उ.– हां। वे मेरे मित्र हैं। वे इस विषय पर लिखते है। उन्होंने एक ग्रन्थ भी लिखा है वे बी. ए. है तथा उन्होंने इस विषय पर बहुत परिश्रम किया है।

प्र.– क्या सस्कृत ग्रंथ पढ़े होने की उनके संबंध में प्रसिद्धि है ?

उ.– यह मुझे नहीं मालुम। परन्तु वे संगीतशास्त्र अच्छा जानते हैं तथा ऐसा कहते है कि संगीत पर विवेचनात्मक टीका भी कर सकते हैं। आप उनसे अवश्य मिले।

प्र.– "ओरियंटल म्यूज़िक" के लेखक चिन्नास्वामी मुदलियार एम. ए. कहां रहते हैं क्या मुझे बतायेंगे ? उनके प्रति मुझे बड़ा आदर है तथा उनसे भेंट करने की तीव्र इच्छा है।

उ. – उनका देहान्त हो गया। दो तीन वर्ष हुए। उनका छापाखाना था। उस पर उन्होंने बहुत खर्च किया था। अँत में धंधे में नुकसान होने पर वे यहां से चले गये तथा बाद में उनकी मृत्यु हुई। मैंने ऐसा सुना है कि उनके भाई "पुदुपेट" नामक मोहल्ले में रहते हैं। वे आपकों कुछ जानकारी दे सकेंगे। परन्तु उनको संगीत का कोई ज्ञान नहीं है।

प्र. – मुझे मुदलियार की पुस्तक की एक प्रति प्राप्त करनी है।

उ. – उनके भाई शायद आपको दे सकेंगे।

प्र. – आप मुझे इस क्षेत्र के ऐसे संगीत विद्वान का नाम व पता बताइये जो पुस्तकें पढ़ते है। मैं उनसे जाकर मिलूंगा। मुझे ऐसा एक भी नाम ज्ञात नहीं। अधिकाँश व्यक्ति परंपरा से सीखे हुए प्रेक्टिकल गाने वाले हैं। परन्तु शास्त्रीय ज्ञान रखने वाला मुझे कोई भी मालूम नहीं।

उ. – अच्छा। आपको मैंने बहुत कष्ट दिया। इस सँबंध में क्षमा चाहता हूं। अब देर भी हो चुकी है अतः आज्ञा चाहता हूं। (औपचारिकताएं)

ओरियन्टल लाइब्रेरीः–

हमारे यजमान श्री ठाकुर हमारे यहां मिलने आये थे। उन्होंने ऐसा समाचार दिया कि यहाँ "ओरियंटल लाइब्रेरी" नामक, संग्रहालय से जुड़ी हुई, एक संस्था है। उसमें पुरानी पाँडुलिपियां हैं। उनकी सूचना के अनुसार श्री तुलजाराम ठाकुर के साथ ओरियंटल लाईब्रेरी गया। वहां की व्यवस्था बहुत अच्छी है। एक व्यक्ति ग्रंथपाल तथा उनके एक दो सहयोगी हैं। अन्य एक मेज पर दो तीन लेखक गण लिखने का काम करते है। एक मेज पर केंटलाग है। उसे देखकर आपको जो चाहिये वह ग्रंथ पसँद कर लें तथा उसकी नकल हेतु ग्रंथपाल के पास छपे हुए फार्म पर अर्जी कर दें। वे साधारण अनुमान लगाकर आपसे अग्रिम राशि ले लेते है। आपका पता लिख लेते हैं। तथा बाद में वी. पी. द्वारा आपके पास ग्रन्थ भेज देते हैं। वहां के केटलाग में संगीत ग्रंथ निम्नानुसार है :–

(१) नृत्ताल पुराण (२) राग विशेष (३) संगीत दर्पण (४) संगीत रत्नाकर (५) संगीत सार संग्रह (६) स्वर मेल कलानिधि।

इस प्रकार के छः ग्रँथ दिखाई दिये। इनमें से रत्नाकर व दर्पण मेरे पास है। अतः बाकी के चार ग्रंथ देवनागरी लिपि में लिखवाकर मुझे देने हेतु मैंने अर्जी की। ये तेलगू लिपि में लिखे हुए है। इस प्रकार के लेखन हेतु १००० अनुष्टुभ श्लोकों की नकल कराई पांच रूपया लगते है। मैंने यह राशि देना स्वीकार की, तथा परसों डिपाजिट भेजनें का निश्चय किया है। यह बहुत अच्छा हुआ ऐसा कहना चाहिये। योरोपीय व्यक्तियों की एक विशेषता ध्यान में रखने लायक है कि वे इस प्रकार की बातें छुपाकर रखना एकदम पसंद नहीं करते। इस पुस्तकालय में हजारों ग्रंथ हैं, परन्तु मेरे विषय पर छः ही है।

श्री तिरूमल्लय नायडू :- **सायंकाल**

सायंकाल पांच बजे पुस्तकालय से निकलकर मांउन्ट रोड पर स्थित कास्मोपोलिटन क्लब गया। वहां नायडू मिलने वाले थे। मनमें बड़ा उल्लास था कि आज एक ग्रंथकर्ता, संगीत विद्वान, ग्रेजुएट से संगीत पर चर्चा करने का प्रसंग आया है, जिसके परिणाम स्वरूप थोड़े समय में ही बहुत जानकारी मिलने की संभावना है।

श्री नायडू अपने एपोइंटमेंट के अनुसार मेरे कारण अपने बरामदे में चहल-कदमी कर रहे थे। मेरे पहुँचने पर मेरा स्वागत किया और औपचारिता के उपरान्त अपने साथ ऊपर ले गये। वहाँ दस-पन्द्रह व्यक्ति दो-तीन समूहों में बैठे थे। मेरा औपचारिक परिचय उनके साथ भी करवाया तथा एक समूह के साथ मैं भी बैठ गया। मुझे सँगीत मित्रों के अतिरिक्त अन्य नहीं चाहिये थे, कारण व्यर्थ की गप्पें मारते बैठने में मेरा समय नष्ट होगा इस भय से मैंने श्री नायडू से कहा कि हम लोगों को एकाद खाली गोल-मेज पर जाकर बैठना चाहिए। ऐसा न करने से इन लोगों को व्यर्थ में उपद्रव लगेगा। मेरी बात सुनकर श्री नायडू मुझे एक टेबुल के निकठ ले गये। मौसम की औपचारिक चर्चा के उपरातन्त मैंने अपने रूचि के विषय पर दो-तीन मिनट संभाषण करने की स्वीकृति माँगी, जो उन्होंने दे दी। मैंने बोलने के मुद्दे लिख रखे थे ताकि विचारणीय प्रश्न तुरन्त ध्यान में आ जाय और समय व्यर्थ नष्ट न हो। भाषण इस प्रकार हुआ। यहाँ इतना ही कहना चाहिये कि मेरे बोलने के बीच-बीच में अन्य फुटकर प्रश्न व चर्चा भी चल रही थी। वह सब अक्षरश: लिख सकना यहां संभव नहीं है। परन्तु प्रमुख मुद्दे भी नहीं छोड़ना है।

प्र.- श्री नायडू, आपको यह स्मरण होगा कि मैंने अपने पत्रों में आपसे तरह-तरह के प्रश्न किये थे, परन्तु उन सबके उत्तर आपने नहीं दिये तथा एक पत्र में ऐसा लिखा था कि यदि मैं यहाँ कभी आऊँ तो सभी स्पष्टीकरण अधिक समाधानकारक रीति से हो सकेगा। यह आपकी बात ध्यान में रखकर आपसे प्रत्यक्ष भेंट करने का निर्णय मैंने कर रखा था। भाग्य से यह अवसर आया, यह अच्छा ही हुआ। आपसे पहिला एक प्रश्न यह करने की इच्छा है कि आपने संगीत विषय पर कौन से संस्कृत ग्रंथ पढ़े हैं, यह आप खुले मन से मुझे बतावें। आपने जिन्हें पढ़ा है उन ग्रंथों पर ही बोलना प्रथम प्रारंभ करें।

उ.- मैंने कुछ-कुछ ग्रंथों के महत्व के भागों को पढ़ा तथा उनको समझ रखा है। ग्रंथों को विधिवत पढ़ा नहीं है। 'राग विबोध' का पहिला अध्याय मेरे पास है। उसे मैंने पढ़ा है। 'रत्नाकर' का आनंदाश्रम संस्करण अभी-अभी निकला है। वह बहुत अच्छा मुद्रित हुआ है। वह पुस्तक मेरे पास है। मैंने सुना है कि परिजात का उत्तर भाग अब छप गया है। परन्तु वह मेरे पास नहीं है।

प्र.- इसके अतिरिक्त क्या और कोई ग्रंथ आपने पढ़े अथवा देखें हैं।

उ.- नहीं।

प्र.– जो पढ़ें हैं, क्या उन्हें अच्छी तरह समझ लिया है ? यदि समझ लिये हो तो किसने समझाये ?

उ.– सम्पूर्ण ग्रंथ मैंने नहीं देखे । मुख्य महत्व के भाग मैंने देखे है, तथा उन्हें समझा भी है ।

प्र.– उदाहरण के लिये रत्नाकर को ही लीजिये । उसमें कम महत्व का किसे कहेंगे । मैं आपकी परीक्षा लेने आया हूँ ऐसा क्षण भर के लिये भी न सोचें । आप हमारे मित्र हैं । विचारों में एक दूसरे की मदद करना हमारा कर्तव्य है । कुछ बातें ऐसी हो सकती है जो मुझे मालूम हैं परन्तु आपको नहीं । अन्य ऐसा भी हो सकती है जो मुझे एकदम नहीं समझी । यदि, आपने ग्रंथ नहीं देखे तो आपके मत का मूल्य कम है ऐसा भी मैं नहीं मानता । तथापि मित्रों में विश्वास का अभाव नहीं होना चाहिये । इससे सहयोग में कठिनाई उत्पन्न होती है । आपने जो पढ़ रखा है वह यदि मुझे ज्ञात हो जाय तो इसका अर्थ होगा कि हम एक दूसरे की मदद भालीभांति कर सकते हैं । इस प्रकार की चर्चा में जो नहीं पढ़ा, वह पढ़ चुका हूँ ऐसा मैं कैसे कह सकूंगा ? कारण इस सम्बन्ध में यदि मुझसे स्पष्टीकरण मांगा गया तो मैं क्या जवाब दूंगा ? अतः मैं खुले मन से प्रश्न कर रहा हूँ । इससे आप नाराज न हों ।

उ.– नहीं । यह सब मैं समझता हूँ । ऐसी पूछताछ का मैं कभी बुरा नहीं मानता । रत्नाकर का अमुक भाग कम महत्व का है, मैं, ऐसा नहीं कह सकता ।

प्र.– आपने संस्कृत ग्रंथों का शुद्ध स्वर सप्तक किस प्रकार निश्चित किया है ?

उ.– मुझे इस प्रश्न का उत्तर दे सकना संभव नहीं है । परन्तु मैं एक ऐसा तर्क रख रहा हूँ कि "वेद" यह एक अत्यन्त प्राचीन पुस्तक माना जाता है । अतएव "वेद" जिस स्वरसप्तक में गाये जाते हैं उसे प्राचीन स्वर सप्तक समझा जाना चाहिये । वैदिक स्वर सप्तक को प्राचीन मानने के सम्बन्ध में एक कारण यह भी दिया जा सकता है कि अत्यन्त प्राचीन काल में तीन–चार स्वरों का सप्तक ही था तथा वही धीरे-धीरे बढ़ता गया होगा । यहां वैदिक लोग तीन चार स्वरों में ही वेद को गाते हैं, अतएव यह सिद्ध होता है कि वह स्वर सप्तक प्राचीन होगा ।

प्र.– मुझे लग रहा है कि मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं हुआ । अत्यन्त अविकसित काल में दो–तीन स्वरों का सप्तक होगा, उसके उपरान्त वह पांच स्वरों वाला होना तथा उसके भी बाद धीरे–धीरे सात स्वरों का बन जाना यह पाश्चात्य विचार–प्रणाली ठीक ही है । कार्ल एन्जल्स व डॉ. बर्ने की पुस्तकों में यह बात कही ही गई है तथा उसे मैंने पढ़ा हैं । मैंने आपसे यह पूछा था कि आप अध्ययन किये हुये रत्नाकर, राग विबोध आदि ग्रन्थों के सात शुद्ध स्वरों का स्वरसप्तक किस प्रकार निश्चित करते है ?

उ.– मैं ग्रंथों का स्केल निश्चय पूर्वक नहीं बता सकता ।

प्र.– कार्ल एन्जल्स की "म्यूजिक आफ एशिएन्ट नेशन्स" तथा डा. बर्ने की "हिस्ट्री आफ म्यूजिक" यह ग्रन्थ क्या आपने पढ़े हैं ?

उ. – केवल ऊपर-ऊपर से देखे है। वे भी ऐसा ही कहते हैं।

प्र. – आपने वैदिक स्केल की बात निकाली है, अतएव यह पूछने की इच्छा है कि आपके यहां वैदिक लोग वेद को किन स्वरों में कहते हैं ?

K

उ. – वे, प, नी सारे, ऐसा स्केल लेते हैं। हम, हमारे यहां "मायामालव" स्केल सबसे प्राचीन व प्रमुख मानते है। इसके उपरांत शेष सप्तक बन गये होंगे।

प्र. – यह स्केल हमारे भैरव का है। आप इसकों "आदि स्केल" मानने का क्या आधार बताते है ?

उ. – मैं कोई आधार नहीं बता सकता। मैं यह नहीं बता सकता कि पुस्तकों में यही है या दूसरा कोई। यह सत्य है कि यहां प्रचार में ऐसा मानते है। परन्तु ऐसा क्यों है यह मैं नहीं कह सकता।

प्र. – पहिले के ग्रन्थों की बात छोड़िये। परन्तु क्या आप यहां के आज के ग्रन्थों का भी आधार दे सकेंगे।

उ. – मैं ग्रन्थों का कोई आधार नहीं दे सकूंगा, यह मेरा अपना तर्क है।

प्र. – 'शंकराभरण' स्केल कब और कैसे शुद्ध हुआ, इस संबंध में क्या आपने विचार किया है ? योरोपियों का कहना है कि यह स्केल उनका "मेजर मोड" है।

उ. – हमारे यहां वह बहुत पुराना ही है तथा अनेक सप्तकों में से एक है।

प्र. – डा. बर्न अपने ग्रन्थ में कहते है कि "सभी प्राचीन संगीत माइनर में है" क्या इसका विचार आपने किया है ? तथा क्या आपके ग्रन्थों का इस मत से कोई मेल बैठता है ?

उ. – वह मुझे ज्ञात नहीं।

प्र. – पुस्तकों में यह बताया गया है कि अमुक स्वर की अमुक श्रुति है। परन्तु ग्रन्थों में उनके उपयोग के विषय में अच्छी खुलासेवार जानकारी प्राप्त नहीं होती। क्या आपके इस क्षेत्र में मुझे श्रुति के उपयोग के विषय से संबंधित कोई जानकारी मिल सकेगी ?

उ. – नहीं। उसके नियम कहीं कोई नहीं है। उनका व्यवहार लोकरंजनार्थ "ग्रेसेस" की भांति किया जाता है।

प्र. – आपने तीन ग्रामों पर क्या विचार किया है ? ऐसे स्केल क्या आज निरूपयोगी है ? उनके रागों का काम आज किस अन्य विधा से लियां जा सकता है ? यह विधा कब निकली और किसने निकाली ?

उ. – हमारे क्षेत्र में ग्रामों की जानकारी व प्रचार एकदम नहीं दिखाई पड़ता। यह भी किसी को ज्ञात नहीं कि वे कैसे थे। मुझे भी इस विषय का ज्ञान नहीं हैं ऐसा यदि कहा जाय तो भी चलेगा। उनका व्यवहारिक उपयोग न होने के कारण उन पर विचार कोई नहीं करता।

प्र. – आज प्रातः मैं शिंगराचार्य गायक से भेंट करने गया था। उन्होंने मुझे बताया कि तार सप्तक के गंधार को मन्द्र "सा" मानकर तीन सप्तक गाने से गाँधार ग्राम का गायन होता हैं। क्या आप भी यही मानते है कि यहाँ पर ऐसा ही होता है ?

उ. – यह सच है कि संप्रति इस प्रकार की धारणा यहां पर बनी है। परन्तु मुझे लगता है कि वह त्रुटिपूर्ण है। यहां, स्व. श्री शेष शास्त्री, प्रोफेसर, प्रेसीडेन्सी कालेज ने लोगों

को इस प्रकार से समझा दिया है। मुझे लगता है यह उनका अपना ही निरा तर्क मात्र है।

प्र. – उन्हें इस प्रकार का तर्क किस आधार से कर सकना संभव हुआ ?

उ. – यहां पुरूष गायक "सा" यह श्रुति (आधार स्वर) मानकर गाते हैं। महिलायें "म" इस आधार स्वर से गाती हैं। इसके पूर्व का 'ग" भी एक आधार स्वर–वाचक अथवा दर्शक प्रतीत हुआ होगा। यह उनकी धारणा बन गई होगी। परन्तु जिस प्रकार "सा" स्वर से तथा "म" स्वर से गाना संभव होता है उस प्रकार "ग" स्वर से गाना संभव ही नहीं है ऐसा जब तक निश्चित रुप से सिद्ध न हो जाय तब तक "सतुनास्ति" यह उक्ति यथार्थ नहीं हो सकती। इसी कारण,शास्त्री जी ने ऐसा स्पष्टीकरण दिया होगा।

प्र. – क्या आपने इस संबंध में विचार किया है कि ग्रामों का संबंध श्रुति की विशेष व्यवस्था से है न कि तारता से।

उ. – नहीं। ग्राम इस विषय को एकदम नहीं समझ सका हूं।

प्र. – मैंने अपनी संस्कृत पुस्तकें अपने साथ लाई हैं उनमें से कुछ को लाकर आपको यह भाग समझा दूं तो क्या आपको अच्छा लगेगा ?

उ. – हां। आनंद होगा। हमारे यहां ग्रंथ का अध्ययन किये हुये कोई मिलते ही नहीं। मैं भी अपने पास की दो तीन पुस्तकें कल क्लब में लाऊंगा, तो अच्छा रहेगा। मैं इस क्लब में रोज पाँच, छः बजे के लगभग आता हूं और, खाली रहता हूं।

प्र. – मूर्च्छना के संबंध में तथा उसके उपयोग के संबंध में आपकी क्या धारणा है ?

उ. – आपके इस मूर्च्छना के विषय में मुझे कोई ज्ञान नहीं है। हम अपनी संगीत पद्धति में इस शब्द का व्यवहार भिन्न रीति से करते हैं। मैंने ऐसा सुना है कि "सारेगमपधनी" इस प्रकार को मूर्च्छना कहते है। परन्तु मैंने यह तर्क किया था कि ऐसा आपकी हिन्दुस्तानी पद्धति में होगा। मैं, यह कह सकता हूं कि इस अंचल में उन्हें समझाने वाला आपको कोई भी नहीं मिलेगा।

प्र. – आपकी आज्ञा हों तो मैं उन्हें आपको समझा दूं ? इन मूर्च्छनाओं ने हमारे ग्रंथों में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

उ. – जी हां। बहुत अच्छा होगा।

प्र. – मूर्च्छनाओं से राग में प्रयुक्त होने वाले "स्केल" बताए जाते थे। विभिन्न मूर्छनाओं के योग से "सेमीटोन्स" की जगह बदलती है। जैसे "धैवत" की मूर्च्छना लेते ही दूसरा स्वर "शुद्ध नी" यह सेमीटोन होता है तथा उसका नाम "कोमल रे" हो जाता है तथा "धैवत" "सा" बन जाता है (बाद में उदाहरणों द्वारा समझाया) क्या अब मूर्च्छनाओं का उपयोग स्पष्ट प्रतीत होता है ?

उ.– यह तो मुझे बहुत अच्छा समझ में आया। मुझे इस प्रकार का ज्ञान कभी नहीं हुआ था। यहां, इस विषय को जानने वाले कोई भी दिखाई नहीं देते। (ग्रन्थकार, रागों के स्केल इस प्रकार बताते थे यह मुझे अब समझ में आया।)

प्र.– हो सकता है मैं त्रुटि कर रहा होऊं। परन्तु मेरी इस धारणा का आधार योरोपियन "मोडस" में भी है। उनके यहां भी प्राचीन काल में इस प्रकार के "मोडस"(ओथेन्टिक तथा प्लेगल) थे तथा उनके योग से ही यह स्केल बताए जाते थे। दो एक सप्तकों में जो सेमीटोन्स रहते हैं उनकी जगह बदलकर भिन्न-भिन्न स्केल दिखाने का उपाय था। आज वर्तमान "स्केल" तथा पुराने "स्केल" नहीं मिल सकते, परन्तु मैंने मूर्च्छना का उपयोग बताया।

प्र.– श्री नायडू ! "स्केल" की कल्पना के आभाव में यदि यह कहा जाय कि ग्रंथों के रागों का विचार करने हेतु आपके पास कोई साधन नहीं थे, तो चल सकता है ?

उ.– कोई नहीं थे। इसी कारण मैंने अपनी यह धारणा बना ली थी कि "ग्रंथों" का संगीत निरूपयोगी व ध्वस्त सा हो चुका है।

प्र.– आपके यहां ७२ मेल कर्त्ता की पद्धति है मैंने उसे पूरी तरह समझा है। परन्तु इस पद्धति का आधारभूत संस्कृत ग्रंथ कौन सा समझूं ?

उ.– आधारभूत प्राचीन ग्रंथ मुझे ज्ञात नहीं है। मेरा तर्क यह है कि, दो चार सौ वर्ष पूर्व किसी गणित व संगीत शास्त्र जानने वाले पंडित ने यह सुन्दर रचना की होगी। इसमें गणितज्ञ का हाथ दिखता है। मुझे यह नहीं लगता कि यह रचना प्राचीन हो सकती है। एक ग्रंथकार तो यहां तक कहता है कि वह उसने ही की है।

प्र.– श्री नायडू ! "गान विद्या संजीवनी" की प्रस्तावना में यह कहा गया है कि आपने बहुत से प्राचीन संस्कृत ग्रंथों को पढ़ा है तथा मुझे आपकी पुस्तक में कुछ सुबोध सरल संस्कृत श्लोकों के परिच्छेद दिखाई पड़े, इसी कारण ग्रंथों के विषय में इतने सारे प्रश्न आपसे पूछे। आपके यहां अच्छे-अच्छे शास्त्री है तथा पुस्तकें भी उपलब्ध हो सकती है। परन्तु मुझे आपकी इस संबंध में उपेक्षा तथा यह देखकर आश्चर्य होता है कि आप केवल तर्क पर अवलंबित है ?

उ.– यहां सभी लोगों की रूचि प्रायोगिक संगीत में है। ७२ मेलकर्त्ता व जन्यराग अतिरिक्त यहां पर कोई कभी पूछताछ नहीं करता। ग्रंथो विशेषकर संस्कृत ग्रंथों की छानबीन कोई नहीं करता। मैंने ऐसा सुना है कि आपके अंचल में इस विषय में आस्था रखने वाले व्यक्ति प्रचुर संख्या में है। हमारे यहाँ के सुशिक्षित स्नातक ऐसा करें तो कितना उपयोगी होगा। मैंने शास्त्र में रूचि बढ़ाने के प्रयत्न किये, व्याख्यान दिये, परन्तु सभी मेहनत बेकार गई। यहां प्रायोगिक गायक के गायन में डूबे रहने वाले विद्वान बहुत है। वीणा पर थोड़ा सा बजाना आया, अथवा कुछ गीत आ गये कि उन्हें शास्त्रीय

जानकारी की परवाह नहीं रहती । इस मद्र स क्षेत्र में पूर्णत: शास्त्र का भक्त मुझे एक भी ज्ञात नहीं है । यहां ७२ मेलों के प्रयोग से रागों का टकराव होता ही नहीं । जिस-तिस राग का मार्ग स्वतंत्र कहने से सीखने सिखाने में सुविधा होती है । कुछ मेल व जन्य राग लोगों में बहुत प्रिय हुए है । तो कुछ राग रंजक न होने के कारण प्रिय नहीं है । इस कारण, लोगों को यह भी परवाह नहीं है कि पहिले के ग्रंथ व ग्रंथकर्त्ता थे भी कि नहीं । इस नगर में व्यवसायिक विद्वान के रूप में शिगराचार्य है जिन्हें आपने आज देखा, तथा एक दूसरे 'त्यागय्या' इस नाम के वृद्ध व्यक्ति है । इनके अतिरिक्त, इस विषय में नाम लेने लायक अन्य एक भी नहीं है । दूसरे शौकीन और, थोड़ा सा प्रायोगिक गाने-बजाने वाले, कोई-कोई है । परन्तु वे आपको सुनाने लायक मुझे नहीं लगते । यहां के लोगों की रूचि दिन प्रति दिन घटती जा रही हैं । पल्लवी (आलाप) (अस्ताई) गायन एक-एक घन्टा सुनते व्यर्थ में बैठे रहते है । ढोल सरीखे तुच्छ वाद्य की पिटाई को ही पसन्द करते हैं । इस प्रकार, समाज की एक चमत्कारिक स्थिति बनती चली जा रही है । मैंने देखा, दिशा भ्रम हो रहा है अत: मित्रों को एकत्रित कर व्याख्यान दिये । पत्रिकाओं में लेख लिखे । अब मेरे कहने की सत्यता कुछ लोगों को ठीक समझ में आने लगी है । अरे, राग का आलाप करिये, परन्तु यदि दिन भर आप ऐसे ही चिल्लाते बैठेंगे तो लोगों को सहज में ही ऊब आने लगेंगी । हर बात की मर्यादा होती है । यहां, ताल की भी यही कहानी है । व्याख्यानों से जितना संभव है मैं सुधार कर रहा हूं । परन्तु मैं आपसे एक प्रश्न पूछता हूं, वह यह है कि, केवल स्वरों से, अर्थात गीतों के शब्द के बिना, मानव शरीर पर आनंद, दुख: आदि परिणाम क्या संभव है ? मेरा मत यह है कि यह कदापि संभव नहीं है ।

मैं. :- आपने ग्रंथों में "सरी-वीरे" इत्यादि कहा हुआ पढ़ा ही है । उसमें, शब्दों की अपेक्षा नहीं की गई । शब्द (गीत) व स्वर इनके संयोग से परिणाम शीघ्र और उत्तम होगा यह तो आप भी कहते हैं । परन्तु एक तर्क मैं यह कर रहा हूं कि यदि कोई व्यक्ति आपको न समझ में आने वाली अथवा शब्द रहित भाषा में भांति-भांति के दु:ख-विलाप आवाज से करने लगे तो उस विलाप के स्वरों को सुनकर आपको दु:ख लगेगा कि सुख या कुछ भी नहीं लगेगा ।

उ. :- मन को बुरा लगेगा ।

मैं. :- इसी प्रकार तुर्किस्तान का एकाद व्यक्ति आकर ताल स्वर में अपनी भाषा में (हमारे लिये तो वह निरे स्वर ही हैं) मधुर स्वर समूहों की ताने ले तो अच्छा लगेगा कि बुरा ?

उ.- दु:ख नहीं लग सकता । ऐसा लगता है कि अच्छा ही लगेगा । परन्तु यह विषय अभी भी चर्चा करने योग्य है मैं ऐसा मानता हूं । योरोपीय देशों में भी यह चर्चा चल रही है ।

मैं.– मैं भी यह मानता हूं कि कुछ स्वरों के भांति-भांति के उच्चारण से शरीर में भांति-भांति के मनोविकार उत्पन्न हो सकते है। दाह संस्कार के गीतों की गंभीरता निराली ही प्रतीत होती है। उनसे स्वच्छद नाचने जैसी प्रवृत्ति नहीं होती। केवल मधुर स्वरों से व योग्य अंगाभिनय की सहायता से अंत:करण द्रवित हो सकता है। सा, म, प, इन एक–एक स्वरों से इस प्रकार का कार्य नहीं हो सकता। परन्तु क्या इसका अर्थ यह लूं कि जिस राग अथवा स्वर समूह में इनमें से कोई स्वर वादी होगा वह राग अथवा समूह उस रस के लिये अधिक अनुकूल होगा। श्री नायडू ने कहा कि वे इस विषय पर विचार करने वाले है।

मैंने श्री नायडू से इस प्रकार का आग्रह कर रखा है कि, हमारे प्राचीन ग्रंथकार व संगीत पंडित मूर्ख थे तथा उनकी कल्पना निराधार व उटपटांग थी, यह न ठहराते हुए वे चतुर एवं विद्वान थे उनके मत विचार करने योग्य है, इस प्रकार विचार करने का जितना प्रयत्न हो उतना अच्छा है और उनका मैं पक्षधर हूं। हां, प्राचीन ग्रंथों में अतिशयोक्ति का भाग एकदम नहीं है ऐसा कहने के लिये भी मैं कदापि तैयार नहीं हूं। परन्तु क्या इस प्रकार की अतिशयोक्ति सभी राष्ट्रों के संगीत इतिहास में देखने में नहीं मिलती ? तथापि, पश्चिम के विद्वानों में उनके अपने संगीत को लेकर कितना अभिमान होता है ! जहां तक संभव हो वहां तक प्राचीन एवं नवीन संगीत के इतिहास को लिखने व खोज करने में कितने तत्पर रहते है। हमने अपने पूर्वजों को अज्ञानी मान कर ठीक ७२ मेलों से ही प्रारम्भ कर लिया तो इसमें अपना गौरव क्या होगा ? हमारे विद्वानों को पहिले का संगीतशास्त्र समझकर, उसे खोज, वर्तमान संगीत किस प्रकार से निर्माण हुआ है, इसका निर्णय करना चाहिए। आप ही कहते हैं कि आपके ७२ मेल २०० वर्ष पुराने है। अर्थात उसके पूर्व किसी न किसी प्रकार का संगीत तो रहा ही होगा। "मेल" शब्द ग्रथों में भी आता है। अत. उसके पूर्व भी 'मेल' अस्तित्व में थे ही। वे कितने व कौन से थे यह शोध करना उनमें से ७२ नवीन कैसे, कौन से और कब उत्पन्न किये गये यह शोध करना वेद के समय कितने स्वर थे, वे कौन–कौन से थे, उनके उपरान्त सप्त स्वर कैसे-कैसे निकले व कब निकले, तथा मूलत: कौन से मेल कायम हुए यह सब शोध करने से क्या आपकों संगीत इतिहास नहीं मिलेगा ? मुझे लगता है सर्वप्रथम इस विषय पर ग्रंथों को एकत्रित करने में लग जाना चाहिए तथा उनके आधार से प्रारम्भिक मेलों को निश्चित करना चाहिये। मैं इस प्रकार की बातें महत्वपूर्ण समझता हूं, तथा यह प्रार्थना करता हूं कि इस विषय में आप भी अपना मन लगावें।

उ.– इन विषयों में इस प्रकार की खोजबीन करने की मेरी भी इच्छा है। परन्तु यहां मैं अकेला हूं। यहां मुझे विद्वानों की मदद नहीं है। उन्हें इसमें रूचि भी नहीं है। इस विषय में वे एकदम उपेक्षा दिखाते हैं। ग्रंथ पढ़ा हुआ व उसे समझा हुआ मुझे यहां आज तक एक भी नहीं दिखा। आप इस अंचल का प्रत्यक्ष प्रवास-भेंट करने वाले हैं ही। मेरा यह मत है कि आपकों भी इसी प्रकार का अनुभव आवेगा।

प्र.– श्री नायडू। स्वरों के वर्ण बताये गये हैं। क्या इसमें कोई गहरा शास्त्रीय रहस्य है ?

उ.– वह सब बकवास है। यह तो आप अच्छी तरह जानते है कि हमारे कवि कल्पना विलास

में अत्यन्त कुशल थे। यह उसी का एक नमूना है। मुझे ऐसा लगता है कि जो चतुराई स्वरों के द्वीप देवता बताने में लगी वही उनके रंग बताने में भी।

प्र.– क्या आपने "१६ वीं शताब्दी" के १८९५ के अक्टूबर का अंक देखा था? उसमें "कलर म्यूजिक" नामक एक लेख पढ़ने लायक हैं। ऐसा कहते हैं कि योरोप में इस विषय पर बड़ा वाद-विवाद चल रहा है। ऐसा लगता है कि हमारे पूर्वकालीन विद्वानों की दृष्टि भी इस ओर गई थी। यह भी आज सभी लोग स्वीकार करने लगे हैं कि योग्य साधनों के अभाव में जिन्होंने ७ स्वर बराबर निश्चित किये तथा उनके २२ सूक्ष्म स्वर देखे व उनका व्यवहार किया, वे लोग विचित्र बुद्धि के रहे होंगे।

उ.– मैं तो यह मानने को तैयार नहीं कि उनको इस प्रकार का कोई तारतम्य भाव समझ में आया होगा।

मैं.– अस्तु। यह कहना होगा कि यह एक दूर्भाग्य पूर्ण परिस्थिति है।

प्र.– क्या आपके ७२ जनक व १००० जन्य रागों की रचना भी काल्पनिक ही है?

उ.– हां। जिस प्रकार आपके यहां "रत्नाकर" में ६ राग एवं ३० रागिनी काल्पनिक रूप से मान ली गई है।

प्र.– "रत्नाकर" की रचना इस प्रकार की नहीं है। उसमें राग दशविध बताये गये हैं। जैसे ग्रामराग, उपराग, तीन भाषा व ४ अंग।

उ.– ओह। ऐसा है क्या? तो फिर यह रचना राग विबोध की होगी।

मैं.– "रागविबोध" में भी ऐसा नहीं है। "रागविबोध" में तो ठीक आपके समान ही है। मेल व जन्य राग व्यवस्था है। केवल उनके नाम, स्वरुप व संख्या भिन्न हैं। राग व रागिनी की रचना "दर्पण" में है।

उ.– तब मैंने उसे उसी में पढ़ा होगा।

प्र.– क्या आपके पास 'दर्पण' है? मैंने उसे लाया है।

उ.– मेरे पास वह ग्रंथ नहीं है।

प्र.– आपने मुझे बताया कि "रागविबोध" का प्रथम अध्याय देखा है। उसमें कोमल "रेध" किस प्रकार लिखे गये हैं कल यहां आने पर क्या वह दिखावेंगे? मुझे वह मिले नहीं। उसमें १५ विकृत एवं ७ शुद्ध स्वरों के नाम दिये गये हैं। परन्तु २२ श्रुति कागज पर लिखकर एवं मिलाकर देखने से "रेध" कोमल यह स्थान खाली रहते हैं। इसका कारण, मुझे इसका रहस्य मालूम करना है।

उ.– मै उन स्वरों को आपको नहीं बता पाऊंगा। कारण, वह ग्रंथ भी ठीक से समझ में नहीं आया।

प्र.– आज प्रातः शिंगराचार्य ने मुझे बताया कि कुंभकोणनम् के कालेज में प्रोफेसर श्रीनिवासराव इस विद्या के अच्छे ज्ञाता है। क्या उन्हें आप भी जानते हैं? यदि आप कहेंगे तो उनसे जाकर मिलूंगा और जानकारी प्राप्त करुंगा।

उ. – वे मेरे मित्र ही है। वे संस्कृत भाषा के अच्छे विद्वान है। वे यहाँ बहुत दिनों थे। मेरा उनसे अच्छा परिचय था। उन्होंने जिज्ञासावश पुस्तकें पढ़ना प्रारंभ की, और जब वह समझ में नहीं आई तो छोड़ दिया। उन्हें संगीत का कोई संसर्ग नहीं है। वहाँ जाने की आपको कोई आवश्यकता नहीं है। शिंगराचार्य की अपेक्षा मुझे उनके बारे में अधिक ज्ञात है।

इतने वार्तालाप में छः बज गये। एक घंटा पूर्ण होने पर मैं उठ बैठा श्री नायडू ने मुझसे कहा कि उनकी इच्छा मुझे यहां की एक प्रसिद्ध बाई का गायन (जिनका नाम वीणाधनम् है) सुनवाने की है। क्या उसे सुनने में मुझे कोई आपत्ति है ? मैंने कहा, गाना सुनने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। उन्होंने ऐसा अवसर मुझे प्रदान करना स्वीकार किया है। उन्होंने बताया कि उन्होंने उस बाई को, इस विषय में निर्देश दिये है कि किस प्रकार गायन किया जाय। तथा वह पल्लवी कितनी योग्य रीति से गाती है यह देखने लायक है। मैंने उनका आभार माना तथा प्रथम साक्षातकार पूर्ण हुआ। अब कल पांच बजे दूसरी भेंट निश्चित हुई है। श्री नायडू से एक प्रश्न और पूछा था आपके यहां वादी संवादी के नियम क्या है ? परन्तु वे बोले कि हमारे यहाँ इस प्रकार की खटपट एकदम नहीं है। सच कहूं तो उसके अर्थ एवं उपयोग भी मुझे ज्ञात नहीं है।

सुश्री नागरत्नम् के गायन की बैठक– १८ नवम्बर १९०४

अगले दिन जैसा निश्चित हुआ था संध्या समय श्री नायडू से भेंट करने अगले दिन घर से निकला। साथ में थैले में पांच-छः संस्कृत पुस्तकें भी रख ली थी। यद्यपि,पुस्तकों से प्राप्त हो सकने वाले ज्ञान की आशा अब क्षीण हो गई थी, फिर भी श्री नायडू को अपनी जानकारी भी तो देनी थी। वे बुद्धिमान हैं, मेरी दी हुई जानकारी का कुछ न'कुछ उपयोग करेंगे ऐसा मुझे लग रहा था। दुर्भाग्य से ट्राम बहुत भर जाने के कारण, प्रतीक्षा में सड़क पर खड़ा रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि कास्मोपोलिटन क्लब में साढ़े पांच बजे जाकर पहुंचा। वहां श्री नायडू मुझे क्लब के द्वार पर ही मिले और बोले कि उन्हें आज एक बैठक में जाना है अंतः कल बैठेंगे। मेहनत व्यर्थ गई, अतः कुछ निराश भी हुआ। परन्तु काम मेरा अपना होने से मुझे मालूम है कि जितने चक्कर लगाने पड़ेंगे, लगाऊंगा। घर लौटते ही जा रहा था कि उसी बीच श्री ठाकुर की सूचना के अनुसार "मद्रास मेल" पत्र में गायन की एक बैठक के विज्ञापन का मुझे स्मरण हुआ। यह गायन आज सायं ६-३० बजे रामास्वामी स्ट्रीट में "गानमनोहरी एसोसिएशन" के तत्वावधान में होने वाला था। रामास्वामी स्ट्रीट मुझे मालूम नहीं थी। अतः उसका पता श्री नायडू से पूछ लिया तथा उस सड़क का पता लगाता हुआ गया। इस प्रकार की पार्टी में बिना निमंत्रण जाना ठीक नहीं था। परन्तु मुझे मद्रास में थोड़े ही दिन रहना था अतएव यह समझकर कि इस प्रकार का अवसर शायद फिर से प्राप्त न हो, उस गायनस्थल तक जा पहुंचा। यह भी मन में आ या कि यदि टिकट मिलने की संभावना हो तो टिकट भी ले लूं। वहां पहुंचकर दरवाजे के निकट गया तो एक व्यक्ति ने जीने की ओर ऊपर ऊंगली दिखाकर तमिल भाषा में कुछ कहा ? मैं जूते उतार कर, जहाँ अन्य व्यक्ति बैठे थे वहां जाकर बैठ गया। न तो मुझे किसी ने पहि–

चाना और न ही किसी ने पूछ-ताछ की । बाद में ज्ञात हुआ कि यह बैठक एसोसिएशन के सदस्यों ने चंदा करके की थी। अस्तु अब ऊपर जाकर बैठ तो गया ही था। गाने वाली स्त्री का नाम था नागरत्न। गायन अच्छा हुआ। अपने यहां के अनेक रागों की छाया उसके रागों में प्रतीत होती थी । परन्तु मैं यह नहीं पहिचान सका कि वे कौन से राग थे । केवल स्वर भर दिखाई पड़ रहे थे। नियम ज्ञात न होने के कारण उनके नाम बता सकना संभव नहीं था। राग कौन से है यह किसी से पूछना सँभव नहीं था कारण एक तो मैं बिना बुलाये पहुंचा था और उस पर भी इतनी धृष्टता दिखाना शोभा नहीं देता। ऐसा सोचकर मैंने किसी को कष्ट देना उचित नहीं समझा। मुझे जिन रागों की छाया दिखी वह इस प्रकार है :- पहिला राग "सारंग" जैसा था परन्तु उसमें धैवत दिखाई पडता था तथा रिषम लेते समय "ग" का स्पर्श होता था। शायद "नायकी" अथवा "श्री" राग हो। यहां नायकी बहुत प्रचार में है, ऐसा कहते है । शिंगराचार्य के यहां भी उसे ही सुना था। यहां "कान्हडा" शंकराभरण के थाट में गाते है। उस गायन में

T K T ∧ K T ∧ T

दूसरी एक विशेषता यह देखी कि "सोहनी" सरीखा "में ध नी सां नी ध प- रे-लंबासा सासा रेग रेसा" इस प्रकार के चमत्कारिक स्वर समूह वह बाई लेती थी जो सुनने में बुरे नहीं लगते थे। तीव्र

T T K T ∧

रिषम व कोमल धैवत उस राग में थे। खूबी इस प्रकार थी कि "सारेगरेसा" व मे "ध नी सा" यह भाग पृथक-पृथक रखकर विस्तार कर रही थी। फिर कुछ समय बाद उन्हें जोड़कर अवरोह करतें समय "रिषम" थोड़ा उतरा हुआ दिखाई देता था परन्तु आरोह में स्पष्ट "रे" होने से "सोहनी" से अलग लगता था। तीसरी चीज में "जोगिया" का स्वरूप दिखता था। यहां "कनकाँगो" आदि प्रारंभिक पहिले चक्र के राग है तथा वे "जोगिया" जैसे दिखते हैं, कारण उसमें दो रिषम व धैवत (भिन्न नामों से) लगते है। जो उनकी रचना से स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इस चीज में आरोह में तीव्र "नी" तथा अवरोह में कोमल "नी" आती थी। चीज का थाट भैख जैसा था परन्तु धैवत पर जोर नहीं था। परन्तु जोगिया की भांति मध्यम बढ़ाकर "सा" में मिलना होता था। बाई की आवाज खनकदार थी। बीच-बीच में "मोडयूलेशन्स" विकराल चीत्कारों सहित गाने पर मुझे जरा नीरस लगता था, परन्तु लोग उसे ही "भले-भले" कहते थे। कई बार, गायन के उपरांत केवल आलाप की फर्माइश उनसे की गई। वें कानडा, भैखी, पीलू इत्यादि के समान दिखते थे। साथ करने वाला वायलिन वादक अच्छा मधुर बजाता था। तबला (मृदंग) भी जैसा अपने यहां गायिकाओं के साथ बजता है, वैसा बज रहा था। पंजाबी ठेका व त्रिताल जैसा बार-बार बजाया जा रहा था। मुझे लगा कि इस प्रकार के तालों में अपने यहां के तबला वादक बड़ा असर पैदा करते है। संक्षेप में गायन मुझे पसन्द आया ।

वहां के लोगों ने बताया कि यह बाई मैसूर महाराज के यहां थी । महाराज के गुजर जाने के बाद वह यहां चली आई है। बम्बई की बाइयों की भांति बीभत्स हाव-भाव वह नहीं करती थी। संभवत: उसके गीत भक्ति विषयक होंगे। गायन सुनकर नीचे लौट आया। वहीं नीचे खड़े हुये लोगों की बातचीत से ऐसा विदित हुआ कि श्री "त्यागैया" नामक इस शहर के

दूसरे प्रसिद्ध गायक नज़दीक ही रहते हैं। अतएव यहां से उनके घर गया। उनसे मुलाकात भी हुई। काफी वृद्ध गृहस्थ हैं। अब वे गा नहीं सकते। ऐसा सुना कि मद्रास में वे शास्त्र में सभी की अपेक्षा उत्कृष्ट है। उन्होंने तेलगू भाषा में "स्वरपल्लवी" नामक एक पुस्तक लिखी है। वह मैंने उनसे खरीद ली। मुझे उनसे भी संगीत चर्चा करनी थी। उसे करने हेतु, पुस्तक का विषय समझने का निमित्त ठीक लगा। क्या मैं कल आठ बजे आऊं" यह मैंने उनसे पूछा, जिसकी स्वीकृति उन्होंने प्रदान की।

श्री त्यागैय्या से चर्चा – १८ नवंबर १९०४

आज प्रातः ८.३० वजे "त्यागैय्या" के घर पहुंच गया। वे दो मील दूरी पर रहते है। है वे सीधे और सरल व्यक्ति प्रतीत हुए। उनके दो भ्रात्रीय जो स्नातक भी हैं, घर पर ही थे। अतः बातचीत करने में कठिनाई उत्पन्न नहीं हुई। "त्यागैय्या" को केवल तमिल और तेलगू भाषा ही आती है। वार्तालाप इस प्रकार हुआः—

प्र. – श्री त्यागैय्या। आपने अपना संगीताभ्यास किस पुस्तक से किया, अथवा वह किस पुस्तक के आधार से किया ?

उ. – मेरा मत स्वतन्त्र है और उसे मैंने ग्रंथ रूप में लिख भी रखा है। मैं किसी का ग्रन्थ अथवा किसी का मत नहीं मानता। मेरा ग्रन्थ ही लोग आधार स्वरूप मानते है।

प्र. – शायद आप मेरा प्रश्न सही समझे है। आपकी पुस्तक प्रकाशित होकर अभी १२ माह भी नहीं हुए। मैं यह पूछना चाहता हूं कि क्या आपने अपनी बाल्यावस्था में इस विषय पर कोई ग्रन्थ देखे थे।

उ. – यहां आधारभूत ग्रन्थ कोई है ही नहीं।

प्र. – ७२ मेलकर्ता पद्धति का मूलकर्ता कौन था व उसने उन्हें कब बनाया इस विषय की जानकारी क्या आप मुझे देंगे ?

उ. – वे अनादि है। इनकी रचना करने वाला कोई नहीं है।

प्र. – (वाह ! क्या कहना है !) किसी प्रकार का आनंद होने पर उसे हर्षोद्गार से प्रकट करना तथा दुःख होने पर एक प्रकार का विलाप करना यह तो अनादि माना जा सकता है। परन्तु ऐसी गणितीय संगीत पद्धति को अनादि कैसे कहेंगे ? मुझे ऐसा लगता है कि इसको नियमबद्ध करने वाला कोई न कोई होना ही चाहिये।

उ. – हां वैसे देखा जाय तो ऐसा कहते हैं कि गोविन्द दीक्षित ने यह रचना की थी। वे मैसूर में राजाश्रित थे।

प्र. – क्या आपका यह तर्क है कि उनके समय के पूर्व यह मेल इत्यादि नहीं थे ?

उ. – "गोविन्द दीक्षित" ये "जयदेव" के समय के थे जिन्होंने गीत गोविन्द लिखा था। वे स्वयं जयदेव के शिष्य थे, ऐसा उन्होंने अपने एक प्रबन्ध में लिखा है।

प्र. – तो फिर इस बात को लगभग हजार वर्ष हो गये होंगे। उस समय मैसूर में गोविन्द दीक्षित ने ख्याति अर्जित की होगी इस पर मुझे कुछ आश्चर्य लग रहा है। जयदेव कवि को तो बहुत प्राचीन मानते है।

उ. – हाँ वे उतने ही पहिले हुए थे तथा वहीं उनकी मृत्यु हुई। जयदेव की अष्टपदियाँ मेरे पास थी।

प्र. – उनके मूल राग एवं तान में से क्या एकाद को आप गा सकेंगे ?

उ. – नहीं।

प्र. – क्या गोविन्द दीक्षित ने कुछ ग्रन्थ लिखे हैं ? और यदि लिखें है तो वे मुझे कहां मिलेंगे।

उ. – उन्होंने ग्रन्थ लिखे ही नहीं। परन्तु "प्रबंध" और "ठाय' की रचना की थी। उनमें से ८,१० प्रबंध, उतने ही गीत व ३,४, ठाय मेरे पास तेलगू में लिखे हुए हैं उनमें से एक मैने अपनी पुस्तक में भी दिया है। पृष्ठ ८ (उसे गाकर दिखाया "भो रघुवर" के समान लगा)

प्र. – "त्यागैय्या" अयरवाल को क्या आप जानते है ?

उ. – हां। वे अभी अभी कुछ काल पूर्व ही तो हुए। मेरे पिता उन्ही के शिष्य थे। वे उत्तम गायक थे। गोविंद दीक्षित, ये संगीत नायक थे। वे अपनी चीजें संस्कृत में रचते थे। "त्यागैय्या" तेलगू कवि थे उन्होंने १००० कवन अथवा कीर्तन रचे थे। हमारे घर में उसमें का अधिकांश भाग पांडुलिपि में लिखा हुआ है। उनके कीर्तन अत्यन्त रसपूर्ण है। वे सबको समझ में आने लायक भाषा में होने के कारण अत्यंत प्रिय एवं प्रचलित हुए है। दीक्षित के प्रबन्ध कठिन तथा संस्कृत भाषा में होने के कारण आम जनता की बुद्धि के परे हैं। उनका प्रसार नहीं हो सका। आप जहां भी जायेंगे वहां लोग "त्यागैय्या के कीर्तन गाते हुए मिलेंगे। आज के सभी गायकों में उनका स्थान सर्वोपरि रखना चाहिये। अपने समय में वे एकमात्र प्रसिद्ध थे। मेरे पास भी बहुत से कीर्तन है। परन्तु उनका छापना बड़े खर्च का कार्य है।

प्र. – आपके यहां दक्षिण में क्या कोई संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन करता है ? क्या आपने भी उनका कुछ अध्ययन किया ?

उ. – ऐसा अध्ययन किया हुआ मुझे भी कोई नहीं मिला। तथा हमारी पद्धति ग्रन्थ पर पर आधारित नहीं है अतएव ग्रन्थों की आवश्यकता ही नहीं है।

प्र. – "त्यागैय्याजी यदि गोविन्द दीक्षित जयदेव काल के थे और यदि यह सच है कि उन्होंने "मेलों की रचना की तो उन्होंने इस विषय पर संस्कृत में ग्रन्थ भी अवश्य लिखा होगा। उनके रचे हुए कवन सस्कृत में ही है, यह आप भी कहते है। आपके घर में तेलगू लिपि की पाँडुलिपियां भी है ऐसा कहते हैं। क्या उनमें ऐसे ग्रन्थ नहीं है जिनकी भाषा संस्कृत व लिपि तेलगू हो। उन पांडुलिपियों को जरा प्रकाश में लाकर तो दिखाइये। उनमें से कुछ न कुछ ढूंडने का प्रयत्न करेंगे।(इस पर उन्होंने कुछ पांडुलिपियां बाहर लायीं) मैंने उनमें से एक नोट बुक उठाकर पढ़ने के लिये आग्रह किया। उसमें इस प्रकार लिखा हुआ निकला "तस्य जातं सुनामकं" त्यागैय्या बोले– आप जैसा कह रहे थे वैसे श्लोक इसमें दिखाई देते है। परन्तु मैंने पढ़ने की खटपट कभी नहीं की। ऐसा प्रतीत होता है कि यह पुस्तक अपूर्ण है।

प्र. – क्या इस पुस्तक को मैं घर ले जाऊं ? मेरे उपयोग की होगी तो उसे देखूंगा– उसकी नकल कर लूंगा तथा वह हो जाने के उपरान्त पुस्तक वापस कर दूंगा। क्या इस प्रकार की पुस्तकें और भी मिलेंगी ?

उ. – आप इसे ले जाईये। काम हो जाने पर इसे भेज दें। मेरे चाचा यहां का संगीत भली भांति सीखकर बाद में हिन्दुस्तानी संगीत काशी जाकर सीखे थे। उन्होंने वहां के राग-रागिनी के आरोह-अवरोह इस कापी में लिख रखे है। (जिन्हें दिखाकर) आपको इसका कुछ उपयोग हो तो देखें।

उन्होंने ऐसा कहकर वह दोनों पुस्तकें मुझे प्रदान की। काम हो जाने पर लौटा देने की बात मैंने स्वीकार की है। त्यागैय्या अत्यन्त सरल एवं सभ्य व्यक्ति हैं। वे खुले मन से मुझसे बातचीत कर रहे थे। उन्होंने बताया कि दक्षिण में इटैयापुरम् स्थान पर सुब्राम दीक्षित रहते है। उनकी ख्याति बहुत है। यदि आप उनसे भेंट करेंगे तो बहुत लाभ होगा। इसके उपरान्त उन्होंने अपनी पुस्तक के कुछ राग–गाकर सुनाये। वे राग उन्होंने ठीक ही गाये। उनकी वृद्धावस्था के कारण मैंने उनसे अधिक अपेक्षा नहीं की थी।

प्र. – आपके मद्रास नगर में संगीत–शास्त्र जानने वाले क्या कोई और हैं ?

उ. – नहीं। कहीं–कहीं प्रायोगिक गायन करने वाले कुछ–कुछ लोग है ? परन्तु उन्हें उनके नियम इत्यादि कुछ नहीं आते। क्या आपने शिंगराचार्य से भेंट की है ?

मै. – हां। उनसे मेरा वार्तालाप हुआ है।

वे. – तो फिर अब इस शहर में कोई दूसरा सुनने लायक नहीं है। कथा–कीर्तन करने वाले अथवा थोड़ा बहुत प्रायोगिक गायन करने वाले है। परन्तु आपको जिस जानकारी की आवश्यकता है वह बताने वाले इस नगर में नहीं मिल सकते।

श्री नायडू से भेंट का पुनः प्रयत्न –

सायंकाल ४ बजे कास्मोपोलिटन क्लब में श्री नायडू से भेंट करना निश्चित था। यह भी निश्चित हुआ था कि वे अपनी संस्कृत पुस्तकें लावेंगे तथा उन पर कुछ चर्चा भी करेंगे। क्लब में पहुंचकर मैं डेढ़ घण्टे बैठा रहा परन्तु श्री नायडू नहीं आये। यह बड़े दुःख की बात थी। आने जाने और पूरा एक दिन व्यर्थ में नष्ट होने के कारण खराब लगा। अधिक दुःख होने का एक कारण यह भी था कि क्लब में जाने की उतावली में ट्राम में चढ़ते समय मैं नीचे गिर पड़ा और पैर में काफी चोट आयी। घुटना फूटने से धोती में जगह-जगह पर खून लग जाने से खराब दिखने लगा। परन्तु आज का दिन व्यर्थ जावेगा और यदि कल पैर में दर्द बढ गया तो कई दिन घर में ही बैठे रहना पड़ेगा तथा जिसके कारण बातचीत का अवसर भी जाता रहेगा, इसी भय से क्लब में गया था। श्री नायडू चुनाव की गड़बड़ी में है ऐसा मैंने सुना था। परन्तु आश्वासन देकर वे उसे निभा नहीं पा रहे हैं यह देखकर अच्छा नहीं लगा। अस्तु।

श्री नायडू का संस्कृत ग्रन्थों का ज्ञान सतही है तथा उन्हें उनका ज्ञान भली-भांति नहीं है यह मुझे पहिले भाषण में ही प्रतीत हो गया था। इसी कारण मैं आज का भाषण केवल दक्षिण पद्धति पर ही देने वाला था तथा उनसे पर्याप्त जानकारी प्राप्त करना चाहता था। परन्तु ऐसा योग नहीं बना। कौन जाने यदि उनको ऐसा लगा हो कि मैं ग्रन्थ चर्चा में उनकी कम-जोरियां उजागर करूंगा। पर मेरा इस प्रकार का उद्देश्य कदापि नहीं था। कारण कुछ भी रहे हों, परन्तु यह भी सत्य है कि उन्होंने दो-दिन तक दो प्रकार से अपने ही आश्वासनों को टाल दिया। अब यदि संभव हुआ तो कल सोमवार को एक बार भेंट करने का पुनः प्रयत्न करूंगा। अन्यथा फिर उनका पीछा छोड़ देना पड़ेगा। अनेक अवसरों पर "दूर के ढोल सुहावने" इस कहावत का प्रसंग आता है यह मनोरंजक लगता है।

ऐसा नहीं कि दक्षिण पद्धति की जानकारी प्रदान करने के लिये केवल श्री नायडू की ही नितांत आवश्यकता है। क्योंकि वे विद्वान होने से कुछ इतिहास की जानकारी देंगे तथा अति-शयोक्ति व दंतकथा उसमें सम्मिलित नहीं करेंगे मुझे ऐसी आशा थी। मैं जब श्री नायडू की प्रतीक्षा में बैठा था उसी समय श्री नारायण स्वामी एय्यर, जो यहां के जस्टिस एय्यर के सुपुत्र है, क्लब में आये। उन्होंने बातचीत के दौरान यह बताया कि आप रामेश्वरम् जा ही रहे है अतएव इट्टैयापुरम् में जाकर दीक्षित से भेंट कीजिये। दक्षिण में इस विषय पर उनसे बढ़कर एक भी नहीं मिलेगा। वे, वहां के राजा के पास है। इस राजा को भी संगीत का शौक बहुत है। इन्होंने दो तीन माह पूर्व एक पुस्तक प्रकाशित की थी। वह मेरे पास है यदि उसे पढ़ने की आपको इच्छा हो तो मैं एक दो दिन के लिये दे सकूंगा। यदि आप सोमवार को यहां आवें तो मैं उसे लेता आऊंगा। ५-३० बजे तक श्री नायडू के आने की राह देखकर लंगड़ाता हुआ क्लब से बाहर आया और एक रिक्शा करके वापस घर आ गया और पैरों की मल्लहम पट्टी करने लगा। "ओरियंटल लाइब्रेरी' में एडवान्स के १० रूपये भेज दिये थे, परन्तु आफिस चार बजे ही बन्द हो जाने के कारण रूपया जमा नहीं हो सका। आज रविवार को वह पुस्तकालय खुला रहता है।

दक्षिण के कीर्तनों पर प्रतिक्रिया –

रविवार, २० नवम्बर १९०४
प्रातः १० बजे

आज प्रातः हमारे मित्र रेवेन्यू विभाग में नौकरी करने वाले एक सज्जन को हमारे घर लाये तथा बोले कि ये "त्यागराज" के बहुत से कीर्तन बहुत अच्छे गाते है। उनका गाना मैंने सुना। उन्होंने प्रथम "रीतिगौल" राग में एक कीर्तन गाया। वह राग हमारे "बागेश्वरी" (पीलू मिश्रित) जैसा प्रतीत हुआ। कीर्तन को एक उच्च श्रेणी का गायन समझा जाता है। अपने यहां ख्याल या ध्रुवपद होते हैं, उसी स्तर का गायन इसका भी समझा जाता है। इसमें पल्लवी, अनुपल्लवी, एवं चरणम् (स्थायी, अन्तरा व आभोग) इस क्रम से होते है। इन विभागों की स्वर रचना भी साधारणतः ऊपर बताए हुए अपने यहां के विभागों जैसी रहती है। त्यागराज का नाम यहां पर घर-घर और मुंह-मुंह में है। अपने यहां जैसे "तानसेन" वैसे यहाँ "त्यागराज" उस महान् गायक ने यहां के गोविन्द दीक्षित को भी प्रसिद्धि में पीछे छोड़ दिया है। कारण, इन्हे भाषा का एक विशेष लाभ मिला। ये गीत प्राकृत भाषा में होने के कारण घर-घर में प्रवेश कर गए हैं। "त्यागराज" के कुछ गीत शिंगराचार्य ने अपनी पुस्तक में सम्मिलित किये हैं। इस अंचल में संगीत पद्धति सरल व सीधी है। "मेलकर्ता" व जन्यराग की जानकारी यहां पर सर्व सामान्य है। यह नहीं कि सभी मेल सर्व परिचित हैं। परन्तु ऐसा दिखता है कि मेल रचना के तत्वों का यथेष्ट ज्ञान रहता है। "ओरियन्टल म्यूजिक" को पढ़कर यहां की पद्धति को समझबूझ कर मैं यहां आया हूँ। और यह बहुत अच्छा भी हुआ। नहीं तो इस पद्धति को समझने में ही कुछ समय लग जाता। यहां के लोगों के सम्मुख उनकी मेल रचना के तत्व तथा जन्य रागों का वर्गीकरण स्पष्टरूप से बताने पर उन्हें आश्चर्य हुआ कि मुझे उनका एक भी राग गाना न आते हुए भी यह रचना मैंने कैसे समझ ली। परन्तु इसका श्रेय चिन्ना-स्वामी मुदलियार को है। उनकी छोटी सी पुस्तक अप्रतिम है। वैसे ही कप्टन डे की पुस्तक में भी यहां के संगीत की भरपूर जानकारी दी गई है। यहां की संगीत रचना समझने के लिये इसके दो–चार पाठ भी सीखने की आवश्यकता नहीं है। जब मैं बम्बई में था मैंने अपने "स्ट्रे थॉट्स" इस लेख में, यह बातें लिख रखी थी। इसी कारण, मेरे यहां के वाद-विवाद में वह भाग (प्रारंभिक ज्ञान का) नहीं है। इस संबंध में आश्चर्य नहीं होना चाहिये। जो जानकारी है, उसके सँबंध में भी विचार करना तथा अपना और दूसरों का समय व्यर्थ खराब करने का कोई अर्थ नहीं है। यहां के "भारूड" सदृश्य ७२ मेलकर्ता तथा उनके नाम, "कटपयादि" फार्मूले, उनके "रारिरू" "गागिगू" संकेत, तथा उनके ६ चक्र यह सब भाग "ओरियन्टल म्यूजिक" में जिस प्रकार समझाये गये है वैसे उन्हें मुंहजुबानी यहां अन्य किसी को समझा सकना संभव नहीं है। यह पुस्तक मुझे गत दिसंबर माह में श्याम राव विट्ठल ने मद्रास से लाकर दी थी। उसे मैंने सावधानी से पढ़ा था। यह पुस्तक श्याम राव ने फादर सैथर को दिखाने के लिये मंगवाई थी। मैं यह मानता हूं कि यह बहुत उपयोगी और अच्छी तरह लिखी गई है। श्रीमुदलियर यह एक अत्यन्त बुद्धिमान सज्जन हो गये है। उन जैसे बहुत कम देखने में आते है।

यह कहना एक अर्थ में गलत नहीं है कि दक्षिण का संगीत पद्धतिबद्ध है। राग व उनके स्वरों को कठोर नियमों में बांधना तथा वह भी इस रीति से कि उनके मात्र आरोह–

अवरोह में भी परस्पर भिन्नता रहे। ऐसी पद्धति को पद्धतिबद्ध कहना शोभा देता है। परन्तु वह जितना पद्धतिबद्ध है उतना ही कलात्मक भी है कि नहीं यह भी देखना है। प्रत्येक गायक को मेलकर्ता व जन्यराग जिन्हें वह गा रहा है, उसकी जानकारी रहती है। साधारण स्वर ज्ञान भी रहता है जो अधिक कसबी होते है उनका स्वरज्ञान व स्वरों की खटपट अधिक अच्छी रहती है। यह स्वीकार करना होगा कि अपने यहां ऐसी खटपट बहुत हद तक कम है। अपने यहां अच्छा गायक भी स्वरों के संबंध में दुर्लक्ष्य करता है। वैसा यहां नहीं है। यहां महिलाओं के गायन में प्राय: सभी चीजों में स्वरों की चमत्कारिक रचना का कुछ भाग (सरिगम के रूप में) समाविष्ट रहता है। ऐसा लगता है कि यह सिद्ध हो सकता है कि तुलात्मक दृष्टि से यह पद्धति नवीन ही है तथापि यह कहना त्रुटिपूर्ण होगा कि संस्कृत ग्रन्थों की जानकारी तथा उनका संगीत यहां प्रचलित है। मैंने अभी तक दूसरे स्थानों को नहीं देखा है परन्तु सर्व श्री नायडू, शिंगराचार्य व त्यागय्या ये अनुभवी है, उनका जो यह कहना है वह अर्थ पूर्ण हैं ऐसा मुझे लगता है यह तो निश्चित है कि कम से कम मद्रास में तो उन पुस्तकों को समझने वाला कोई नहीं है। यह भी दुर्भाग्य की बात है कि यहाँ के संगीत का शास्त्र जानने वाले यहां पर अन्य कोई नहीं है। ध्यान में रखने लायक एक बात यह अवश्य है कि यहां की संगीत पद्धति में ग्रन्थों में वर्णित रागों के नाम बहुत है परन्तु यह देखना लाभ दायक होगा कि इस पद्धति के रचयिता ने वह नाम क्यो रखे तथा उनके स्व-रूपों को ग्रन्थों का कौन सा अर्थ निकाल कर निश्चित किया। यदि रात्नाकर के रागों के स्वरूप यहा के उन-उन रागों के स्वरूपों से मिलाये जा सके तो यह समझना चाहिये कि कुछ न कुछ शोध की संभावना है। यह भूलना नहीं चाहिये कि यह एक प्रायोगिक कला है। "ओरियन्टल म्यूजिक" में रागों के वर्ज्या-वर्ज्य पढ़ लेने से हमें वह राग आ गया, ऐसा नहीं समझना चाहिये। यहां के लोग गाते समय उनके स्वरोच्चार किस प्रकार करते हैं, यह भी किसी प्रमाण में समझ लेना आवश्यक है। मुझे ऐसा लगता है कि, प्रत्यक्ष कानों से सुनकर, तथा आरोह-अवरोह वे कैसे पढ़ते है तथा उन्हें गाने लगते हैं, यह समझने पर ही पुस्तक के वर्णन उपयोगी हो सकते है। अगर हिन्दुस्तानी गायकों को केवल वर्णन बताया जाय तो वे उसे गावेंगे परन्तु बिना सुने हुए इस देश की 'वाणी" कैसे आवेगी ? "वाणी" का तत्व समझ लेना चाहिये। श्री नायडू के कथनानुसार यह पद्धति दो तीन सौ वर्षो की है। रत्नाकर बारहवीं तेरहवीं शताब्दि का है। दोनों पद्धतियाँ पास-पास की है। उसमें रागों के वर्णन पर्याप्त प्रमाण में मिलते है परन्तु इन दोनों पद्धतियों में कुछ समान तत्व हैं कि नहीं यह प्रश्न उत्पन्न होना स्वभाविक है। यदि किसी प्रमाण में यह स्थापित हो सके तो यह सिद्ध किया जा सकेगा कि यह पद्धति रत्नाकर की पद्धति से ही विकसित हुई है। अभी रत्नाकर के समय की पद्धति बाद में भी खोजने का कार्य अवशेष रहा है। मुझे ऐसा लगता है कि इस रीति से संगीत इतिहास का शोध करते जाने से बहुत लाभ होगा। यह काम कठिन व बड़ी फुरसत व अक्ल से करने का है तथा इसमें विद्वानों की सहायता की भी अपेक्षा है। परन्तु जितनी जानकारी मिले उतनी संग्रहीत कर रखने की मैं सोच रहा हूं। यदि मुझे यहां कोई अच्छा शास्त्रज्ञ मिला व उन्हें मैं बम्बई ले जा सका, तो मैं समझता हूं कि मैं इस प्रकार के शोध कार्य का प्रारंभ करने का प्रयत्न तो कर सकूंगा। आगे ईश्वर की इच्छा।

कल सुबह हमारे यहां "त्यागराज" के कीर्तन गाने वाले (प्रसिद्ध) गायकों को बुलाया है। ऐसा कहते हैं कि गायन में अत्यन्त कुशल है। वे कैसा गाते हैं यह देखना है। इसका यह अर्थ नहीं कि ये गायन सुनने मात्र से मैं कतिपय रागों के स्वरूप केवल स्मरण मात्र से बम्बई तक ले जा सकूंगा। परन्तु गाया हुआ राग किस हिन्दुस्तानी राग के ढांचे पर है यह ध्यान में रहेगा। दूसरी बात यह कि इस प्रदेश के स्वरोच्चाण करने की विधियां "वाणी" पर ध्यान रखना है। वे अपने गायन में कौन से अलंकार व कौन से स्वरों को मुख्य रखते है। केवल गायन प्रारम्भ होते ही वे द्रविड़ क्यों लगते हैं ? यह ध्यान में रखना है कि उसमें प्रदेश की कौन सी प्रमुख तरकीबें प्रयोग में लाते हैं। यह देखना है कि बाद में अपने यहां के राग इन विशेषताओं के साथ कहने पर कर्नाट्कीय पुट देते हैं कि नहीं। ऐसा करने से यहां की "वाणी" को कुछ अंशों में वहां प्रविष्ट कराने में सुविधा होगी परन्तु, उसमें अच्छा कितना है और बुरा कितना है यह देखना है। बुरा त्यागना है तथा अच्छा रखना है।

पंचापकेष्ट अय्यर से चर्चा

२१ नवंबर १९०४

८ बजे प्रातः

आज प्रातः "त्यागराज" के परिपाटी में शिक्षित एक कीर्तन गाने वाले आये। उनका नाम पंचापकेष्ट अय्यर है। ये तिलूस्थान गांव के रहने वाले हैं। इनके वास्तविक गुरू रामैय्या अयंगार एक प्रसिद्ध गायक थे। ये रामय्या प्रत्यक्ष "त्यागैय्या" के पास सीखे हैं। उन्होंने प्रारंभ में ही कहा कि वे वस्तुतः प्रायोगिक गायक हैं। मैं शास्त्र नहीं जानता। मेरा गायन यथेष्ट सुने। मेलकर्त्ता व राग तो मैं समझता हूं। परन्तु शास्त्र की गहराई में अधिक नहीं गया हूं। "त्याग राज" के तीन-चार सौ कीर्तन मुझे आते हैं। तथा मेरे समान इतने अन्य किसी को नहीं आते ऐसी मेरी धारणा है। मेरे समान इतने कीर्तन गाने वाला आपको दक्षिण में दूसरा कोई नहीं मिलेगा। उन्हें गाने हेतु मुझे दूर-दूर से आमंत्रण आते है। तथा अभी भी मद्रास में बुलाये जाने पर ही आया हूँ। चार दिन बाद वापस जाना है। गायन से ही मैं अपनी जीविका चलाता हूं। त्यागराज ने अपने कीर्तन तेलगू में अनेक रागों में किये हैं तथा उन्हें लोग घर-घर क्षमतानुसार गाते हैं। किसी को दो तो किसी को चार इस प्रकार सभी को वे आते ही हैं। मैं उस घराने का प्रतिनिधि हूं। मेरी गायकी आपके ध्यान में आवेगी। उसके उपरांत उसने गायन का प्रारंभ किया। दस पांच कीर्तन जी भर कर सुने। वे अलग-अलग रागों में थे। अच्छा ही गाया। गायन समाप्त होने पर चार प्रश्न पूछे। जो जानकारी मांगी वह इस प्रकार है-

प्र.- अब तंजौर में अच्छा गायक अथवा शास्त्रकार कौन जीवित है ? यहां से मैं वहां जाने वाला हूं। इसी कारण यह जानकारी प्राप्त कर रहा हूं।

उ.- मैं प्रथम स्थान किसी को भी नहीं दे सकता। मैं जैसा गाता हूं वैसा गाने वाला वहां कोई नहीं है। कदाचित दक्षिण में ही नहीं है, ऐसा कहना पड़ेगा।

प्र. - गाने वाला रहने दीजिये। कम से कम शास्त्र जानने वाला वहाँ कोई है ?

उ. – ऐसा कहते है कि एक धर्मा दीक्षित नामक गृहस्थ हैं । कहते है वे शास्त्र जानते है । वे कहां है यह मुझे ज्ञात नहीं है । परन्तु वे दक्षिण में कहीं है ऐसा कहते हैं। उनका गला बहुत खराब है परन्तु शास्त्रज्ञान उनकों हैं । वैसे ही रामनाद में चिनुस्वामी आयंगार नाम के व्यक्ति है । वे गायक भी है । मैंने उनका गायन नहीं सुना है, परन्तु लोग उनकी प्रशंसा करते हैं ।

प्र. – क्या इटैय्यापुरम् के सुब्राम दीक्षित का नाम आपने सुना है ?

उ. – नहीं । मैंने जिन दीक्षित का नाम बताया उनको भर सुना है ।

प्र. – त्यागैय्या के विषय की क्या–क्या जानकारी आप मुझे देंगे ।

उ. – त्यागैय्या तंजौर के समीप "त्रिवाड़ी" स्थान पर स्वर्गवासी हुए । वे वहीं रहते थे । बहुत से राजे रजवाड़ों ने उन्हें अपने यहां रखने को बुलवाया परन्तु उन्होंने वह सब अस्वीकार किया । वे बड़े ईश्वर भक्त थे तथा एकदम साधु थे । उनको नौकरी की परवाह नहीं थी वे अपने कमरे में बैठ कर रामजी की प्रार्थना करते रहते थे । उनके कीर्तन राम के गुणगान से भरे हुए हैं । कुछ कुछ दूसरे देवताओं के भी है परन्तु उनके इष्टदेव "राम" थे । उनके कीर्तनों में भक्तिरस भरा हुआ है तथा वह सुन्दर तेलगू भाषा में है । ऐसा प्रसिद्ध गायक पिछले एक दो शताब्दि में नहीं हुआ । वे तो ईश्वर के अवतार ही थे । त्यागराज के गुरू सुंठी व्यंकटैय्या रामैय्या थे । वे भी त्रिवाड़ी के रहने वाले थे । आप त्रिवाड़ी गये तो "त्यागराग" का घर देख सकेंगे । वह एकदम साधारण सा है । अब उनके कुटुंब में गाने वाला कोई नहीं है । उनके संतान नहीं थी ।

प्र. – क्या आपने हिन्दुस्थानी ध्रवपद सुने है ? क्या आपके कीर्तनों को उनके समान माना जा सकता है ?

उ. – मैंने ध्रुवपद सुने है । वे कीर्तन के समान है ऐसा नहीं कहा जा सकता । ध्रुवपद की लय अत्यन्त विलंबित होती है । तथा उनमें भांति भांति के वर्णन एवं रस होते हैं । कीर्तनों में एक से अधिक चरण भी रहते हैं । ध्रुवपदों में अधिक आभोग नहीं होते । ध्रुवपद संक्षिप्त होता है तथा कीर्तन बहुत लम्बे । कीर्तन भक्ति मार्गी ही होते है ।

प्र. – आपके यहां पल्लवी, अनुपल्लवी आदि के स्वर–नियम अथवा सप्तक नियम क्या होते हैं ?

उ. – वे मुझे ज्ञात नहीं है । नियम तो होने ही चाहिए । मैं सैकड़ों कीर्तन गाता हूं । पल्लवी, अनुपल्लवी, चरण विभिन्न स्वरों से गाये हुए देखता रहता हूं । पल्लवी की अपेक्षा अनुपल्लवी ऊंचे स्वरों से गाते हुए मैंने सुना है ।

प्र. – चरणों में प्रायः "त्यागराज" का नाम आता है ?

उ. – हाँ प्रत्येक कीर्तन में वह "चरण में आता है ।

इसके उपरान्त ये एक पेशेवर गायक होने के कारण, उनकी बिदायगी देकर उन्हें रवाना किया। यहां के पल्लवी, अनुपल्लवी तथा चरण को अपने यहां की स्थाई, अन्तरा व आभोग कहा जाय तो चलेगा। पल्लवी मध्य सप्तक में, अनुपल्लवी तार सप्तक में तथा चरण दोनों को मिलाकर गाते हैं, ऐसा दिखता है। इनके नियम कहीं प्राप्त होने पर, आगे छानबीन करूंगा। चिन्नास्वामी मुदलियार की "ओरियन्टल म्यूजिक" नामक पुस्तक मुझे प्राप्त करनी है। अतएव पुदुपेट्टिया में उनके घर पता लगाने हेतु बहुत देर तक घूमता रहा। परन्तु घर नहीं मिल सका और सायंकाल हो जाने के कारण वापस लौट आया।

पुनः नारायण स्वामी एवं नायडू–

लौटने के पूर्व ओरियंन्टल लाइब्रेरी में जाकर देखाकि नकल का काम प्रारंभ हुआ कि नहीं? वह प्रारंभ हो चुका है, ऐसा विदित हुआ। यह भी ज्ञात हुआ कि वह तीन सप्ताह बाद प्राप्त हो सकेगी। वहाँ से कोस्मोपोलिटन क्लब में दीक्षित की पुस्तक श्री नारायण स्वामी ऐय्यर से प्राप्त करने गया। दूसरा उद्देश्य यह था कि यदि श्री नायडू से भेंट हो गई तो दक्षिणी संगीत पर उनसे भी बातें मालूम हो जावेगी। आगामी प्रवास में उनका उपयोग होगा। संस्कृत ग्रन्थों की बात तो समाप्त हो ही चुकी थी। अतः दक्षिण में कौन–कौन विद्वान है यह पता लगाना था। श्री ऐय्यर नहीं आये थे अतः पुस्तक नहीं मिल सकी। सुदैव से श्री नायडू मिल गये। वे ठीक पांच बजे आये। उन्होंने आते ही क्षमा याचना इत्यादि माँग कर बताया कि वे "हिन्दू कार्यालय" में व्यस्त थे जिसके कारण निर्धारित समय पर वे उपस्थित नहीं हो सके। इसके उपरान्त ऊपर जाकर दो कुर्सियां बरांडे में रखकर एकांत में संभाषण आगे बढ़ाने के उद्देश्य से बैठ गये। एक घण्टे तक हमारा संभाषण इस प्रकार हुआ:–

प्र. – श्री नायडू, मैं कुछ हद तक एक स्पष्ट वक्ता हूँ तथा संगीताशास्त्र का निष्ठावान विद्यार्थी हूं अतएव मैं आपसे खुले मन से बोल रहा हूं। कोई कितना ही विद्वान क्यों न हो वह स्वयं अकेले अपने ही भरोसे विद्या में पारंगतता किंचित ही प्राप्त कर पाता है। मुझे जो बात नहीं समझती उसे समझने हेतु आपके पास आया हूँ। मुझे जो आता है वह मैं निष्कपट भाव से आपके समक्ष रखता हूं। यदि उसका उपयोग होता हो तो उसे आप ले, ऐसा मैं कहना चाहता हूं।

उ. – यह सुनकर मुझे समाधान हुआ है। यह मुझे ज्ञात है कि यदि हम एक दूसरे के उपयोग में आ सके तो उससे बहुत लाभ होगा।

मैं. – एक बात जो मैं आपको बताना आवश्यक समझता हूं वह यह कि संस्कृत ग्रंन्थों का संगीत समझने की मेरी लालसा अत्यंत दृढ़ है। उस दिन के आपके भाषण से मुझे लगा कि

आपको उन ग्रन्थों को पढ़कर समझाने वाला कोई नहीं मिला । आपने उन ग्रन्थों के प्रति किंचित भी आदर भाव व्यक्ति नहीं किया। इसका कारण भी मुझे यही प्रतीत हुआ। श्रुति मूर्च्छना की जानकारी आपसे प्राप्त करने का मेरा उद्देश्य इतना ही था कि आपने ग्रन्थों का सप्तक (स्केल) समझा है अथवा नहीं ? मुझे ऐसा लगा कि वह बात आप नहीं समझ सके इससे मुझे लगा कि यदि आपको ही इसकी जानकारी नहीं है तो दक्षिण के अन्य सुशिक्षितो को उसकी समझ होना और भी कठिन है । इस कारण, मुझे थोड़ी निराशा हुई। अस्तु । आप विद्वान है अतएव यदि ग्रन्थों की जानकारी मुझसे प्राप्त कर लेंगे तो इस विषय में मेरी अपेक्षा आप अधिक अच्छा शोध कर सकेंगे, ऐसा मुझे लगता है । परन्तु वह जानकारी आपसे बिना पूंछे आपके ऊपर लादना एक प्रकार का दंभ होगा, ऐसा समझकर मैं चुप रहा । मेरी यह तीव्र इच्छा है कि आप ग्रन्थों का विचार करें तथा आज का संगीत किस प्रकार विकसित हुआ इसकी खोज करें ।

उ. – मैं आपका बहुत आभार मानूंगा । यह जानकारी आप मुझे सहर्ष प्रदान करें । मैं उसे उपयोगी समझूंगा । यह सत्य है कि मुझे ग्रंन्थों का महत्व नहीं समझा तथा उसका शास्त्र समझाने वाला भी मुझे नहीं मिला । आपसे प्राप्त जानकारी के आधार पर मैं इस दिशा में पुनः विचार करूंगा तथा पत्र व्यवहार द्वारा अपने विचारों से अवगत कराऊंगा । इसमें सहयोग की आवश्यकता है । मैंने यह तर्क किया था कि मूल ग्रन्थों का स्वर सप्तक शंकराभरण होगा । परन्तु हमारे यहाँ तो लोग प्रथम सीखने सिखाने के लिये "मायामालव" को चुनते है ।

मैं. – यही तो त्रुटि हो रही है। मूल संस्कृत ग्रन्थों का सप्तक "खरहर प्रिया" यह बनता है। (सेमीटोन्स देखिये) ये ४, ३, २, ४, ४, ३, २, इस श्रुति रचना के है । (सभी कागज पर भली–भांति शांत चित्त से समझाया) क्या अब आपकों विश्वास हुआ? सुना है कि आप वीणा बजाते हैं । अतः यह बात आपके ध्यान में तुरंत आवेगी ।

उ. – अरे हाँ ! एकदम ठीक मैं यह सब नहीं जानता था । यह समझना तो एकदम आसान है । इस रचना से शंकराभरण हो नहीं सकता । परन्तु क्या इसका मूर्छना से संबंध है ? इसके उपरान्त मूर्छना समझाई । "योरोपियन मोडस" से उसका साम्य दिखाया । प्राचीन काल में पूर्व एव पश्चिम–दोनों में मूर्छना का एक समान ही उपयोग होता था, यह अच्छी तरह समझाया । श्री नायडू ने इन सब बातों को दत्त चित्त से समझ लिया और फिर मुझसे बोले "भातखण्डे जी" आपके द्वारा प्रदत्त जानकारी मुझे बहुत पसन्द आई । मुझे यह ज्ञात न था कि ऐसे विषय भी अपने ग्रन्थों में होंगे । आपने इस जानकारी द्वारा मेरे विचारों को एक नवीन दृष्टि प्रदान की है, यह मैं खुले मन से आपसे कहता हूँ। अब मेरे पास की पुस्तकें इस दृष्टि से पढ़ूंगा तथा जैसी २ मेरी उन्नति होगी वैसे वैसे मैं आपकों लिखता जाऊंगा । अपना पत्र व्यवहार है ही । आप यदि रत्नाकर के

महत्वपूर्ण भाग का भाषान्तर बीच–बीच में लिखकर भेजेंगे तो बड़ी मदद मिलेगी। हम दोनों ही इस विषय पर विचार करें तथा जो निष्कर्ष निकले उसे प्रकाशित कर लोगों के सम्मुख रखें। मेरे मन में संगीत का "शब्दकोष" तैयार करने की इच्छा है। वह संगीत के विद्यार्थियों हेतु अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। ऐसा शब्दकोष तैयार करने में यदि आप मेरी सहायता करेंगे तो बहुत अच्छा रहेगा (मैंने कहा कि मैं करूंगा) बंबई के विल्सन कालेज में फ्रेंच के प्रोफ़ेसर से मेरा पत्र व्यवहार है। वह मुझसे अपने संगीत के विषय में पूछते रहते हैं। अब मैं उन्हें आपसे चर्चा हेतु कहूंगा। चूंकि आप बम्बई के ही रहने वाले है तथा इस विषय पर आपने मेरी अपेक्षा अधिक विचार किया है अतएव आपकी और उनकी ज्यादा अच्छी तालमेल बैठेगी। (मैंने आभार माना) उनके पास जो लेने लायक है वह आप भी ले सकते है। (मैंने कहा कि यह बहुत अच्छा है।)

प्र. – श्री नायडू। मैं यह ढूंढ रहा हूँ कि आपकी "द्रविड़ संगीत" पद्धति की संस्कृत श्लोकों की पुस्तक यदि कुछ भी करने से प्राप्त हो सके तो उसे दिलवायें। कारण, मुझे ऐसी आशा है कि रत्नाकरादि ग्रन्थों के संगीत से उन श्लोकों का किसी न किसी प्रमाण में समीप अथवा दूर का संबंध स्थापित कर सकना संभव होगा। ऐसा होगा ही, यह मैं निश्चित रुप से नहीं कह सकता। यह स्पष्ट है। परन्तु मेरा तर्क ऐसा है कि इस प्रकार की स्वच्छ रचना करने वाले लेखक ने अपनी रचना के पूर्व के संगीत से कुछ न कुछ तालमेल अवश्य स्थापित किया होगा। उनके मन में यह शंका अवश्य उत्पन्न हुई होगी कि ऐसा न करने पर लोग उनकी रचना को मनगढ़न्त समझ सकते है।

उ. – मुझे ऐसा लगता है कि इटैय्यापुरम् के सुब्राम दीक्षित ने अपनी पुस्तक में इस प्रकार के श्लोकों को सम्मिलित किया है। यह पुस्तक आजकल प्रसिद्ध हुई है तथा वह पांच रुपया कीमत में मिलती है। आपको चाहिये इसलिए उसकी एक नकल मैं आपके पास भिजवा दूंगा।

मैं. – बहुत आभार होगा। एक और पुस्तक जो मैं खोज रहा हूं वह है चिन्नास्वामी मुद्-लियर की "ओरियन्टल म्यूजिक"। मैंने सुना है कि उसका भी मूल्य पांच रुपया है।

श्रीनायडू – मेरे पास उसकी एक ही प्रति थी। परन्तु आपके बम्बई के एक वकील श्री श्यामराव विट्ठल ने मेरे एक स्नेही श्री नारायणराव के माध्यम से कुछ दिनों के लिये मांगी हुई है : अभी वह पुस्तक मेरे पास नहीं है।

मैं – श्री श्यामराव ने वह पुस्तक फादर सीथर, जिनके बारे में मैंने आपसे बताया उनको दिखाने के लिये प्राप्त की है। वे, पहिले मेरे पास आये थे तब उस समय उसका कुछ भाग मैंने पढ़ा था। वह मुझे पसंद आई और मेरे मन में यह आया कि ऐसी एक पुस्तक संग्रह में रहनी चाहिये।

श्री नायडू-वह मैं आपको दिलवा दूंगा। श्री मुद्लियर बहुत विद्वान थे। तथा उन्होंने वह बहुत अच्छी लिखी थी। उनकी पुस्तक कृति को यश प्राप्त नहीं हुआ। उन्हें किसी ने मदद

नहीं की । उनकी पुस्तक के खरीदार ही नहीं मिलते थे । बाद में, उनका सब पैसा समाप्त होने पर वे अत्यन्त निर्धनता के कारण इटैय्यापुरम् में गरीबी में रहे । बाद में देहान्त भी हुआ । ऐसा कहते है कि उनकी पुस्तकों के गठ्ठे रद्दी के भाव से दुकानदारों ने पुड़िया बांधने के लिये लिये । वे किस व्यापारी ने ली, यह पता लगाकर मैं एक प्रति दिलवा दूंगा ।

स्फुट-विचार –

यहां दो-चार प्रकार का गायन मेरे सुनने में आया । परन्तु यह एक दुर्भाग्य की बात कहनी पड़ेगी कि मेरे मन पर उनका गहरा प्रभाव नहीं पड़ा । जो आनंद मुझे हिन्दुस्तानी संगीत से मिलता है वैसा मुझे इस गायन से नहीं मिला । इसके अनेक कारण हो सकते है, परन्तु जो अनुभव किया वह मैंने प्रमाणिक रुप से लिख रखा है । यह सत्य है, कि अभी तक मैंने थोड़ा ही सुना है । कदाचित् योग्य कसबी लोग मुझे नहीं मिले । और फिर यह भी एक कारण हो सकता है कि मुझे यहां की भाषा भी नहीं समझती । यहाँ के गायन के संबंध में सहजता से प्रतीत होने वाली दो-एक बातें ऐसी हैं कि, प्रत्येक गायक लय की मात्राओं के अनुरोध पर उंगलियों से गिनते हुए तानें लेता है । इन तानों को गाते समय छोटी से छोटी लय को अनावश्यक महत्व देता है । हर एक तान में किंचित परिवर्तन करते हुए गमक आदि गाकर ऐसा आडंबर दर्शाता है कि कोई बहुत बड़ी करामात की जा रही है । यदि आडी लय की तान लेने का प्रयत्न किया तो "ययय्य" इस प्रकार के शब्दों से लय भर कर गाते हैं । अपने यहां के गायक जिस प्रकार खुले ढंग से अत्यन्त आश्चर्यजनक हजारों तानें लगातार गाते रहते हैं वैसा गाने वाले मुझे यहाँ अभी तक नहीं मिले । यहां के गायन का स्वरुप मुझे प्रारंभिक विद्यार्थियों हेतु सरल पाठ सिखाने लगा । जैसा यहां भीड़ का प्रमाण बहुत कम है । बेला वादक (शिंगराचार्य) यद्यपि वह लेते हैं परन्तु मींड लेने में जो सुन्दरता अपनी ओर देखने में आती है वह यहां नहीं है । अस्तु । अभी तो और प्रवास करना है अतः मन को खुला रखना न्याय संगत होगा ।

दक्षिण का संगीत अधिक पद्धति बद्ध किस प्रकार है यह प्रश्न अपने सम्मुख रखकर उस पर विचार करुंगा । इनके जो मुख्य ७२ मेलकर्त्ता माने जाते है उनके खुलासेवार नाम इत्यादि मैंने अन्यत्र लिख रखे है । नायडू की "गान विद्या संजीवनी" में, कैप्टन डे की प्रसिद्ध पुस्तक में, शिंगराचार्य की क्रमिक पुस्तकों में तथा "गायक लोचन" नामक पुस्तक में "जन्यराग" कौन से हैं यह लिखे हुए मिल जावेंगे । यहां गायकों का ध्यान सदा आरोह-अवरोह पर रहता है । कहीं किसी का गायन प्रारंभ होते ही । "मेल" कौन सा है, ऐसा पूछने लगते हैं तथा आरोह-अवरोह की पढ़न्त गाते हैं । आरोह-अवरोह की ऐसी यन्त्रवत रचना जिसे मैं कलात्मक नहीं मानता) करके रखी है कि एक राग दूसरे राग से पृथक होना ही चाहिए । कहीं भी एक आद स्वर बदला कि अन्तर उत्पन्न हुआ । ऐसे आरोह-अवरोह लिख कर रखते हैं । कट्टर संगीत शास्त्री उसमें जरा सा भी अंतर नहीं होने देते । इन्हें लेकर (मद्रासी ढंग के झटके एवं ऐठन के साथ गमकों की गिनती प्रयुक्त कर) गाने पर राग की स्थापना मान लेते हैं । (झटके एवं ऐठन शब्द प्रयोग केवल मनोविनोद हेतु कह डाला) यहां ताल के साथ और मात्राएं उंगलियों पर पकड़ कर

गाते हैं, जिससे झटके अपने आप आते हैं। अपने यहां के लोगों को यह प्रकार बहुत पसंद नहीं है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मैं तो हिन्दुस्तानी संगीत का ही भक्त हूं। आरोह-अवरोह शुद्ध रीति से कहना आने पर राग अशुद्ध होने का भय बहुत कुछ समाप्त हो जाता है। उसमें फिर यहां की गमक लेने की कसब ही केवल बची रहती है। श्री नायडू ने कहा कि वादी-संवादी की चर्चा हमारे यहां नहीं है। इससे एक बड़ी कठिनाई दूर हो गई। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक रचनाकार अपनी-अपनी सूझ-बूझ का उपयोग रंजकता को दृष्टि में रखकर करेगा। वादी-संवादी स्वरों के नियम नहीं बनाये हैं तथा ऐसा कहते है कि उसको शास्त्रीय आधार या नियम कोई है ही नहीं। परन्तु यहां सभी लोगों के गायन में विभिन्न स्थानों में "पाजेज" (विश्रान्ति) भी दिखती है। सभी गायकों में किसी न किसी प्रमाण में अमुक राग में अमुक स्थान पर कम ज्यादा ठहरने के संकेत भी देखे जाते हैं। तो फिर इस कृत्य के लिये नियम क्यों नहीं बन सके यह समझ में नहीं आता। ऐसा लगता है कि रागो को यदि संस्कृत ग्रंथों का आधार मिला। तो इस विषय का खुलासा कुछ न कुछ हो सकेगा। अमुक राग में अमुक स्वर अत्यधिक सुन्दरता पैदा करता है यह हिन्दुस्तानी कल्पना मुझे तो अधिक कलात्मक लगती हैं। तो फिर यहां पर यह कल्पना क्यों नहीं है कुछ समझ में नहीं आता। यहां प्रत्येक गायक अल्पस्वल्प प्रमाण में "सरगम" का ज्ञान दिखाने की खट-पट भी करता हैं। इस दृष्टि से देखें तो दक्षिण पद्धति अधिक पद्धतिबद्ध है यह कहना पड़ेगा। यह बात बहुत कुछ स्पष्ट दिखती है कि यहां थोडा-थोड़ा परस्पर भेद रहने वाले सभी राग रंजक होना संभव नहीं है। केवल "परम्यूटेशन्स" के आधार पर राग तैयार करें तो मनरूपी यंत्र को प्रसन्न करने वाले राग टिकेंगे बाकी सब "गणीतीय संगीत राग संग्रह" मानकर पड़े रहेंगे। मैने श्री नायडू से पूछा कि क्या आपके यह हजार जन्यराग सबको पसंद है और प्रिय हुए हैं? वे हंसकर बोले "छिः, ऐसा होना असंभव है। उसमें से लगभग ५०/७५ भर प्रिय हुए है। बाकी के पुस्तकीय राग कहना चाहिये। और इतनी सी बात समझना क्या मुश्किल है?" जहां स्वरों के बड़े-बड़े अंतराल बन जाते हैं वहाँ वे स्वाभाविक रूप से भिन्न प्रतीत होकर अच्छे लगना स्वाभाविक ही है। तथा वे ध्यान में भी शीघ्र बैठते है। वादी-संवादी के बल पर राग बदलना अधिक कुशलता का तथा अधिक कलात्मक एवं विकसित रूचि का परिचायक है। दक्षिण में ताल ने राग का माधुर्य कम किया है। एक अर्थ में ऐसा कहा जा सकता है कि गायक लोग ताल को आवश्यकता से अधिक महत्व देते हैं। आप बेताल गायें, ऐसा मेरा कहना नहीं है। परन्तु समस्त गायन, मात्राओं पर आधारित-जितनी मात्राएं उतने झटके-व "यययय" करके गाने को मैं निकृष्ट कहूँगा। ताल के दो आघातों में जितनी "मात्राएं" होंगी उतने "यययय" यदि आप कहने लगेंगे अथवा वहां झटके देकर अटकेंगे तथा, दूसरे आघात की प्रतीक्षा में बैठेंगे और वह आने पर बिल्ली की भांति झपटेंगे तो उसे मैं उच्च-कोटि का गायन नहीं कहूँगा। हिन्दुस्तानी गायन में (कसरत को छोड़कर) मींड,गमक, तान योग्य गति से लेते हैं उसमें स्थान-स्थान पर कला दिखती है। परंतु वहां गायक नियमों की एकदम उपेक्षा करने लगे है, यह दुर्दैव है। आप अच्छी तरह कसब, दिखायें परन्तु स्वर-नियमों की कड़ाई होनी ही चाहिये। नहीं तो एक पीढ़ी का गायन भावी पीढ़ी को कैसे आवेगा? उसको लिखकर कैसे रखेंगे? मेरा ऐसा पूर्वग्रहित मत सुनकर यहाँ के गायकों को संतोष होने वाला

नहीं है तथा ऐसी अपेछा मुझे करनी भी नहीं चाहिये। परन्तु मुझे वही कहना चाहिये जो प्रमाणिक प्रतीत होता हो। वे कहेंगे कि उनका गायन यहाँ के लोगों को बहुत पसंद आता है और वे मोहवंश तल्लीन हो जाते है। होते है तो होने दीजिये परंतु,इतने से वह संगीत ऊँचे दरजे का माना नहीं जावेगा।"शिद्धी" मनुष्य को अपनी संतान सुन्दर ही दिखेगी, यह सृष्टि का नियम है। और यही नियम हिन्दुस्तानी संगीत के साथ लगाने को कहने पर इधर के लोग कहने लग गये है कि मद्रास में प्लेग फैलने के समय से पारसी थियेटर ने यहां के संगीत के स्वरूप को भी प्रभावित किया है। उसमें हिन्दुस्तानी ढंग घुसने लगा है तथा जनसामान्य को और सुशिक्षित लोगों को भी (गायकों को नहीं) वह अत्यन्त पसंद आने लगा है। श्री नायडू ने स्वयं कहा कि गायकों को भी उनके गायन में यदि वह झलक न मिली तो लोकरंजन ठीक तरह से न हुआ समझने लगते है। यह कहना तो हिन्दुस्तानी संगीत के पक्ष में ही हो रही है कुछ दिनों में यहां के संगीत का स्वरूप बदलेगा जो सृष्टि का नियम ही है। मुझे यह इष्ट लग रहा है कि वह बदले। परंतु यहां की रचना व नियम मुझे पसंद है। वे, योग्य परिवर्तन के साथ यहां के संगीत में प्रयुक्त हों ऐसा मेरा मत है।

श्री नायडू ने कहा कि यहाँ हिन्दुस्तानी संगीत इतने जोर से घुस रहा है कि गायक लोगों ने तान, गमक लेने की विधि भी थोड़ी बदल डाली है। और उन्होंने आरोह-अवरोह के नियमों में स्वतंत्रता लेना प्रारंभ कर दिया है। गाने वाली महिलाओं को हिन्दुस्तानी संगीत थोड़े प्रमाण में आना ही चाहिये, तथा कर्नाटकी चीजों में मजेदारी के लिये वहां की ताने लेनी चाहिये।" मुझे लगता है यहां का संगीत अब आगे की सीढ़ी पर चढ़ रहा है। हिन्दुस्तानी संगीत इस कारण प्रथम श्रेणी का होना ही चाहिये। अपने महाराष्ट्र में जो अशिक्षित घाटी कुणबी लोग डफ पर लावणी गाते हैं, सिंध मुल्क की काफी, गुजरात की मांड इत्यादि राग अथवा गीत, ये सब अब कर्नाटक शैली में मिलते जा रहे है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रथम चरण है। इसके उपरांत गायन कला जो गायक लोगों की है। अब रेल सुविधा से आवागमन बढ़ने के कारण, यहां भी जोरों से फैल रही है। यहां के नियम व वहां की कला का संयोग (रासायनिक मिश्रण) हुआ तो मैं यह समझूंगा कि मेरा मन-पसंद कार्य सम्पन्न हुआ। और वह सुन्दर ही होगा। श्री नायडू का भी मत ऐसा है कि यहां की पद्धति अब भारग्रस्त हो रही है तथा वह लोगों को असुविधा जनक होने लगी है इस कारण वे अब कलात्मक संगीत के पीछे लगे है। यह सुधार इष्ट है। मैंने उन्हें सूचित किया है कि यह संक्रमण काल है इसका लाभ उठाकर, आपके समान लेखक को यहां की पद्धति हेतु हिन्दुस्तानी संगीत की अच्छाइयों का जोड़ लगाया जा सके उतना लगाना चाहिये। वह अभी पसन्द आये या न आये, परन्तु कहीं न कहीं अपना रंग जमावेगा ही। उसे नियमबद्ध करने हेतु यह अवसर बहुत अच्छा है। हिन्दुस्तानी संगीत को भी कहीं-कही ग्रंथाधार है। ग्रंथों में वादीविवादी दिये गये हैं। आपके मतों को संस्कृत आधार सहज ही प्राप्त होगा। तथा वह प्राप्त होते ही वह मान्य भी होगा। थियेटर यहां आकर आपके संगीत को अंगेजी बना रहा है। उसकी अपेक्षा यदि वह हिन्दुस्तानी बन जाय तो क्या बुरा है ? अर्थात आप आगे आकर वहां की कुछ खुबियां यहां प्रारंभ करे। नायडू ने कहा कि यह कार्य बहुत कठिन है। मेरी स्वतः की वहां के संगीत की समझ अधिक नहीं है। यह कार्य अकेले मुझसे कैसे होगा ? परन्तु इस सूचना पर विचार अवश्य करूंगा।

श्री नायडू का एक अन्य प्रश्न –

श्री नायडू ने भाषण समाप्त होने पर एक प्रश्न मुझसे पूछा वह यह कि, हिन्दुस्तानी संगीत में पुरुष राग, स्त्रीराग व पुत्रराग की रचना किस आधार अथवा किस तत्व पर हुई है ? यह प्रश्न महत्व का है परन्तु इसका संतोषजनक उत्तर देना कठिन है। 'रत्नाकर' के समय ऐसी रचना थी यह नहीं दिखता। कारण, वह उस पुस्तक में नहीं है। वहां दशविधराग बताए गये हैं। जन्य–जनक राग ऐसा उल्लेख हैं। इसी के आधार से किसी पंडित ने (कोई कहता है भरत मुनी ने) यह रचना की होगी यह समझा जा सकता है। तत्व शोधकर निकालना अनेक मतभेदों के कारण अब कठिन हो गया है। यदि एक आद मत कायम रहा तो जन्य–जनक में से ही एक सदृश्य भाग ढूंड लिया जा सकता है। परन्तु यह सिद्धांत प्रतिपादिन करते समय अनेक लोगों ने अपने–अपने स्वतंत्र विचारों से राग–रागिनी निश्चित की है। कोई कहेगा कि अमुक राग की रागिनी कुछ न कुछ प्रमाण में उस राग के समान होनी चाहिये। दूसरा कहेगा पत्नी दूसरे कुटुम्ब की होने के कारण एकदम विसंगत होनी चाहिये। इस विषय में रत्नाकर का तात्विक संकेत जन्य जनक के समान कुछ अंश तक होना चाहिये। परन्तु यह दूसरी कल्पना किसी स्वतंत्र गायक की दिखती है। रागों के ऊपर अपनी नवीन कृति किसी प्रकार मढ़ दी जाय, इस विचार से ही उसने यह तत्व बताये होंगे। जन्य–जनक का संबंध जाति प्रकरण के अंत में रत्नाकर के पहिले अध्याय में दिया गया है। राग बताते समय "तज्जा" ऐसा कहा गया है। रागांग, उपांग भाषांग, क्रियांग ये नाम रत्नाकर में है। सबका तत्व समझाकर उन्हें रागों पर लागू करके नहीं दिखाया है, इसी कारण यह अड़चन उत्पन्न हुई। मतभेद भी इसी कारण से उत्पन्न हुए होंगे। किसी पंडित ने इसका तत्व ढूंड कर यदि उत्तम रचना की तो लाभकारी होगी। मैं जीवित रहा तो मेरे मन में वैसा करने की इच्छा है। श्री नायडू भी इसके तत्व का शोधन करने वाले हैं।

यहां से अब तन्जौर जाना निश्चित किया है। वहां अब सुनने लायक कुछ भी नहीं है ऐसा लगता है। तन्जौर में पैलेस लाइब्रेरी है, वहां ग्रंथों को देखना है। यहां प्रचार में जो ताल हैं उनकी जानकारी भी प्राप्त करनी है। श्री नायडू ने कहा कि यहां कसबी गायक व शास्त्रकार अब और दूसरे कोई नहीं है।

'त्यागय्या' के अवशिष्ट विचार –

मद्रास के "त्यागय्या" गायक से भेंट के समय की एक बात लिखने से रह गई। वह यह कि, उन्होंनें मेरे एक प्रश्न पर "रागांग, भाषांग, क्रियांग, उपांग" इसकी व्याख्याएं बताई थीं। तथा उनके पौत्र ने उसे अंग्रेजी में अनुवादित किया था। वह अनुवाद इस प्रकार था–

१. रागांग– यह वह राग है जो निर्धारित मेल में बताए गये स्वरों में परिवर्तन करने से उत्पन्न होता है।

२. भाषांग– एक ही राग के विभिन्न प्रकार जो विभिन्न स्थानों में व्यक्तियों के रीति रिवाज एवं रुचि के अनुसार प्रचलित रहते है।

३. क्रियांग– राग में एक या दो स्वर इस प्रकार लिये जाते हैं कि उनसे एक नये प्रकारंतर का जन्म होता है। (यद्यपि मूल के स्वरुप की झलक कायम रहती है)

४.उपांग – एक राग जो वस्तुतः किसी दूसरे पर आधारित है । एक राग पहिले चुना जाता है तथा इसी पर दूसरे की रचना की जाती है जैसे आनंद भैरवी पर हुसैनी ।

अब ये परिभाषाएं कितनी सही है यह देखना है।आगामी प्रवास में भी अन्य विद्वानों से यह एक प्रश्न पूछना है। सभी के द्वारा दिये गये उत्तर घर पहुंचकर पुस्तक से मिलाऊंगा। बाद में जो अर्थ मुझे अधिक अच्छा लगेगा वह स्वीकार करूंगा। ओरियन्टल म्यूजिक में भी कुछ परिभाषाएं बताई है। ऊपर लिखी गयी"क्रियांग" की परिभाषा यदि सही है तो उससे "वादी संवादी" के तत्व का दिग्दर्शन होगा ऐसा लगता है। मैंने त्यागय्या से प्रार्थना की थी कि मुझे वह नमूना दिखावें। परन्तु उन्होंने कहा कि ऐसा दिखाना उन्हें नहीं आता। अस्तु, आगे देखूंगा। मेरे मन में "प्रबंन्ध" व "स्थाय" संबंध की जानकारी प्राप्त करनी है। "त्यागय्या" का कहना है कि इस गायन को गाने वाले अथवा भली भांति समझने वाले मिलना अत्यंत कठिन है। यह प्राचीन रचनाएं है व अधिकतर संस्कृत में है। जिन्हें वे पढ़ना आता है व अर्थ समझता है उन्हें संगीत नहीं आता। गाने वालों को उसमें कुछ नहीं समझता।

नायडू ने क्लब में अपना संभाषण पूर्ण करने पर मुझसे कहा कि आप मेरे एक स्नेही के यहाँ चलें। वहां संभव हुआ तो "वीणाधनम्" नामक प्रसिद्ध बाई को बुलाकर उसका गायन आपको सुनवाऊंगा। मैंने कहा ठीक है। फिर सावकार–पेंठ में श्री नायडू के एक मित्र के यहां हम लोग गये और उस गायिका का पता लगाने हेतु आदमी भेजा। ऐसा ज्ञात हुआ कि उस गायिका को राजमुन्द्री स्थान पर गायन का निमंत्रण आने से वह वहाँ गई हुई है। इस कारण, कुछ नहीं हो सका। तथापि उसके घर की दो लड़कियां एक "सुरसोटा" लेकर उपस्थित हुई। श्री नायडू ने फरमाइशें करके तरह-तरह के राग सुनवाए। कुछ हिन्दुस्तानी चीजे भी उन्होंने गायीं। दोनों की आवाज अच्छी थी। पूर्वी, हरिकांभोजी, कल्याणी, वसंत, परज, नादरामक्रिया आदि मुझे अच्छे लगे। उनका गायन सीधा सादा था। यह स्पष्ट है कि यहां के लोग अपने हिन्दुस्तानी गायकों की कसरत तक नहीं पहुंच पाते। हो सकता है प्रवास में और नमूने देखने को मिलें। ऐसा दिखता है कि यहां "वीणाधनम्" की बड़ी ख्याति है। वह विभिन्न रागों में स्वयं "सरगम" रचना करती है व चीजें भी बांधती हैं, ऐसा कहते हैं। परन्तु यह सच है कि उसको सुनने का योग नहीं आया।

श्री तिरूमल्लय नायडू से साक्षात्कार के बिन्दु –

१. क्या दक्षिण संगीत पद्धति किसी अन्य अथवा किसी संस्कृत प्राधिकरण पर आधारित है ? क्या आपने ऐसी पुस्तक या पुस्तकें पढ़ी है ?

२. आपके बहत्तर मेलों का उल्लेख कहां है ? क्या वह एक कल्पनिक पद्धति है ? क्या वह रत्नाकर से प्राचीन है ? क्या इसकी उत्पत्ति रत्नाकर से ही दर्शाई जा सकती है ?

३. वैदिक काल में सप्तक कौन सा था ? उसे सात स्वर का सप्तक किसने बनाया ? स्वरों के नाम जानवरों से संबंधित क्यों है ? उनके रंग क्यों है ?

४. श्रुतियां बाईस है। आपकी पद्धति में बारह ही क्यों है ? बाकी का क्या किया जाना है ? उनके प्रयोग के संबंध में क्या नियम है ?

५. ग्रामों एवं मूर्च्छनाओं के प्रयोग को समझाइये ?

६. किन्ही ऐसे पंडितों के नाम बताइये जिन्होंने इस बिषय का कोई संस्कृत ग्रन्थ पढ़ा हो।

७. क्या अपने प्राचीन स्वर-सप्तक में एवं प्रारंभिक योरोपीय चर्च मोड में कोई समानता है ?

८. आलाप पल्लवी इत्यादि गाने के नियम (स्पष्ट) किये जा सकते है ?

९. सामान्यत: कौन से गीत यहां गाये जाते है ? उनकी विशेषताएं ? किस पुस्तक में उनके नियमों की चर्चा है ?

१०. आपने अपनी "गान संजीवनी" हेतु किन संस्कृत या प्रादेशिक ग्रन्थों का सखोल अध्ययन किया ?

११. वीणा के प्रचलन के उपरान्त १२ स्वरों में सीमित कर देने से समूचे संगीत का सरलीकरण हो जाना क्या संभव है।

१२. वाद्यों पर २२ सारिकाएं लगाकर उन्हें बजाना कठिन था। प्रत्येक सप्तक में १२ को स्थापित किया गया तथा मध्यान्तरों को बाद्य संगीत की निर्धारित क्रियाओं द्वारा उत्पन्न किया गया।

सूचना:- इन बिन्दुओं पर आधारित प्रश्न पूंछे जायें तथा श्री नायडू को जानकारी का स्रोत बताने हेतु बाध्य किया जाय।

१३. प्राचीन स्वर सप्तक की हिन्दुस्तानी के साथ तुलना।

१४. दी गई मूर्च्छना के सहारे रत्नाकर के कम से कम एक राग का हल निकालने का प्रयास करना।

१५. क्या आप यह कह सकते है कि रत्नाकर के समय लेखक द्वारा लिखे अनुसार "ग्राम रागों का प्रचार था ?

१६. क्या आप समझते है कि "मूर्च्छना प्रस्तार" का संबंध "शुद्धतान" से है ?

१७. रत्नाकर के राग नाटक से संबंधित क्यों है ?

१८. क्या "मार्गताल" अब कहीं प्रचार में है ? यहां कितने और कौन से ताल प्रचार में हैं ?

१९. जब गमकों की परिभाषा दी जाती है तब आप स्वर और काल के सूक्ष्म खण्डों का उल्लेख देखते है ? क्या यह श्रुति की ओर संकेत करता है ?

२०. क्या आप किसी अन्य लेखक को जानते हैं ओ मूर्च्छना की तुलना आपके ७२ मेलों में से किसी से भी करता हो ?

प्रस्थान पूर्व शिंगराचार्य से पुनः वार्ता २४ नवंबर १९०४.

श्री नायडू कल सायं साढ़े पांच बजे तक नहीं आये। उन्होंने पांच बजे आना स्वीकार किया था। ऐसा लगता है कि यहां के लोग नियत समय के महत्व को बहुत अधिक नहीं मानते। मैंने छः बजे तक रास्ता देखा और बाद में मेरे साथ आये हुए लोगों को बाजार पेठ में शहर दिखाने के लिये ले गया।

घर आया तब नौकर ने श्री नायडू का कार्ड दिया–तथा बताया कि वे सात बजे आकर लौट गये। अस्तु। यदि उनसे भेंट होती तो मेलकर्ता की विशेषताओं के संबंध में कुछ प्रश्न

K T K T

करने वाला था। यहाँ के कुछ मेलकर्ता (जैसे कनकाँगी) के स्वर – रे और रे व ध और ध ऐसे भी हैं। मुझे लगता है कि इस स्वरक्रम से गाने पर (गणित द्वारा राग संभव हो तो भी) माधुर्य की दृष्टि से अच्छा नहीं लगेगा। एक आरोह में तथा दूसरा अवरोह में लगाया जा सकता है परतु लगातार एक के बाद एक अच्छा नहीं लगेगा। परन्तु "कनकाँगी" यह मेलकर्ता राग है तथा संपूर्ण है। वह शुद्ध है अतएव क्रम से स्वर लगाना आना चाहिये। इस संबंध में श्री नायडू क्या कहते है वह जानना चाहता था। परन्तु उनके न आने से पूछ नहीं सका। आज प्रातः मनमें ऐसा आया कि श्री शिंगराचार्य के यहां जाकर, उनकी "गायक लोचन" पुस्तक जो मैंने ले रखी है उसमें से एक दो बातों का खुलासा कर लिया जाय। उनसे अब विवाद नहीं करूंगा। इस इरादे से कपड़े पहनकर वहाँ गया। सुदैव से, वे जीना उतर रहे थे और उनसे भेंट हुई। नमस्कार कर, मैं बोला कि महाराज मैं एक दो शंकाओं पर विचार करने आया हूं। परन्तु ऐसा लगता है कि आप बाहर जा रहे है। फिर उन्होंने मुझे वरांडे में बेंच पर बैठाकर शंका पूछने की स्वीकृति प्रदान की। मैंने ऊपर लिखा हुआ कनकांगी के विषय का प्रश्न ही पूछा। उन्होंने कहा, ऐसा राग हमारे यहां गाते है। और उसका सप्तक लेकर थोड़ा सा गुनगुना कर भी (Hum) दिखाया। उन्होंने कहा कि तीव्र "रे" को "ग" कहते है। जिससे दोष कुछ हद तक ढक जाता है। परन्तु यह मेल अधिक प्रचार में नहीं है और न लोकप्रिय ही है (मुझे ऐसा लगा ही था अतः यह शंका दूर हुई)

शिंगराचार्य से यह और पूछा कि आपकी इस पुस्तक में लगभग १०८ ताल उनके संकेतों सहित दिए हुए है उन्हें कैसे समझना चाहिये यह किसी एक ताल को हाथ से बाँधकर, मात्राएं गिनकर, आघात देते हुए दिखाइये। उन्होंने वह तुरंत दिखाया। पृष्ठ १२० पर 'नंदन ताल" है, वह ११००३ इस प्रकार लिखा हुआ है। इसके "लघु, लघु, द्रुत, द्रुत, प्लुत" ऐसे चिह्न है। इसमें पांच आघात है ऐसा समझिये तथा ४, ४, २, २, १२, इन मात्राओं के अंतर से वह आघात देने चाहिये। (मुझे ऐसा लग ही रहा था) परंतु उसकी पुष्टि करनी थी जो हो गई। उन्होंने कहा जिस प्रकार कुछ राग लोकप्रिय नहीं हो पाते उसी प्रकार कुछ-कुछ ताल गणित पर तो बने हुए हैं परन्तु प्रचार में नहीं हैं। बाद में शिंगराचार्य ने अपनी पुस्तक में दिये हुए एक दो स्वर-प्रस्तार समझाये, वे भी लगभग ठीक ही समझ गया हूं। घर जाकर अधिक अभ्यास करके उसकी जानकारी लिख रखूंगा। बाद में शिंगराचार्य को समय न होने के कारण मैं घर लौट आया। प्रवास में तेलगू जानने वाले मिलेंगे उससे पुस्तक पढ़वाऊंगा तथा जानकारी प्राप्त कर लूंगा। जो जानकारी मिलेगी उसे इसमें लिख रखूंगा।

संगीत तीर्थ तन्जौर — शुक्रवार २५ नवम्बर १९०४

मैं कल सायंकाल मद्रास से चला और आज प्रातः पांच बजे के लगभग यहां पहुंच गया। यहां आने की कल्पना से ही मन में बड़ा उल्लास हो रहा था। कारण बम्बई में रहते हुए सदैव मैं यह सुनता आ रहा था कि दक्षिण में संगीत का घरमाने ही तंजौर एवं मैसूर ये नगर है। उन दो में से एक शहर में तो मैं आ पहुंचा। अतः ईश्वर क्या अनुभव देता है,यह देखना है। आशा तो बहुत है। मद्रास में मुझे जो कुछ जानकारी प्राप्त हुई है उससे ऐसा सुनिश्चित हो जाता है कि दक्षिण का संगीत वही संगीत है जो ७२ मेलकर्त्ता पर आधारित किया गया है। अब एक बड़ा प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि यह मेलकर्त्ता पद्धति अपने रत्नाकर के पूर्व की है अथवा बाद की। इसके स्पष्टीकरण पर बहुत सी बातें अवलंबित रहेंगी। इसलिये मैंने इस मुद्दे पर पर्याप्त प्रमाण संकलित करने का निश्चय किया है। मेरा अपना स्वयम् का तर्क ऐसा है कि यह पद्धति रत्नाकर के पूर्व की नहीं कही जा सकती तथा उसके पूर्व रत्नाकर कालीन होने का आधार स्थापित कर सकने वाले विद्वान यहां मिल सकना कठिन है। परन्तु जिस विषय का निराकरण अब शीघ्र ही होने जा रहा है उस विषय पर मात्र तर्क करते बैठे रहने का प्रयोजन भी मेरी समझ में नहीं आता। प्रत्येक पंडित जो भी मिलेगा उससे यह प्रश्न करता ही रहूंगा, तथा सभी के उत्तरों को मिलाकर सिद्धांत निश्चित करूंगा। रत्नाकर का संगीत बहुत प्राचीन लगता है। योरोपीय संगीत के स्थित्यंतरों को पढ़ते समय जिस अत्यन्त प्राचीन संगीत पर दृष्टि पड़ती है वही योग्य फेरफार से अपने रत्नाकर के संगीत में दृष्टिगोचर होता है। इस मेलकर्त्ता की गणितशास्त्र के आधार पर की गई सुन्दर रचना अर्थात उनकी स्वर रचना देखने पर ऐसा लगने लगता है कि यह कोई बहुत प्राचीन नहीं है। यदा-कदा इस मेल पद्धति को एकाद संस्कृत ग्रंथ का आधार मिल भी गया तो भी यह ठहराना कठिन होगा कि वह अनादिकाल से चली आ रही है। ऐसा ही हो यह मेरा मत है। रत्नाकर के स्वर-सप्तक व राग बहुत पुराने और सादे तत्काल प्रतीत होते हैं। वह बात इस मेलकर्त्ता पद्धति की नहीं है। अस्तु।

आगमन -

स्टेशन पर उतरकर देखा तो हमें लेने आया हुआ कोई नहीं दिखा। मद्रास के हमारे यजमान् श्री रंगनाथ ठाकुर ने मुझसे कहा था कि वे तंजौर के सदाशिव राव दवे, वेस्ट मेन स्ट्रीट को पत्र लिख रहे हैं तथा वे आपके उतरने की अच्छी व्यवस्था करेंगे। अतः मुझे ऐसा लगा कि उसका कोई व्यक्ति स्टेशन पर आया होगा। प्रथमतः ऐसा भय लगा कि हमें ठहरने में कठिनाई आवेगी। लेकिन डॉक बँगले के बारे में पूछताछ कर वहां ठहर गये। यह कहने की आवश्यकता ही नहीं कि वहां तो उत्तम प्रबंध रहता है। इस प्रकार लगभग सात बज गये। बाद में चाय-पानी करने के उपरांत अपने प्रिय विषय की खोज-खबर लेने चल पड़ा। प्रथमतः साउथ मेन स्ट्रीट में प्रविष्ट हुआ। कुछ आगे जाने पर देखा कि एक घर के दूसरे मंजिल पर कोई शिक्षक दो-तीन छोटे बालकों को "सारीगम" की तालीम दे रहे थे। उस घर के सामने गायन सुनने के बहाने से खड़ा रहा। मेरा यह व्यवहार और अनोखापन देखकर मुझे ही देखते रास्ते के दो-तीन व्यक्ति इकट्ठे हो गये। उन्होंने मेरे बारे में पूछा। बातचीत के लिये निमित्त मिलते ही इस अवसर का लाभ उठाकर मैंने जानकारी प्राप्त करने की शुरूआत की। जो सज्जन मुझसे पहिले मिले और मुझसे बात करने लगे उन्होंने अपना नाम और पता कृष्ण स्वामी पिल्लाई, क्लर्क कलेक्टर आफिस यह बताया। ये सज्जन बहुत सीधे, दयालु तथा सभ्य थे। उन्होंने मेरे प्रश्नों के उत्तर प्रसन्नता से दिये। मैंने उनको बताया कि संगीत-शास्त्र के प्रति मेरा बड़ा लगाव हैं तथा उसी की जानकारी एकत्रित करने के इरादे से मैं इस प्रांत का भ्रमण कर रहा हूं। अतएव आपके संगीत प्रसिद्ध, नगर में सबसे उत्तम संगीत-शास्त्री कौन माने जाते है, यह मुझे बतावेंगे ? उन्होंने कहा कि दुर्भाग्य से यहां लगभग तीन-चार माह पूर्व संगीत के तथा मुख्यकर मृदंगवादन के अधिकारी श्री नारायण स्वामी का देहांत हो चुका है। यदि यह कहें तो अनुचित न होगा कि इस तंजौर नगर में उनसे बड़ा विद्वान कोई नहीं था। मुझे संगीत बहुत अधिक नहीं समझता परंतु मैंने आपको लोकमत बताया। खैर, वे तो अब चले गये। परन्तु उनके बाद माने हुए विद्वान "देव गोस्वामी" अभी जीवित हैं। वे महाराष्ट्रीय ब्राम्हण है तथा मराठी बोल सकते हैं। उनको संगीत शास्त्र का अच्छा ज्ञान है। कोई एक वाद्य वे अच्छा बजाते हैं, ऐसा कहते हैं। मैंने कहा कि यदि वे मुझे उनका घर बतावें तो बड़ा आभारी होऊंगा। इस पर, श्रीकृष्ण स्वामी समीप की ही एक गली में ले गये व उनकी तथा मेरी भेंट करवा दी। ये देव गोस्वामी मध्यम आयु के तथा स्वभाव से अत्यन्त सरल लगे। नमस्कार इत्यादि होने तथा परस्पर परिचय की औपचारिकता के बाद मैंने अपनी यात्रा का मनोरथ उन्हें बताया तथा प्रार्थना की कि कृपाकर इस विषय की जो भी जानकारी संभव हो मुझे प्रदान करें। मुझे महाराष्ट्र देश का तथा उसपर भी ब्राम्हण जानकर वे प्रसन्न हुए तथा बोले कि उनके घर आज ही लग्न कार्य है जो एक-दो दिनों में समाप्त हो जावेगा। उसके समाप्त होने पर परसों रविवार को आप आवे। मुझे जो आता है वह मैं आपको बताने को तैयार हूं। इसके उपरांत उनका आभार मान तथा रविवार को भेंट करना निश्चित कर चल दिया। इसी बीच श्री कृष्णस्वामी ने मुझे यह बताया कि इस नगर में श्री कृष्ण राव नायक नामक एक बड़े रईस हैं। उन्हें संगीत में विलक्षण अभि रूचि है तथा यदि इन सज्जन से आपने पहिचान कर ली तो इस नगर के प्रत्येक संगीत विद्वान को जानने-परखने का अवसर आपको मिलेगा। उनका यह बताना मुझे अच्छा लगा कारण मैंने यह निश्चय किया ही था कि

तंजौर के प्रत्येक विद्वान को क्या-क्या आता है यह पता लगाये बिना आगे नहीं जाऊंगा। अतएव उनकी सूचना के अनुसार उन नायक महानुभाव के यहां मैं गया परन्तु वहां यह विदित हुआ कि वे देर से उठेंगे तथा उठते ही उन्हें त्रिवाड़ी स्थान के लिए जाना है। यह सूचना मिलने पर उनसे मिलने की बात दो-एक दिन के लिये स्थगित की। रास्ते में एक सज्जन और मिले। उन्होंने यह बताया कि यहां व्यंकटराव नामक फ़िडिल बजाने वाले प्रसिद्ध सज्जन है।उनके घर जाने पर ज्ञात हुआ कि वे शहर में नहीं है। कृष्णराव नायक कल आने वाले हैं यह समझकर उनके यहाँ कल जाने का निश्चय किया है।

सरस्वती महल ग्रन्थालय –

सायंकाल यहां की प्रसिद्ध "सरस्वती महल" पैलेस लाइब्रेरी देखने गया। कैप्टन डे की पुस्तक में संगीत ग्रन्थों के नाम व उनके प्राप्ति स्थान की जो सूची दी हुई है उसमें तंजौर पुस्त-कालय के ग्रन्थों पर भी टीप दी है। अतएव वे ग्रन्थ कैसे क्या है तथा और दूसरे ग्रन्थ भी है कि नहीं यह देखने के लिये वहां जाना निश्चित किया था। वहां श्री कृष्णैय्या नामक ग्रन्थालय है। वे बहुत ही सज्जन व्यक्ति है तथा इस प्रकार के बाहिरी सज्जन पुस्तकालय देखने गये तों वे उन्हें दिखाते हैं तथा समस्त उपयोगी जानकारी प्रदान करते हैं उन्होने पुस्तकालय का 'केटलाग' मेरे सम्मुख रखा तथा "संगीत ग्रंथ:" ऐसा लिखा हुआ दिखाया। कुल मिलाकर लगभग १९ ग्रंथ मुझे दिखाई दिये। इनमें से कुछ ग्रंथों की प्रतियां अनेक है। केटलाग बहुत अच्छा तैयार किया गया है। यह भी ज्ञात हुआ कि वह डा. बर्ने ने तैयार किया है। उसमें ग्रंथों के नाम उसकी प्रतियों की संख्या, उनके विषयों पर संक्षिप्त नोट, उन ग्रंथों की स्थिति, (जैसे– फटे, टुकड़े, अपूर्ण, अमुक पृष्ठ अप्राप्य, अमुक लिपि में, ताल पत्र पर) इत्यादि-इत्यादि सभी जानकारी दी हुई है। इस कारण, किसी से कुछ पूँछने की आवश्यकता नहीं पड़ती। श्री कृष्णैय्या ने बताया कि पूर्व में तंजौर में मराठा राजा राज्य करते थे। अब उनके हटने के उपरांत यह शहर अंग्रेजों के अधिकार में गया है। यह पुस्तकालय राजा की व्यक्तिगत संपत्ति में है। राजा रानियों में से कुछ का सरकार से विवाद उत्पन्न हो जाने के कारण वह कचहरी तक गया तथा अब कचहरी ने श्री ओलीवर को "रिसीवर टु पैलेस इस्टेट्स" नियुक्त किया है। यह पुस्तकाल "रिसीवर" के नाते उन्हीं के ही आधीन है। यहां से किसी को भी कोई नकल चाहिये हो तो उसे "श्री जी. टी. ओलिवर, रिसीवर एण्ड मेनेजर, पैलेस इस्टेट्स" को औपचारिक आवेदन करना पड़ता है। ऐसा करने के बाद वह अर्जी मेरे पास भेजकर "कोपीइंग फीस" की राशि तैयार करने के लिये मुझसे कहते है। मैं वह तैयार एवं सही कर यह रिसीवर के पास भेजता हूं। इसके उपरांत 'एस्टीमेट" के अनुसार पैसा लिया जाता है तथा रसीद प्रदान की जाती है। वे ग्रंथ मैं कार्यालय भेजता हूं। वहां बैठकर लेखक उनकी नकलें करते हैं तथा उसे आवेदनकर्त्ता को डांक से भेज दी जाती है।

यह व्यवस्था देखकर सचमुच मुझे बड़ा संतोष हुआ। अपने यहां राजे रजवाड़े यदि पूर्ववर्ती ग्रंथों को इस प्रकार एकत्रित कर पुस्तकालयों में संभालकर रखें तथा उनके विद्यार्थियों को स्वखर्च पर, नकलें करने दें तो कितना लाभ होगा। इस प्रकार के अनेक उपयोगी ग्रंथ विभिन्न गांवों में विभिन्न सज्जनों के पास गुप्तरीति से रखे हुये होंगे। राजा ने अपने खर्चे से

उन्हें एकत्र कर नकल करने की फ़ीस के रुप में हुए खर्च को वसूल करने की योजना बनाई तो ऐसा नहीं लगता कि कोई हानी होगी।

अस्तु।

मेरे नये परिचित मित्र श्री कृष्ण स्वामी पिल्लई यद्यपि गरीब व्यक्ति है परन्तु अत्यन्त सुशील होने के कारण इस नगर के चार बड़े-बड़े लोगों से उनका स्नेह संबंध जुड गया है। उन्होंने नगर में कुछ लोगों को मेरी जिज्ञासा के विषय में बताया। संगीत जानने वाले कुछ विद्वानों को मेरे घर आना भी उन्होंने स्वीकार किया है।

मृदंगाचार्य दासस्वामी — शनिवार, २६ नवंबर' ०४

आज प्रातः दस बजे श्री कृष्णराव दो सज्जनों को डाक बंगले पर ले आये। मैंने उनका स्वागत किया। ऐसा ज्ञात हुआ कि इस नगर में रामदास स्वामी के मठों में से एक मठ के वे अधिपति है। उनके नाम "रामणा स्वामी" और "दासस्वामी" हैं। दासस्वामी अति उत्तम मृदंग बजाने वाले व रामणा स्वामी अच्छे सरोद बजाने वाले है ऐसी नगर में ख्याति है। लोग कहते हैं कि कुछ माह पूर्व यहां के जिन प्रसिद्ध नारायण स्वामी का देहान्त हो गया उनके उपरांत तंजौर नगर में मृदंग बजाने वाले उनके प्रतिनिधि केवल सेतुराम व दासस्वामी हैं। उनमें से ये दासस्वामी हैं। दासस्वामी अत्यन्त सरल हृदय के व्यक्ति लगे। उनका मेरा थोड़ा सा वार्तालाप हुआ वह इस प्रकार है :–

प्र. – आप मृदंग बजाते हैं। क्या उस विषय का कुछ पुस्तकीय शास्त्र आपने सीखा है? या गुरू ने प्रायोगिक रुप से जैसा सिखाया वैसा बजाते हैं तथा उस विषय की शास्त्रीय जानकारी प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया?

उ. – मैंने कुछ शास्त्रीय जानकारी भी प्राप्त की है।

प्र. – क्या रत्नाकर का ताल अध्याय आपने पढ़ा या सुना है?

उ. – नहीं।

प्र. – आप ताल के लिये आधारभूत ग्रंथ कौन सा मानते हैं। आपके गुरू कौन सा मानते थे?

उ. – "नंदीभरत" व "ताल लक्षण" (दर्पण?) ये ग्रंथ मैं आधारभूत मानता हूं तथा उनके अनुसार बजाता हूं।

प्र. – ये ग्रंथ क्या आपके पास है? यदि है तो उन्हें दिखाकर क्या आप मुझे उनकी नकलें उतारने देंगे?

उ. – हां है। तथा उसकी नकलें यदि आप लेंगे तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मुझे इसमें जरा भी शंका नहीं कि इन ग्रंथों का उपयोग आप जैसे व्यक्तियों के हाथ से अच्छा ही होगा।

प्र. – क्या आप बताएंगे कि इन ग्रंथों में क्या कहा है ?

उ. – इनमें १०८ तालों के अंग एवं लक्षण बताए हैं ।

प्र. – क्या आपके इस नगर में संगीत ग्रंथ पढ़े हुए कोई हैं ?

उ. – हां है । आपको कितना अवकाश है ?

मैं. – मैंने यह निश्चय किया है कि यहां के सभी छोटे–बड़े विद्वानों से संभाषण चर्चा किये बिना यहां से आगे नहीं जाऊंगा । आप ऐसे सज्जनों से कब मुलाकात करावेंगे यह बताइये ? यदि वे मेरे पास आवेंगे तो वहाँ लाइये नहीं तो मुझे बताइये, वे जहां कहेंगे वहां जाने को मैं तैयार हूँ ।

उ. – बहुत अच्छा, है । मैं वही करूंगा ।

प्र. – क्या आपके नगर में मेलकर्त्ता पद्धति ही प्रचार में है ? क्या यह बता सकेंगे कि इस मेलकर्त्ता की साधारण जानकारी मुझे किस ग्रंथ में प्राप्त होगी ?

उ. – यह जानकारी आपको "संगीत सारामृत" ग्रन्थ में प्राप्त होगी । यह पुस्तक "सरस्वती महल" में है । ताल विषयक जानकारी के लिये मैंने बताए हुए "नंदीभरत एवं ताल-दर्पण" पुस्तकें पर्याप्त है । उनकी नकलें देना मैं स्वीकार करता हूँ । आपको इनके अतिरिक्त किसी पुस्तकीय खटपट में जाने की आवश्यकता नहीं है ।

इतने में उनके जाने का समय हो गया अतः वे जाने के लिए निकले । वे बोले कि उन्हें बम्बई जाना है । अब मुझसे परिचय हो जाने से सुविधाजनक रहेगा । बाद में वे गये तथा "सायंकाल फिर मिलूंगा" ऐसा कहा ।

विद्यायाविद्या –

तंजौर नगर संगीत प्रसिद्ध है । उत्तर में जैसे ग्वालियर वैसे यहां तंजौर । अतएव यहां चार दिन अधिक भी लगें तो लगाऊंगा यह निश्चय किया । परन्तु अमुक व्यक्ति को सुनना रह गया, ऐसा नहीं होने दूंगा । मेरे जैसे मध्यम श्रेणी के व्यक्ति के लिये इस प्रकार की दूरी की यात्रा बार–बार करना कठिन होगा यह सोचकर ऐसा निश्चय किया ।

ऐसा लगता है, कि मद्रास की अपेक्षा इस नगर के व्यक्तियों में संगीतभिरुचि अधिक है । इस कारण से मेरा मन मुझे विचलित कर रहा है । इसका कारण यह है कि, यहां के संगीत का मुझे ज्ञान नहीं है । उनके द्वारा गाये गये रागरागनियों के नाम मुझे कुछ भी बताते नहीं बनेंगे । आड़े तिरछे अप्रसिद्ध ताल मुझे नहीं मालूम । फिर भी मैं चर्चा करने को उद्यत हूँ, क्या यह अजीब नहीं लगता ?

अस्तु। परन्तु ऐसा भी निश्चित किया था कि जो बात मालूम नहीं हैं उनके संबंध में स्पष्ट रूप से मुझे मालूम नहीं ऐसा स्वीकार करके उसे सीख लूंगा। इसमें संकोच या लज्जा नहीं करना है। दासस्वामी का कहना यह भी था कि इस प्रांत में मुख्य सात ताल व उनकी पैंतिस जातियों की खटपट सर्व साधारण रुप से है। यदि वे पखावज विद्या में तथा विशेष रुप से उसके साहित्य में सचमुच–निपुण प्रतीत हुए तो उनसे यह जानकारी प्राप्त कर लिख रखूंगा वे सायंकाल मिलने वाले ही है उस समय ऐसा अवसर प्राप्त होगा। वे "नंदी भरत" व "ताल दर्पण" यह पुस्तके लाने वाले ही है। उन्हें पढ़कर स्वयं मुझे भी यथेष्ट जानकारी प्राप्त कर सकना संभव होगा। यह जानकारी मिल जाते ही मैं इस विषय पर चर्चा करने योग्य हो जाऊंगा। एक सामान्य बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिये कि जो लोग संस्कृत जानते नहीं वे शास्त्र का चाहे जितना दिखावा करे फिर भी पुस्तकों की जानकारी पर चर्चा करने में उन्हें सदैव भय ही लगता रहेगा। अतएव यहां की सुस्थापित ख्याति से डर कर घबराने की कोई बात नहीं। "सीखो नहीं तो सीखाओं" इस नीति का योग्य प्रमाण से अनुसरण करने का निश्चय किया है। इस नीति में पैसा खर्च होने की संभावना भी थोडी ही रहती है। यहां के गुणिजनों को पैसे देकर उनके मुजरे करवाने में विशेष अर्थ मुझे नहीं दिखा। "विद्यया विद्या" इस न्याय से व्यवहार करने का निश्चय करता हूँ।

पांडुलिपियां –

"पैलेस लाइब्रेरी" में संगीत विषय पर जो पुस्तके दिखीं उनके नाम निम्नानुसार है :–

(१) संगीत सारामृत
(२) संगीत मुक्तावली
(३) राग रत्नाकर (केवल नाम एवं तस्वीरें दी हैं)
(४) अभिनय दर्पण (केवल नृत्य)
(५) अष्टोत्तरशत–ताल–लक्षणम्
(६) ताल प्रस्तार
(७) ताल लक्षणम्
(८) ताल दीपिका
(९) राग प्रस्तार
(१०) ताल दशप्राण दीपिका
(११) राग लक्षणम्
(१२) दत्तिल कोहलीयं (पास में है, नृत्य पर)
(१३) संगीत मकरंद (पास में है। नृत्य पर)
(१४) चत्वारिंशत् छत राग निरुपणम् (वर्णन एवं तस्वीरें–पास में है)
(१५) संगीत दर्पण (पास में है)
(१६) संगीत रत्नाकर (पास में हैं)
(१७)
(१८)
(१९) } मेरे उपयोग के नहीं लगे। इनके नाम भूल गया हूँ।

श्रीनिवास शास्त्री –

आज दोपहर में श्रीनिवास शास्त्री डांक बंगले पर आकर मुझसे मिले। इन सज्जन को मैं नहीं पहचानता था। परन्तु बम्बई से इनका मेरा पत्र व्यवहार था। मुझे इनके संबंध में बम्बई के वेदाचार्य श्रीधर शास्त्री नाशिककर ने जानकारी दी थी तथा यह भी बताया था कि ये विद्वान और संगीत ग्रन्थ लिखवा कर मुझे भेज सकेंगे। अतएव मैं उनको लिखता रहा हू तथा तदनुसार उन्होंने तीन ग्रन्थ मुझे भेजे भी थे। वह [१] संगीत मकरंद [२] चत्वारिंशतछत्राग निरूपणम् [३] दत्तिल–कोहलीयं–यह थे। इन सज्जन को मैंने मद्रास से पहिले ही पत्र लिखा था। परन्तु वे नगर में न होने के कारण कुछ विलंब से आये थे। अस्तु। इनसे प्रत्यक्ष परिचय हुआ यह अच्छा ही हुआ। इन सज्जन ने मुझे बताया कि तंजौर के एजूकेशनल इन्सपेक्टर नागोजीराव इस नाम के बहुत बड़े व्यक्ति है। वे बी.ए. है और संगीतशास्त्र में अत्यन्त निपुण हैं। वे इस संगीत के लिये बड़े प्रयत्नशील रहते हैं। उनके पास श्री सोमनाथ ऐय्यर नामक एक अच्छे प्रसिद्ध गायक है तथा उन्होंने प्राइमरी स्कूलों में संगीत भी प्रारंभ किया है। तथा इस दृष्टि से एक दो सरल व संक्षिप्त पुस्तकें भी लिखी हैं। सारांश यह कि ये सज्जन भेंट करने योग्य हैं तथा उनसे लाभ होने की ही संभावना है। यह कहते ही कि मैं उनके पास जाने को तैयार हूँ, वे उन नागोजीराव को सूचित करने चल दिये। तथा एक घंटे के अन्दर आकर मुझे बताया कि श्री नागोजीराव अपना काम समाप्त कर साढ़े तीन बजे मेरे लिये खाली बैठे रहेंगे।

श्री नागोजीराव से साक्षात्कार –

बाद में, साढ़े तीन बजे श्री निवास शास्त्री के साथ नागोजीराव से भेंट करने उनके आफ़िस गया। बताए अनुसार सब कार्य समेंटकर हाथ की एक हार्मोनियम की पेटी समीप रखकर, वे सचमुच मेरी प्रतीक्षा करते बैठे हुए थे। इसको कहते हैं असली शौक। ये महानुभाव हजार रुपया प्राप्त करने वाले अधिकारी– होते हुए भी अपनी रूचि के विषय में छोटे से बालक के समान उनका शौक देखकर मुझे अत्यन्त आनंद हुआ। औपचारिक परिचय इत्यादि होने के बाद नागोजीराव ने मुझ से प्रश्न किया कि मैं यहाँ किस विषय का शोध करने आया हूं और वे मेरी किस प्रकार मदद कर सकते है यह बतावें। इस पर हमारा संभाषण निम्नानुसार हुआ :–

मैं. – श्री नागोजीराव ! मुझे ज्ञात हुआ कि आप इस विषय पर बहुत दिनों से परिश्रम कर रहे हैं तथा यह भी सुना है कि आपने संगीत विषय पर "प्राइमर्स" इत्यादि लिखकर उन्हें शालाओं में प्रचालित किया है। यह कहने में संकोच नहीं कि यह बात ऐतिहासिक तंजौर के 'रिकार्डस' में रहेगी। हमारे यहाँ इस प्रकार के प्रयत्न में सफलता मिलने में अभी कुछ विलंब लगेगा। कारण, वहाँ की पद्धति में इस प्रकार के नियम लगाने वाले, तथा उत्साह से क्रियान्वित करने वाले अधिकारी अभी आगे नहीं आये है। यह भी कारण हो सकता है कि उस संगीत हेतु इस प्रकार की अच्छी 'प्राइमर्स' किसी ने लिखी ही नहीं। हमारे यहाँ, मेलकर्त्ता व उनके नियमित–स्वर पुस्तकों में कायम कर, उन मेलों के जन्यराग व उनके निश्चित आरोह–अवरोह जैसी बातें प्रचार में सर्वमान्य

न होने के कारण यह सुधार हो सकना संभव नहीं हुआ। ऐसा होना अभीष्ट है और वह होकर ही रहेगा। इसमें शँका नहीं कि वहां के विद्वानों को यहां जैसी रूचि उत्पन्न हुई तो उसके परिणाम अच्छे ही होंगे। वहां के राग-रागनियों का योग्य वर्गीकरण उनके वर्ज्याज्यं, आरोह-अवरोह के नियम नियत होते ही स्वस्थ दिशा मिल जाने जैसा होगा। अच्छा, तो मैं आपसे यह पूछना चाहता हूं कि आपने जो यह पुस्तकें लिखवाई है तथा रागों के नियम आदि छपवा कर प्रसिद्ध कराये हैं, उन सबके लिये प्रमाणिक ग्रंथ कौन सा माना है ? वह ग्रंथ संस्कृत में है या देशी भाषा में ?

उ. – मैंने प्रथम, इस विषय की बहुत सी संस्कृत पुस्तकें उलट-पुलट कर देखी, परन्तु उससे कोई लाभ नहीं हुआ। मैं इस मत का हो गया कि वर्तमान संगीत और उस समय के संगीत का कोई संबंध नहीं है। यह उससे उत्पन्न हुआ है कि नहीं इस संबंध में कोई पता नहीं है। वह एकदम निरूपयोगी पांडित्य है। किसी पुरातत्ववेत्ता को प्राचीन सभ्यता के खण्डहर के रुप में देखने की इच्छा हो तो यहां वहां खोज करें। परन्तु शास्त्रीय दृष्टि से उसका कोई उपयोग नहीं हैं यह मैं कह सकता हूं। उस सब खटपट की अपेक्षा मैं हमारे दक्षिण का वर्गीकरण उत्तम समझता हूं।

प्र. – वह उत्तम है यह मैं भी कह सकता हूं। परन्तु उन संस्कृत ग्रंथों के विषय में तथा प्राचीन संगीत के संबंध में आपकी मान्यता देखकर मैं उदास हुआ हूं, यह कहने की आज्ञा चाहता हूं। मैं निश्चित प्रश्न यह पूछना चाहता हूं कि क्या आपने संगीत रत्नाकर पढ़ा है ? उसमें श्रुतियों से सप्तकों की रचना क्या आपने समझ ली है ?

उ. – वह सब मैंने देखा है ? परन्तु कोई भी उन श्रुतियों का उपयोग नहीं करता। हमारे १२ स्वरों के सप्तक ही हमको अच्छे लगते हैं।

मैं. – परन्तु समझिये कि योरोपीय लोगों ने यह कहा कि आपके ये सप्तक सप्तक के रूप में, आपने हमारे ही ले लिये हैं। हम लोग यहां आने के बाद हमारी देखा-देखी आपके किसी पंडित ने आपका यह वर्गीकरण किया है। क्या इसका कोई उत्तर आप दे सकेंगे? और यदि वह संभव है तो किस ग्रंथ के आधार से ?

उ. – मुझे इस प्रश्न का समाधानकारक उत्तर दे सकना संभव नहीं है।

प्र. – संस्कृत ग्रंथों के शुद्ध स्वरों का सप्तक कौन सा है ? अर्थात्, उससे आपका कौन सा मेल बनेगा ?

उ. – वह मैं नहीं बता सकता। परन्तु यहां "मायामालव" की शिक्षा प्रथम दी जाती है। परन्तु ग्रंथों में कौन सा है ? रत्नाकर में कौन सा है ?

मैं. – परिजात के आधार पर यह ठहराया जा सकता है कि वह "खर-हर-प्रिया" था। (इसके उपरान्त कागज पर नक्शा बनाकर, वह कैसे था, इस बात से उनका समाधान

कर दिया) अच्छा मूर्च्छना के विषय में आप कुछ जानते हैं ? क्या आपने इस संबंध में सोचा है कि उनका उपयोग होता था ?

उ. – नहीं। वह मुझे नहीं मालूम।

मैंने कागज निकालकर उसे भी समझा दिया। इस पर उन्हें आश्चर्य हुआ तथा उन्होंने स्वीकार किया कि उन्होंने पुस्तक को इस दृष्टि से एकदम नहीं समझा।

मैं. – तो फिर आपको यह कहने का अधिकार कहां से मिलता है कि वे ग्रंथ एकदम निरूप–योगी है, ऐतिहासिक खण्डहर हैं। देश काल परिस्थिति के अनुसार रागों में भले ही परिवर्तन होता रहे परन्तु उसका विकास कैसे–कैसे होता गया तथा पहिले का कौन सा भाग अवशेष रहा, कैसा और कितना बदला, यह देखना निरूपयोगी होगा ऐसा में नहीं कह सकता। और मुझे लगता है कि आप जैसे विद्वान को भी नहीं कहना चाहिये। सभी ग्रंथों का सप्तक "खरहर प्रिया" नहीं है, यह सच है कि वह "पारिजात" का है।

नागोजी– मैंने पहिले एक बार यही अनुमान किया था (अपने लेखक से) क्यों जी कुछ समय पूर्व मुझसे किसी ने पूछा था, जिसको मैंने "खरहर प्रिया" इस सप्तक का नाम बताया था, याद है न ? (क्लर्क– हाँ) परन्तु वह मेरा केवल अनुमान मात्र था। आपने अब आधार सहित समझाया यह अच्छा हुआ। इसी प्रकार ग्राम के विषय में भी अनुमान किया था। परन्तु अब आप उन्हें भी समझाईये। मैं जिससे आगे विचार कर सकूं।

प्र. – मुझे अब ऐसा लगने लगा है कि आपको संस्कृत ग्रंथ नहीं समझे। इसी कारण उनका उपयोग करना संभव नहीं हुआ। यदि सप्तक समझ लें व रागों के वर्णन समझ ले तो रागों के स्वरुपों के विषय में कल्पना कर सकना संभव होगा। परन्तु उन्हीं नामों के अनेक राग आपके जनक–जन्य रागों में भी हों तो प्राचीन एवं अर्वाचीन रागों की तुलना करना क्या संभव नहीं होगा ? और ऐसा करने से लाभ ही होगा कम से कम संगीत को एक सुसंबद्ध इतिहास तो मिल ही जावेगा ?

उ. – हां। वह सच है। यह प्रयास अच्छा है। मेरा कहना इतना ही है कि वर्तमान में मेल पद्धति मनोरंजन करने हेतु पर्याप्त है। तो फिर पिछले जमाने के विषय की खटपट करने की क्या आवश्यकता है ?

मैं. – ठीक है। इस संबंध में मैं अब आग्रह नहीं करता। यह प्रश्न अपनी–अपनी पसंद का है। क्या आपको यह विश्वास है कि आपके सभी मेल संपूर्ण देश को पसंद आवेंगे ही ? क्या आपके क्षेत्र में ही ये सबको पसंद है ?

उ. – नहीं। सभी मेल समान रुप से रंजक नहीं है। तथा वे लोकप्रिय भी नहीं है। उदा–हरणार्थ– कनकांगी तथा कुछ अन्य लोकप्रिय नहीं है। यह नहीं कि ऐसा सिर्फ मैं ही कहता हूं, ग्रंथकार भी ऐसा ही कहते हैं।

प्र. – कौन से ग्रंथकार ?

उ. – इट्टैयापुरम् में सुब्राम दीक्षित नामक एक प्रसिद्ध विद्वान हैं वे भी अपनी "संगीत संप्रदाय प्रदर्शनी" नामक पुस्तक में ऐसा स्पष्ट कहते हैं। इस पद्धति के रचयिता ने अपने क्रम–संचय (परम्यूटेशनस्) के शुष्क सिद्धांत के अनुसार जितना हो सकता था उतना किया, परन्तु यह समझने लायक है कि लोकरंजन करने योग्य जितना था उतना ही लोकप्रिय हुआ।

प्र. – आपके यहां कौन से मेल व जन्यराग बहुत प्रिय माने जाते हैं ?

उ. – हाँ। वह बताता हूं।

क्रम संख्या	मेल नाम	जन्य राग
८.	तोड़ी	१. आसावरी २. धन्याश्री ३. पुन्नागवराली ४. भूपाल ५. घंटा (कमली प्रिय)
१५.	मायामालव	१. गौल २. नादरामक्री ३. सावेरी ४. परज
१७.	सूर्यकांत	२. लज्जित २. बसंत ३. सौराष्ट्र
२०.	नट भैरवी	१. आनंद भैरवी २. भैरवी ३. मुरवारी ४. रीतिगौल
२२.	करहर प्रिया	१. कानडा २. काफी ३. श्री ४. दरबार ५. नायकी ६. मध्यमावती ७. हुसैनी
२८.	कांभोजी	१. झिंझोटी २. खमाज ३. कामोदी ४. केदार गौल ५. शहाणा ६. नाटकुरंजी ७. बिहागड़ा ८. मोहन ९. सोरटी
२९.	शंकराभरण	१. शंकराभरण २. अडाणा (अठाणा ?) ३. आरभी ४. कुरंजी ५. केदार ६. सावेरी (शुद्ध सावेरी ?) ७. देवगांधारी ८. नवरोज ९. नीलांबरी १०. बिहाग ११. बिलहरी १२. हंसध्वनि
५१.	कामवर्धनी	(अपनी पूर्वी)
५३.	पूर्वीकल्याणी	१. पूर्वी (मारवाथाट)
६५.	मेचकल्याणी	१. कल्याण २. सारंग

यह मेल एवं जन्य राग हमारे दक्षिण में लोकप्रिय हुए हैं। इससे यहां के लोगों की रूचि की कल्पना आपको हो सकेगी।

प्र.– कल आपके नगर के रामदास स्वामी मठ के अधिपति मेरे पास डांक बंगले पर आये थे । उन्होंने मुझे ऐसा बताया कि संस्कृत ग्रंथ पढ़े हुए तथा उन्हें समझे हुए विद्वान तंजौर नगर में हैं । क्या आपने उनसे भेंटकर उनसे इस विषय की चर्चा की है ?

उ. – मुझे इस नगर में ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं दिखा । किसी ने यूँ ही यहां–वहां के श्लोक किसी पुस्तक से याद कर लिये हों तो मुझे नहीं मालूम । परन्तु यहां ग्रन्थ समझा हुआ मेरे देखने सुनने में नहीं आया । संगीत ग्रन्थों की चर्चा लगता है जैसी आपके यहां होती है, वैसी यहाँ बिलकुल नहीं होती । हमारे बने–बनाए मेल व जन्यराग इनके अतिरिक्त हम एकदम नहीं जाते । इस क्षेत्र में केवल इनका ही प्रचलन दिखाई पड़ेगा ।

प्र. – आपके यहां रागों के स्वरूप में मतभेद होते रहते हैं क्या ?

उ. – मतभेद बहुत होते रहते है । नाम में अन्तर नहीं है । परन्तु रुप में अर्थात वर्ज्यावज्य स्वरों में वैसे ही आरोह–अवरोह में गायक लोग लोक–रंजनार्थ भांति–भांति के भेद उत्पन्न करते रहे हैं तथा वह भेद लोगों को पसन्द भी आने लगे है ।

प्र. – तो फिर दो गायकों में मतभेद हो जाने पर किस ग्रंथ को प्रमाण मान कर निर्णय लिया जाता है ? वह संस्कृत में है या प्राकृत में ?

उ. – मैंने किसी को प्रमाणिक ग्रंथ उद्धृत करते हुए नहीं देखा । प्रत्येक व्यक्ति अपने मत को ही सामने रखता है । परन्तु सदैव से, इट्टैय्यापुरम् के दीक्षित ने एक वृहद् ग्रन्थ प्रसिद्ध किया हैं । ऐसा लगता है कि वह इस प्रकार के विवाद निपटाने के लिए एक बड़ा आधार होगा उसमें दीक्षित ने जन्यजनक रागों के श्लोक दिये है । ग्रन्थ बहुत अच्छा तैयार हुआ है, तथा ऐसी आशा है कि वह शीघ्र ही लोकमान्यता अर्जित कर लेगा ।

प्र. – क्या यह बताएंगे कि यह मेलकर्ता–पद्धति कितनी पुरानी है ? तथा उसके रचयिता के संबंध में साधारण जानकारी कहां प्राप्त होगी ?

उ. – मेरी यह मान्यता है कि यह रचना १५–१६–वीं शताब्दी की होगी । मैंने यह सुना है कि गोविन्द दीक्षित के संप्रदाय में व्यंकटमखी नामक शिष्य हुए, यह उनकी रचना है । इसमें शंका नहीं की यह रचना उत्तम है । आपको सुब्राम दीक्षित की पुस्तक में इस विषय पर जानकारी मिलेगी । गोविन्द दीक्षित तंजौर के ही थे । सुब्राम दीक्षित ने अपनी पुस्तक में संस्कृत श्लोकों सहित राग बताये है । वह पुस्तक तेलगू–लिपि में है ।

इतने वार्तालाप के उपरान्त मैंने कहा कि मेरा प्रयत्न भिन्न दिशा में होने के कारण और आपके द्वारा तो संस्कृत–संगीत की एकदम उपेक्षा कर देने के कारण हमारे बीच चर्चा का समान आधार बहुत क्षीण हैं । आपके कहे अनुसार इस प्रदेश में मुझे अपेक्षित जानकारी प्राप्त होने की संभावना बहुत कम दिखती है । परन्तु मेरे मन में इस प्रान्त के सभी संगीत–प्रसिद्ध स्थानों में व्यक्तिगत् रुप से जाकर वास्तविकता के

विषय में समाधान कर लेने की इच्छा है। मेलकर्ता की पद्धति सुन्दर है और इस विषय की जानकारी प्राप्त करना भी सहज सुलभ है। चिन्नास्वामी मुदलियार ने अपनी "ओरियन्टल म्यूजिक" नामक पुस्तक में अच्छी तरह से बतायी है व मद्रास के शिंगराचार्य ने भी अपनी छोटी सी पुस्तक में लिखी है। वे राग कान को कैसे लगते हैं, उनके गमक कैसे व किन-किन नामों से प्रसिद्ध हैं, उन रागों को गाते समय कैसे व कहां-कहां ठहरते है केवल यही देखना है। मेरा ऐसा प्रयत्न है कि चूँकि आपके यहाँ के सैकडों राग उनके ग्रंथ प्रसिद्ध नामों में ही है तो फिर ग्रन्थों के रागों व आपके रागों के स्वरुप में क्या-क्या साम्य व क्या क्या अन्तर हुआ है इसका शोध किया जाय तथा वह क्यों और कैसे-कैसे हुआ इसका विचार किया जाय। वर्तमान स्वरुप ग्रन्थगत रुपों से मिलते है कि नहीं यह भी देखा जाय। परन्तु अब आपसे इस विषय पर बोलना संभव नहीं है।

नागोजीवराव ने कहा कि उनके मन में एक महत्वपूर्ण खोज करने की इच्छा है जिसे वे संक्षेप में मुझे समझा रहे है। हमारी पद्धति में प्रत्येक राग के आरोह-अवरोह स्पष्ट रुप से लिखे हुए है। यद्यपि यह आरोह-अवरोह लिखे हुए हैं, तथापि केवल आरोह अथवा अवरोह करने मात्र से राग का स्वरुप आपके समक्ष भली भांति साकार खड़ा नहीं होता। उसमें कहीं कहीं ठहरना पड़ता है। कुछ स्वर-समूह एक दूसरे के कुछ दूरी पर एक दूसरे के समान ही दिखते है। यह बातें देखकर मैंने विचार किया कि इस प्रकार के कृत्यों को कहीं न कहीं शास्त्रीय कारण होना चाहिये। दो चतुष्कों [टेट्रा कार्ड] में हम कभी-कभी एक से कृत्य करते है। अत: अमुक स्वरों का अमुक स्वरों से कोई संवादात्मक संबंध है कि नहीं यह शोध किया जाये। इस प्रकार, वर्तमान में स्थान-स्थान पर क्यों ठहरते हैं यह समझ में आवेगा तथा उनके नियम भी निश्चित करते बनेगा। मैं अभी तक यह मानकर चल रहा हूँ कि पूर्व में भी किसी प्रकार के संगीत का प्रचलन रहा ही होगा। तथा "सरवाइवल आफ दि फिटेस्ट" इस नियम के अनुसार जो राग प्रचार में पाए गये वे किसी पंडित ने, फिर वे गोविन्द दीक्षित हों या "मरवी" (व्यंकट) हों, इस सुन्दर रीति से वर्गीकृत कर दिये तथा इसी कारण वे आज तक सुरक्षित रखे जा सके। यह मेरी पक्ष-प्रतिज्ञा (हाईपोथिसिस) है। बाद में मैंने यह तर्क किया कि आरोह-अवरोह के रुप में इनके जो स्वरुप रहे हैं वे भी किसी सिद्धान्त के आधार से निश्चित किये होंगे। इसके बाद स्वरों के रचना-चातुर्य की ओर ध्यान दिया गया। एक-एक राग में ऊपर जाते समय व नीचे लौटते समय कहाँ कहाँ रूकना पड़ता है, किस स्वर पर लम्बा विश्राम होता है, कहाँ जल्दी करनी पड़ती है, यह अच्छी तरह से ध्यान पूर्वक देखने लगा। इस प्रकार देखने से मुझे यह समझ में आने लगा कि जिन दो स्वरों में ८ या ६ सेमीटोन्स का अन्तर रहता है वे परस्पर संवादात्मक दिखते है। यह उदाहरण से समझ में

K

आयेगा। वह ऐसे :- ग म ग और ध नी ध यह एक समान है कारण "ध" यह "ग"

K T T

से ६ सेमीटोन्स की दूरी पर है। "नी" यह "म" के उसी प्रमाण में है। पुन: "ग" यह

T T

स्वर "नी" के साथ संवाद करेगा, कारण यह अन्तर ६ "सेमीटोन्स" का है। सभी आरोह-अवरोह राग गाते समय सुने गये तो उनके विभिन्न स्वर समूह इस सिद्धान्त के अनुसार एक दूसरे से मुक्त रखे जाते हैं। एक दो रागों में ऐसे स्वर समूह देखकर यह विचार किया कि एकदम "सरेगम पधनी" ऐसा किसी एक समान वेग से स्वरों का आरोह करने से राग नहीं होता तथा उसे ही नियमित टुकड़े करके, नियमित स्थानों पर रुकने से, राग पहिचानने योग्य बनता है। इसका तत्व क्या है? इसे खोजते-खोजते मुझे ऐसा लगा कि एक के बाद एक ऐसा रुकने से स्वर समूह की रचना बहुत कुछ एक सी, तथा नीचे के स्वर समूह से नियमित प्रमाण की बन जाती है। यह प्रमाण ८ सेमीटोन्स तथा ६ सेमीटोन्स का प्रतीत होगा। इस तत्व से राग खोजने का प्रयास साधार होगा। ऐसा मुझे लगा। मैं अब इसकी सहायता से सभी प्रचलित रागों की जांच पड़ताल करके देखने वाला हूँ। तथा एक नोट बुक में अपना अनुभव लिख रखता हूँ। इस विषय का दिग्दर्शन मैंने सहस्त्रबुद्धे को पत्र द्वारा कराया है। परन्तु उनकी ओर से मुझे लिख कर नहीं आया।

मैंने कहा कि क्या आपने अपने शोध में संस्कृत वादी संवादी के नियम लगाकर देखा है? कारण अपने ग्रंथों में वादी संवादी में स्वरों का संबंध इसी प्रकार का बताया है। मुझे लगता है कि यदि अपने सिद्धान्त में वह नियम सम्मिलित कर लें, तो उसके मनोरंजक परिणाम होंगे। उन्होंने उत्तर दिया कि यह वादी-संवादी क्या है, उन्हें मुझे समझा दीजिये। मैंने वैसा किया। उस पर वे बोले कि हमारे इन ग्रंथकारों ने वादी-संवादी के नियम का अनुसरण भले ही किया हो तो भी मेरा यह मौलिक तर्क है। (सूचना-नागोजीवराव यह पहिले ही कह चुके थे कि उन्होंने संस्कृत ग्रंथों को देखकर निरूपयोगी होने के कारण छोड़ दिया है।

मैंने कहा कि दुर्भाग्य से हमारे यहां आरोह-अवरोह के संबंध में बहुत गड़बड़ है तथा यहां की तरह सुबोध व सुयोग्य वर्गीकरण नहीं है। अतएव यह सिद्धान्त हमारी वहां की पद्धति के लिये कहां तक उपयोगी होगा, यह मैं खोजकर देखूंगा तथा आपको लिखकर सूचित करूंगा। तब तक आपकी इस धारणा पर कोई मत प्रकट नहीं करूंगा।

श्री नागोजीवराव – मुझे मौलिक होने का श्रेय नहीं चाहिये।

मैं एक तर्क के अनुसार कार्य कर रहा हूँ। बहुतांश यहां ग्रंथों से अनभिज्ञ होने के कारण उनकी जानकारी देने वाले मुझे कोई नहीं मिले। ऐसा होता तो तर्क अधिक किया जा सकता था।

मैंने कहा कि आपको फुरसत हो और आपत्ति न हो तो महत्वपूर्ण ग्रंथों के भाग मैं समझा सकूंगा। मुझे लगता है कि एक बार वे आपको समझ में आ गये तो आप अपने साधनों की सहायता से उनका प्रचुर उपयोग कर सकेंगे।

ना. – मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। आप मूल स्वर सप्तक कौन सा मानते हैं ?

मैं – "परिजात" के प्रमाण से "करहर प्रिया" कहता हूं।

ना. – देखो, (अपने लिपिक से) मैंने अमुक व्यक्ति को जो उत्तर दिया था वह एकदम ठीक निकला। मैंने ग्रंथ को न पढ़ने पर भी मात्र तर्क से वह ताड़ लिया था। अच्छा यह कागज पर समझायेंगे तो अच्छा रहेगा। (मैंने श्रुतियों को लिखकर उसे समझाया) अब वह मुझे समझ में आ गया। ऐसा प्रतीत होता है कि अपने सिद्धांत में इसका बहुत उपयोग हो सकेगा। आपकी मूर्छनाएं मुझे समझाइये। (इसे भी समझाया तथा कैसे योरोपीय संगीत के समीप है यह समझाया। उसकी विशेषता समझाई) यह विषय हमारे यहां किसी को नहीं समझता। हमारे यहाँ प्रायोगिक व्यक्ति हैं– वे गाने-बजाने में अच्छे हैं। परन्तु उनको शास्त्र नहीं मालूम। काम चलाने भर मालुम है। उन्हें आपको सुनवाऊंगा उनमें से एक अच्छा व्यक्ति परसों सोमवार (ता. २८ नवम्बर) को आने वाला है। उसका कहना है कि उसने इस विषय की कुछ संस्कृत पुस्तक पढ़ी है।

मैं – बहुत अच्छा है। उनके संभाषण का योग प्राप्त होने से मुझे बहुत लाभ होगा। मेरा मत ऐसा है कि पहिले के ग्रंथ न पढ़कर उन्हें व्यर्थ का ठहराने की अपेक्षा उन्हें पढ़ लेना अधिक लाभप्रद होगा। आप सभी जानते हैं कि ग्रंथों का संगीत अब नहीं है। न हो, परन्तु वह ऐसा था, व अब ऐसा है, यह निश्चित करना क्या बुरा है ?

ना. – आपका प्रयास बहुत प्रशंसनीय है। मुझे इतना समय नहीं है। आपके हिन्दुस्तानी रागों के आरोह-अवरोह व स्वरूप मुझे मिलें तो मैं अपना सिद्धांत उससे मिलाकर देखूंगा।

मैं – मैं घर जाकर, फुरसत से कागज पर लिखकर भेज दूंगा तथा उसके उपरांत आप उस विषय के उचित अनुचित जानकारी लिखेंगे।

ना. – यहाँ आपको मेरी कहां-कहां मदद चाहिये सो बतावें। यदि आप कहें तो आपके ठहरने की व्यवस्था भी करूंगा। आगे के प्रवास हेतु मित्रों को पत्र दूंगा। आप जब तक यहां हैं तब तक इस विषय पर बोलते रहेंगे।

में – धन्यवाद। मेरी सभी व्यवस्था है। आगे आवश्यकता होने पर पत्र लिखूंगा।

रविवार : २७-११-१९०४

आज दोपहर (२७-११) ढाई बजे, नागोजीराव इन्सपेक्टर डाक बंगले पर आये। तथा आन्दोलनों के अनुपात की दृष्टि से हिन्दू स्वर सप्तक सही है कि नहीं यह देखने लगे। यह विचार शास्त्रीय दृष्टि से ठीक है परन्तु संस्कृत पुस्तकों में नहीं किया गया है। अतवए मैंने उनसे कहा कि गणितीय गणना के अनुसार मैंने सप्तकों की योग्य-योग्यता को नहीं देखा है। परन्तु तंजौर की एक पुस्तक में योरोप के एक विद्वान ने लिखा है। वह पुस्तक मैं आपके पास भेज दूंगा तथा वैसा करने वाला हूं।

गोपालराव वकील से चर्चा –

आज सायंकाल गोपालराव वकील के एक मित्र के यहाँ हरिकीर्तन के निमंत्रण में, गया। कीर्तन एकदम अपने यहां के ढंग के अनुसार था। जैसे अपने हरिदास पहिले "आदौ महाराज प्रथमारंभी" इस प्रकार के निश्चित किये हुए स्वरों से प्रारंभ करते है, वैसे ही यहां भी करते हैं। इतना ही नहीं आर्या, दिंडी, पद, अभंग, कटाव, सभी अपने ही रागों में गाते है। यह सुनकर मैंने गोपालराव से पूछा कि क्या यह राग आपके यहां पहिले से ही प्रसिद्ध है ? उन्होंने कहा कि इनमें से कुछ–कुछ आपके यहां से लेकर पिछले दस–पाँच वर्ष से उपयोग में आने लगे है। परन्तु वे, हमारे रागों की अपेक्षा, कुछ लोगों में अधिक पसंद आने लगे है। यह बात सुनकर समाधान हुआ तथा यह लगा कि अब इन दोनों संगीतों के मिलन की संभावना बहुत समीप आ गई है। हमारे यहां की गायन विधि अशास्त्रीय, अप्रिय एवं बचकानी मानने वाले अब, उसे अच्छा समझकर अपने संगीत में सम्मिलित कर रहे है। फिर भी हमारे यहां की "मींड" अभी तक यहां नहीं आई। तथा "तान" लेने की रीति भी आनी चाहिए। मैंने अब यहां एक ऐसा यत्न करने का निश्चय किया है कि अपने घर पर तंबूरा हाथ में लेकर कुछ हिन्दुस्तानी रागों के स्वरुप गाकर दिखाना तथा यहां के गायकों को उनके दक्षिण नाम बताने को कहना तथा उनको इस प्रकार की इजाजत देना कि जो भाग उनके राग के बाहर का दिखता हो उसकी ओर वे मेरा ध्यान आकृष्ट करें। बाद में, पुस्तकों में आरोह-अवरोह देखना। इन रागों को दिखाते समय, भिन्न-भिन्न "श्रुति" का व्यवहार करना तथा अपने यहां के भिन्न "मींड", "गमक" भी दिखाना। यह देखना है कि उसमें से इन्हें क्या पसंद आता है।

नागोजीराव चर्चा के निष्कर्ष–

श्री नागोजीराव अत्यन्त बुद्धिमान व उद्योगी सज्जन है। जैसे अपने यहां "धारपुरे" है वैसे ही ये है, ऐसा कहने में कोई संकोच नहीं। वे बड़े अधिकार संपन्न व्यक्ति है फिर भी अपने अन्य सरकारी काम को संभालते हुए अपनी रूचि के विषय पर बहुत विचार करते है। उन्होंने एक–दो सूचनाएं बड़ी चमत्कारिक दीं। वे कहते हैं कि उन्होंने पुस्तकों की सहायता के बिना ही ८ सेमीटोंस तथा ६ सेमीटोंस के अंतर पर स्वरों के परस्पर संबंध का शोध किया है। आज ही उनका एक पत्र आया है। उसमें वे कहते हैं कि अपने पूर्वज ग्रंथकारों ने वादी संवादी से राग के स्थापित संबंध को देखा तथा लिख लिया। यह बात स्वीकार है। परन्तु वादी संवादी के अनुसार अनुवादी स्वर किस प्रमाण मे लिये जाय यह भर स्पष्ट नहीं हुआ है। उस संबंध में उन्होंने कोई विचार भी नहीं किया है। हम जानते हैं कि रागों में तीन प्रकार के स्वर अवश्य आते हैं। परंतु वादी संवादी के प्रमाण और उनके अंतर बताकर अनुवादी स्वरों को चाहे जैसा बढ़ाते रहने से गायन सुशोभित होगा ही ऐसा निश्चित नहीं है। अतएव इस संबंध में भी कोई नियम बना देना आवश्यक था। उनका कहना है कि यह अनुवादी का नियम उनके सिद्धांत द्वारा स्पष्ट होना संभव है तथा उस प्रकरण पर उन्हें एक नवीन कल्पना सूझी है। मुझे लगता है यह कल्पना विचार करने योग्य है। अपने नियम के अनुसार राग के लिये ५ स्वर आवश्यक होते हैं। अतएव यह ठीक है कि मात्र दो स्वर कह कर रूका न जाय। रत्नाकर में अनुवादी स्वरों के संबंध

की टीका इतनी अपूर्ण है कि वह वस्तुस्थिति के अनुरूप समझ लेना संभव नहीं है। ग्रंथकारों ने इस विषय पर एकदम विचार नहीं किया था ऐसा नहीं कहा जा सकता। परन्तु यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि नियम स्पष्ट नहीं लिखें। नागोजीराव कहते हैं कि अनुवादी स्वर वादी से तीसरा होगा तथा वादी एवं अनुवादी का अंतर सा से ग अथवा सा से ग इतना होगा। वे कहते हैं, कि उनके शास्त्र के प्रमाण से प्रत्येक राग में आरोह-अवरोह करते समय जो स्थान-स्थान पर विश्रांति करनी पड़ती हैं, उसका रहस्य ज्ञात होते ही उसका स्पष्टीकरण हो सकेगा। उनका कहना यह है कि योरोपीय "हार्मनी के शास्त्र से उनका शास्त्र मेल खाता है। यह बात उनके पुष्टीकरण हेतु ही है। मुझे खेद है कि मैंने हार्मनी अभी तक नहीं सीखी। परन्तु फादर सीथर की मदद से मैं इस भाग पर विचार करने वाला हूं। इस प्रकार का नियम यदि सचमुच लागू हो सका तो मुझे लगता है कि वह अति उपयोगी होगा तथा उसके आधार से आज के संगीत की अनेकों शंकाओं का निराकरण होगा। स्पष्टतः हम भी यह चाहते हैं कि अपने गायन में किसी प्रमाण में इस प्रकार का नियम बनें। जैसे एकआद राग गाते समय हम लोग विभिन्न तथापि नियमित स्थानों पर विश्रांति (पाज) करते हैं एवं इन विश्रान्तियों (पाजों) के योग से "रागत्व" संपादित कर लेते हैं। अतः यह सहज में समझ में आवेगा कि ऐसी स्थिति में विश्रान्ति के नियम रहते हैं। केवल उनकी व्याख्या भर नहीं रहती। यदि नागोजीराव के बताए हुए नियम लग सकें तथा वे प्रत्येक राग में लग सके तो सही अर्थ में वह एक नवीन शोध होगा। मुझे लगता है कि इस विषय पर उनसे अधिक बोलकर, चर्चाकर रागों में वे नियम प्रत्यक्ष लगाकर देखना ठीक होगा। उन्होंने २८ तारीख को प्रातः बुलाया ही है तथा मैं जाने वाला भी हूं। मुझे लगता है कि हमारे हिन्दुस्तानी गायन में आरोह-अवरोह में जो घोटाला है उसमें भी कुछ सुधार हो सकता है। नागोजीराव स्वयं प्रायोगिक गायक नहीं है। फिर भी उन्होंने इतना विचार किया है, तथा वह भी बहुत कुछ नया किया है यह बात प्रशंसा करने योग्य है। एक भय लगता है कि कहीं नागोजीराव ने यह तो नहीं समझ लिया कि प्रत्येक राग में मात्र एक ही अनुवादी होना चाहिए।

२६ नवंबर प्रातः ८ बजे

नागोजीराव से भेंट हुई। उन्होंने अपना प्राचीन स्वर सप्तक अर्थात् 'मायामालवगौड" (भैरव) ही निश्चित ठहराने का सोच लिया था। पहुंचते ही, वे आवेश में आकर बोलने लगे कि, उन्होंने संपूर्ण रहस्य ढूंड लिया है। हमारा प्राचीन स्वर सप्तक ग्रंथों का ही है। उन्होंने एक बार "मायामालवगौड" की २२ श्रुतियों का चित्र बनाकर सूक्ष्म चर्चा की तथा बाद में यह स्वीकार किया कि वह ऐसा नहीं है। उन्होंने अपने पास सुब्राम दीक्षित की तेलगू पुस्तक रख ली थी तथा उसकी सहायता से वे यह कल्पना खड़ी कर रहे थे। वह उन्होंने मुझे दिखायी। मैंने देखा तो "च्युत सा" व "च्युत म" इसके स्थान पर" काकली नी "व" "अन्तर "ग" दिखे। यह देखते बराबर मैंने कहा कि यह स्थान 'रत्नाकर" ग्रंथ के नहीं है। आगे चर्चा होने पर प्रतीत हुआ कि सुब्राम दीक्षित के वे स्थान गलत है। कम से कम यह तो निश्चित हुआ कि वह अत्यन्त प्राचीन संस्कृत स्वर सप्तक नहीं है। चर्चा आगे बढ़ी तथा "खरहरप्रिया" पर ही बात आकर टिक गई। वे बोले कि अनुपात (रेशियो) के नियम से शोध कर वे मुझे बतावेंगे। मैंने कहा ठीक है।

परन्तु यह शोध करने में आपका उद्देश्य क्या सिद्ध करना है ? वे बोले कि पहिले का स्वर-सप्तक निरूपयोगी ठहराना है। अपने मत के अनुसार उन्होंने गणना कर मेरे लिए दोपहर में कागज लिखा वह यह अप्राप्य (पत्र क्र.-३) हे। ऐसा निश्चित हुआ है कि घर जाकर इस पर विचार कर एक दूसरे का मत, पत्र-व्यवहार द्वारा अवगत कराया जाय।

श्री जगन्नाथ भट्ट गोस्वामी-चर्चा

श्री गोपालराव ने बताया था कि नगर में जो शास्त्र जानने वाले प्रसिद्ध जगन्नाथ भट्ट गोस्वामी है, वे लौट आये है। उनको मेरे पास सायंकाल भेजेंगे। इस अनुसार उन्होंने पत्र भिजवा दिया। उनका कहना यह था कि उनको शास्त्र अर्थात ग्रंथों का कोई ज्ञान नहीं है। रत्नाकर इत्यादि ग्रंथ उन्होंने एकदम नहीं देखे। प्रश्नोत्तर पिछले अनुसार ही हुए। बाद में उन्होंने धीरे से कहा कि यद्यपि यहां उन्हें अच्छा शास्त्रज्ञ समझते हैं परन्तु शास्त्र इत्यादि उनको नहीं आता यह आंतरिक रहस्य वे मुझे अपना बंधु समझ कर कह रहे हैं। मैं प्रायोगिक संगीतकार हूँ। यहां के ढंग का वादन कर उसमें आपके यहां के स्वर लगाता हूं, तथा कुछ "मीड" का कार्य करता हूं (बीनकार) जो लोगों को बहुत पसंद आता है। मैंने पूछा कि वे मींड काम अपने स्वर नियमों के अनुसार करते हैं अथवा हमारे यहां के नियमानुसार ?

उ. - हमारे यहां के। मैं यह समझता हूं कि आपके यहां की अपेक्षा हमारे यहाँ राग का विस्तार अधिक अच्छी तरह होता है।

प्र. - क्या यह सिद्ध करेंगे ? मेरी दृस्टि में, आपके यहां रे एवं ध इन पर खींचतान तथा बीच-बीच में "प" एवं "सा" इन पर दीर्घ विश्रान्त (नमूना दिखाकर) बहुत दिखती है। ऐसा गायन मैं ऊंचे दर्जे का नहीं समझता। यह शीघ्र उबा देने वाला होगा। मेरे पास तंबूरा लाइये मैं आपको अपने यहां के अनुसार राग का विस्तार करके दिखाता हूं। (गाकर दिखाया) उनको जब भांति-भांति से "ध" "रे" "म" "नी" इत्यादि उपयोग कर दिखाये तब वे बहुत प्रसन्न हुये और बोले कि इस तरह यहां कोई नहीं कर सकता। तथा समझकर करने वाला मैं भी पहिला हूं। यह वाद्य से हो सकता है, पर गले से बहुत मुश्किल है।

उ. - मेरे मन में आपके सम्मुख ताऊस (बाल सरस्वती) वादन करने की है। वीणा भी बजाऊंगा। हम लोग दो-एक घंटे मनोरंजन करें। मैंने कहा कि कल आइये। कल सायंकाल का समय निश्चित हुआ है। वे पेटी, बीन एवं ताऊस बजाने वाले हैं।

प्र. - क्या आपके पास मेलकर्त्ता से संबंधित संस्कृत पुस्तकें हैं ? अथवा मृदंग विद्या या ताल विद्या पर कुछ है ?

उ. - हां है। उसे कल दिखाऊंगा। आप लिख लीजिये। मैं आपको पराया एकदम नहीं समझता। जो मुझे आता है वह आप ले सकते हैं।

प्र. – मुझे यहाँ के ७×५=३५ तालों की अच्छी जानकारी चाहिये। वह देंगे क्या ?

उ. – कल निष्कपट रुप से तुरँत समझा दूंगा। चिन्ता मत कीजिये। इसके अतिरिक्त १०८ ताल की प्राचीन पुस्तक मेरे पास है, वह दिखाऊंगा और उसे समझाऊंगा। आपके पास यदि वह (रही तो उसका कुछ अच्छा उपयोग होगा) "तमिल" लोगों को मैंने खुले मन से कभी भी नहीं सिखाया। कारण ये लोग चालाक होते हैं। सीख लेने पर उपकार नहीं मानते। मेरे पास जो ग्रंथ है वह आपके ही हैं।

मैं – ठीक है। उसे कल लाइये। तथा मैं कल अपने नौकर को भेज कर आपके वाद्य मंगवाता हूं। आप आकर उन्हें बजावेंगे तथा उसके उपरान्त मैं तालों को समझूंगा।

उ. – अवश्य आऊंगा। मुझे संस्कृत के कुछ रागों के नमूने दिखाइये ? मैंने "परिजात" सामने रखा तथा उसमें धनाश्री, गौरी आदि दिखाये व सुनाये। वे उन्हें देखकर प्रसन्न हुए व बोले, ये ही स्वरूप सुन्दर व सही लगते है।

मैं – मेरे मन में दक्षिण एवं उत्तर की पद्धतियों का एकीकरण करने की इच्छा है। आपके नियम व आरोह-अवरोह को मुख्य बनाकर उनके अनुसार हिन्दुस्तानी राग-गायन की रीति निश्चित करनी है। मुझे ऐसा लगता है कि इस प्रकार का संगीत बहुत पसंद आवेगा तथा उसको अच्छा शास्त्रीय आधार भी प्राप्त होगा।

उ. – सही है। ऐसा होने से बहुत अच्छा होगा। मैंने ताऊस में इस प्रकार का थोड़ा प्रयोग कर देखा तथा वह यहां पसंद आया।

ताल पर एक स्फुट विचार

तंजौर

३० नवंबर १९०४, प्रातः

यदि यह कहें कि कालगति अनादि है तो अनुचित न होगा इस काल का नाप निश्चित करना तथा अपनी-अपनी आवश्यकतानुरुप उसका व्यवहार मानवीय कृत्य हैं। हम उस ओर ध्यान दें अथवा न दे कालगति अबाधित चल ही रही है। हम अपनी सुविधा के लिये "धीरे, जल्दी" यह शब्द निश्चित करते है। इसके प्रयोग से हम काल को कोई निश्चित गति प्रदान नहीं कर सकते। इस नियमित रुप से चलती हुई "कालगति" से संगीत की दृष्टि से अपना संबंध प्रत्यक्ष रुप से नहीं है तथा उस गति का विचार भी हमको नहीं करना है। प्रत्येक मनुष्य अपने बोलने में, गाने में, चलने में अपनी स्वतंत्र एक समान गति से काल के किसी नियमित प्रमाण को लगाता है। वह अपने शब्द धीरे-धीरे अथवा जल्दी उच्चारित करता है। "धीरे" "जल्दी" यह शब्द सापेक्ष्य है। एक बार यदि हमने "शीघ्रगति" निर्धारित की तो उसको देखकर "धीमीगति"

निश्चित की जा सकती है। यह शब्द निरपेक्ष नहीं है। एक का "जल्दी" दूसरे का "धीरे" हो सकता है। दोनों व्यक्ति इच्छा होने पर एक सी गति से चल बोल सकते है। संगीत में इस "चलने" "बोलने" की गति को 'लय" कहेंगे। अंग्रेजी में इसका अर्थ "स्पीड" होगा। अंग्रेजी संगीत में भी "स्पीड" या "मूवमेन्ट" है ही। कारण "जल्दी" "धीरे" यह शब्द वहां भी आवेंगे। हम कुछ भी बोलना प्रारंभ करें उसके अक्षर एक के बाद एक आकर तथा प्रत्येक अक्षर के उच्चारण में कुछ न कुछ समय लगने से, उस भाषण में एक प्रकार की गति आवेगी। हम कुछ-कुछ अक्षर जल्दी से उच्चारित करते है, यदि दीर्घ हुआ तो जरा सावकाश उच्चारण करते हैं इस प्रकार शब्दों का संबंध काल से स्थापित होता ही है तथा काल की गति को अपने भाषण के शब्दों से किसी न किसी प्रकार के माप की गति लगती है यह सहज समझ में आवेगा। काल के दर्शन में इससे अधिक गहराई में जाने की आवश्यकता नहीं है। यही सब हमारे गायन बादन में भी होता है। हम गायन में अक्षर अथवा नाद एक प्रकार की गति से कहते है। यह साधारण अनुभव है कि उसी गति को सावकाश अथवा जल्दी करते हैं। इस गति का एक प्रकार का माप अथवा माप का कोष्टक स्वीकार किया जाता हैं। अंग्रेजी संगीत में 'क्रेवर' इत्यादि माने गये है। अपने संगीत में एक ऐसा ही कोष्टक स्वीकार किया हुआ है। वह इस प्रकार है :-

८	कण (क्षण)	=	१ लव
८	लव	=	१ काष्टा
८	काष्टा	=	१ निमिष
८	निमिष	=	१ कला
४	कला	=	१ अनुद्रुत
२	अनुद्रुत	=	१ द्रुत
२	द्रुत	=	१ लघु
२	लघु	=	१ गुरू
३	लघु	=	१ प्लुत
४	लघु	=	१ काकपद

श्री मुदलियार की ओरियन्टल म्यूजिक से उद्धृत कालगणना विषयक तुलनात्मक सारिणी –

अक्षर	भारतीय नाम	पाश्चात्य संकेत	मात्रा
$\frac{१}{३२}$	५१२ कण ५ (क्षण)		$\frac{१}{१२८}$
$\frac{१}{१६}$	१२८ लव		$\frac{१}{६४}$
$\frac{१}{८}$	३२ काष्टा	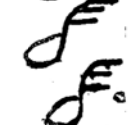	$\frac{१}{३२}$
$\frac{१}{४}$	८ निमिष	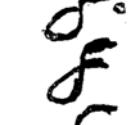	$\frac{१}{१६}$
$\frac{१}{२}$	२ कला		$\frac{१}{८}$
१	अणुद्रुत		$\frac{१}{४}$
२	द्रुत		$\frac{१}{२}$
३	द्रुतविराम		$\frac{३}{४}$
४	लघु	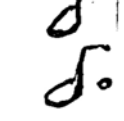	१
५	लघुविराम	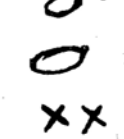	$१\frac{१}{४}$
६	लघुद्रुत	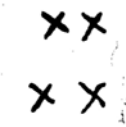	$१\frac{१}{२}$
७	लघुद्रुत विरा	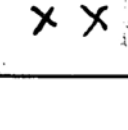	$१\frac{३}{४}$
८	गुरू		२
१२	प्लुत	× ×	× ३
१६	काकपद	× ×	४

यह कोष्टक एकदम छोटे अर्थात अति द्रुत प्रमाण से अति विलंबित प्रमाण तक का है। अपने बोलने में प्रयुक्त होने वाले शब्द अतिद्रुत कहने से उसका एक-एक अक्षर "कण" की भांति जल्दी-जल्दी बोलना पड़ेगा। "कण" की आदि कालीन कल्पना स्पष्ट रुप से लोगों ने इस प्रकार कर रखी है कि १०० कमल पत्र (पंखुडी) एक के ऊपर एक रखकर, उसके आर पार सुई भोंकने में जो समय लगेगा वह "कण" हुआ। यह स्पष्ट है कि यह मात्र काल्पनिक हैं। इतने सूक्ष्म प्रमाण की इकाई गायन वादन में प्रयुक्त नहीं होती। परन्तु कागज पर कोष्टक बनाकर रखा गया है। आज प्रचार में से किसी एक आवश्यक सूचक प्रमाण को शीघ्र गति समझकर दूसरे कोष्टक माने जाते हैं वह इस कारण कि अक्षर अत्यन्त शीघ्र उच्चरण किये गये तो उस प्रत्येक अक्षर-काल को "अणुद्रुत" नाम देंगे तथा उस इकाई की कल्पना कर हम आगे के कोष्टक का उपयोग कर सकते है। अणुद्रुत से भी न्यूनतम प्रमाण न लेने में क्या आपत्ति हो सकती है? अतः शीघ्र अक्षर का काल "अणुद्रुत" मान लेते है। दो अक्षर कहने में जितना ठहरेंगे वह "द्रुत" होगा। प्रचार में केवल इतने ही शब्द है।

अणुद्रुत	=	१ अक्षर	$\frac{1}{4}$ मात्रा	सूचना – एक मात्रा में दो अक्षर और एक अक्षर में आधी ($\frac{1}{2}$) मात्रा होती है।
द्रुत	=	२ अक्षर	$\frac{1}{2}$ मात्रा	
लघु	=	४ अक्षर	१ मात्रा	
गुरु	=	८ अक्षर	२ मात्रा	
प्लुत	=	१२ अक्षर	३ मात्रा	
काकपद	=	१६ अक्षर	४ मात्रा	

यह माप केवल कागज पर पढ़ने मात्र से पाठक को भय लगने लगता है तथा वह सोच बैठता है कि यह विषय बहुत क्लिष्ट एवं कष्टदायक है। परन्तु ऐसा नहीं है। प्रत्यक्ष करके देखने पर किसी छोटे से बालक को भी यह सब एक मिनट में समझ में आ जावेगा। "क" यह साधारण लम्बा अक्षर पहिले कहा जाय। इसी समय में २ अक्षर "कक" कहे जाय। पुनः उसी समय में "क क क क" ४ अक्षर कहे जाय। यदि "क" अक्षर को एक सेकेन्ड माने और उसी समय में ४ अक्षर कहें तो प्रत्येक अक्षर को क्या $\frac{1}{4}$ सेकेन्ड नहीं लगेंगे? अब एक सेकेन्ड को एक "लघु" कहा तो $\frac{1}{4}$ सेकेन्ड में कहे गये अक्षर का काल 'द्रुत' होगा तथा $\frac{1}{4}$ सेकेन्ड के अक्षर का काल "अणु-द्रुत" होगा। यह सहज ही समझने योग्य हैं। मुख्य इकाई (यूनिट) निश्चित हुई कि शेष सभी माप अपने आप निश्चित हो ही जाते है। दक्षिण में मुख्य ताल ७ मानकर इनमें से प्रत्येक की ५ जाति मानी गई है। इस रीति से ७ × ५ = ३५ मुख्य ताल माने गये है। किंतु कदापि मत समझिये कि मुख्य ७ ताल इन ३५ के अतिरिक्त हैं। ऐसा आभास प्रथम दर्शन में होना स्वाभाविक है कि यह ३५ ताल कठिन हैं। परन्तु वे अच्छी तरह समझ लेने पर आसान हो जावेंगे। प्रत्येक ताल का एक प्रकार का अंग मानते हैं। अंग अर्थात वह ताल कितने लघु-गुरू से दिखाया जाता है। यह अंग केवल चिन्हों से दिखाया जाता है। लघु-गुरू इनके चिन्ह निश्चित किये गये हैं। इनके अनुसार तालों के अंग लिखे रहते हैं। जैसे ।०।। यह ध्रुवताल के चिन्ह (अंग) में खड़ी रेखा

अर्थात लघु तथा शून्य अर्थात "द्रुत" । इसमें ध्रुवताल में प्रथम "लघु" बाद में "द्रुत" फिर दो लघु इस प्रकार निश्चित किया हैं । तालों में यह निशानी जितनी होंगी उसके अनुसार उसके नाम बदलेंगे, परन्तु जितने निशान होंगे उसके अनुसार ताल के इतने आघात होंगे, ऐसा समझिये । जैसे ध्रुव ताल में चार निशान है तो ४ आघात देने होंगे । इसके उपरान्त यह देखना है कि यह कितनी मात्रा का ताल हैं । तालों की अनेक जातियां करने से गायन में बैचित्र्य उत्पन्न होता है, यह समझने योग्य है । मात्रा संख्या यद्यपि एक सी रही तो भी आघात अलग-अलग स्थानों पर पड़ने से स्वररचना भांति-भांति की होकर एक विलक्षण प्रकार का आनंद उत्पन्न होता हैं, यह थोड़े से अभ्यास से समझ में आता है । इस प्रकार का एक नियम बनाया है कि ताल की ५ जातियां होती है इन्हें बाद में बताऊंगा । मुख्य ताल ७ माने है जो इस प्रकार है (१) ध्रुवताल (२) मठ्य (३) रूपक (४) झंप (५) अठ (६) एकताल (७) आदिताल । लघु-गुरू की सहायता से, चिन्हों में ताल लिखे जाते हैं । इन चिन्हों को ही ताल के अंग कहते है । इन चिन्हों में सबसे महत्वपूर्ण चिन्ह "लघु" माना गया है "लघु" की मात्राएं नियमित मानकर ताल के प्रकार बदल सकते है । ध्रुव का अंग ।०।। इस प्रकार लिखा ही हुआ है । अब "लघु" का मात्राकाल ४ समझेंगे । द्रुत अणुद्रुत इनकी मात्राएं कभी नहीं बदलगी । ऐसा करने से ४+२+४+४=१४ मात्राएं हुई । अर्थात इस प्रकार "लघु" का मूल्य ४ मात्रा मानने से यह ताल "चतुस्त्र जाति ध्रुवताल कहा जावेगा । पुनः लघु का मूल्य३मात्रा मानने से ध्रुवताल का स्वरूप ३+२+३+३=११ मात्रा होगा । यह ताल एकदम भिन्न ही लगेगा । अब लघु ३ मात्रा का होने के कारण इस ताल को "तिस्त्र जाति ध्रुव" कहते है । लघु की कीमत ७ मात्रा मानने पर "मिश्रजाति ध्रुव होगा । ५ मात्रा मानने पर 'खंड जाति ध्रुव" होगा । तथा ९ मानने पर संकीर्ण जाति ध्रुव" होता है । इस प्रकार एक ध्रुवताल की ५ जातियां बनाई गई ।

मुख्य ७ ताल तथा प्रत्येक की ऊपर लिखे अनुसार लघु का मूल्य बदलने से ५ जातियां तथा उनसे बने ३५ ताल व उनके नाम जो निम्नानुसार है :-

ताल	अंग	चतुस्त्र	तिस्त्र	मिश्र	खंड	संकीर्ण
मठ्य	।०।	सम ताल	सार	उदीर्ण	उदय	शव
		मात्रा ।०	८	।६	।२	२०
रुपक	।०	पत्ति	चक्र	कुल	राज	विदु
		६	५	९	७	।।
झंप	।U०	मधुर	कदंब	सुर	धण	कर
		७	६	।०	८	।२
त्रिपुट	।००	आदि	शंख	लील	दुष्कर	भांग
		८	७	।।	९	।३
अठ	।।००	लेख	गुप्त	लोय	विख	धीर
		।२	।०	८	।४	२२
एक	।	भान	शुध	राग	रति	वसु
		४	३	७	५	९

जगन्नाथ पंत की नोट बुक – १ दिसम्बर १९०४

कहने के अनुसार आज जगन्नाथ पंत भट गोस्वामी ने अपनी छोटी सी एक नोट बुक भिजवा दी। उसे खोलकर देखने से, यह ज्ञात हुआ कि, उसमें विभिन्न स्थानों से चुने हुए छोटे-छोटे उद्धरण लिख रखे हैं। रत्नाकर से "नाद" का श्लोक, राग आदि की व्याख्या जो इस के प्रथम अध्याय में कही गयीं है ऐसी फुटकर बातें हूबहूँ उतार ली गई है। लगता है कि लेखक का उद्देश्य कदाचित यह होगा कि ऐसा प्रतीत हो कि उन्होंने संगीत शास्त्र का अध्ययन किया है। उसमें गायन कब कैसे गाया जाय, इस संबंध के श्लोक मुझे पसंद आये तथा उन्हें उतार लेने वाला हूँ। इस पुस्तक में दूसरा भाग जो मुझे उपयोगी लगा वह है यहां के ७२ मेलों के संस्कृत श्लोक, आरोह वरोह, जन्यरागों के नाम व परिचय। यह सब उतार कर रख लिया है। मुझे यह सुनने में आया है कि ये मेल "चतुर्दण्डि प्रकाशिका" इस नाम के ग्रन्थ के आधार पर किये गये हैं। ऐसा कहते है कि इस पुस्तक में कम से कम यह सब लिखा हुआ है। ऐसा लगता है कि यह पुस्तक शीघ्र मिलना अभी तो दुष्कर है। ऐसा कहते है कि वह इटैय्यापुरम् के दीक्षित के पास है। कुछ लोगों ने यह भी कहा कि उन्होंने यहां के पुस्तकालय से उसे हथिया लिया है। यह बात सच है कि यहां के पुस्तकालय में एक पुराने "केटालाग" में उसका नाम है परन्तु नये में नहीं है। मैं दीक्षित से प्रत्यक्ष भेंट करने वाला हूँ। देखें, क्या परिणाम होता है। यह श्लोक दीक्षित ने अपनी नवीन तेलगू पुस्तक में छापा है, ऐसा कहते हैं। वह पुस्तक मैं खरीदने वाला हूँ।

तंजौर में उत्तर–दक्षिण का आस्वाद –

मुझे ऐसा लगता है कि ये श्लोक अतयन्त उपयोगी होंगे। उसमें रागों के मेल, वर्ज्यावर्ज्य इत्यादि सबकी जानकारी है। अपने हिन्दुस्तानी गायकों को यह जानकारी प्रदान कर उनसे नये–नये राग तैयार करवाने वाला हूँ। ऐसा लगता है कि गायन की हिन्दुस्तानी पद्धति तथा दक्षिण के नियमों से एक विलक्षण संगीत उत्पन्न होगा। यदि यह मेल यहां सभी को ज्ञात हैं तो भी उन पर हिन्दुस्तानी पोशाख चढ़ने से बड़ी शोभा आवेगी तथा यहाँ के लोगों को भी उनके कथनानुसार वे मनोरंजक लगेंगे। यहां मेरा अनुभव यह आया है कि हिन्दुस्तानी गमक व तान यहां के लोगों को बहुत पसंद आने लगी है। अतएव इन दोनों संगीतों के मिलन से एक चमत्कारिक प्रकार उत्पन्न होगा। उतर में गायकों को नयी–नयी रचना करने का उत्साह रहता है परन्तु बेचारों को मूल शास्त्रों के वाक्यों का आधार न होने के कारण, कुछ नवीन करने पर उसे नवीन कह सकने का साहस नहीं होता। यदि उन लोगों को इन श्लोकों में कुछ नियम मिल जायें तो मुझे लगता है, वे नवीन रचना बड़ी कुशलता से कर सकेंगे। यहां आकर इस प्रकार का गायन यहां के आरोह–अवरोह से करने पर यहां के लोगों का मुंह भी बन्द होगा। पहिले भाषा का अन्तर कहा जावेगा परन्तु उसकी मिठास लग जाने पर वही रंग यहां भी चढ़ेगा इसमें शंका नहीं। इससे संगीत का बहुत लाभ होगा। इसका प्रयोग कर देखने की मेरी इच्छा है। तथा सौभाग्य से "गायन उत्तेजक मंडली" के गायक हमारे कहे अनुसार अमल करने वाले हैं। उनसे धीरे–धीरे यह रचना करवा कर देखूंगा कि वह उनके शिष्य वर्ग द्वारा नगर में प्रसिद्ध हो। अच्छी आवाज से गाने पर तथा विशेष रूप से महिलाओं की

आवाज में गाये जाने पर राग शीघ्र ही रूचिकर होंगे । यहां के लोगों में "स र ग म" की पद्धति अधिक होने के कारण यहां वे राग उनके आरोह–अवरोह के प्रमाण में आये बिना ग्राह्य नहीं होंगे यह स्पष्ट है । यहां की तान लेने की रीति सादी, सरल तथा मुख्य रूप से सदैव मात्राओं के साथ गुंथी हुई रहती है । इससे गायक की स्वतंत्रत शैली प्रगट होना स्वाभाविक है । मैं मद्रास में, निराश हो गया था परन्तु तंजौर नगर में मुझे बड़ा आनंद हुआ, यह कह सकता हूं । कि यहां मराठी लोग बहुत हैं । महाराष्ट्र ब्राम्हणों के घर लगभग तीन–चार सौ हैं, ऐसा सुनते हैं । मैं महाराष्ट्र ब्राम्हण होने के नाते यहां के लोगों ने मुझे अपना समझ मेरे लिए जितनी सुविधा हो सकती थी उतनी प्रदान की । उनका कहना ऐसा दिखा कि मैं महाराष्ट्र देश का हूं जो पारस्परिक प्रेम बन्धन का कारण हैं । उन्हें जैसे ही यह ज्ञात हुआ कि मैं संगीत शास्त्र का शोधक तथा रसिक हूं उसी समय उन्होंने मुझे यहां के संगीत को सुनाने की सभी प्रकार की योजना बनाई । इस हेतु मैं उनका बड़ा आभारी हूं । तंजौर के प्रसिद्ध वकील श्री गोपालराव अत्यन्त प्रेमी एवं उपकारी सज्जन है । उन्होंने मुझे एक बड़ा रिक्त घर अपने घर के समीप रहने के लिये प्रदान किया । वह घर नगर के मध्य होने के कारण वहां मित्रों को पहुंचने में बड़ी सुविधा हो गई है । यह मुसाफिरी केवल रामेश्वर यात्रा तथा संगीत ज्ञान–इन दो बातों के हेतु करने के कारण यहां के कोर्ट, दरबार देखने की खटपट मैंने एकदम न करने का निश्चय किया है । सारे दिन घर में आने वाले गाने–बजाने वालों की संगति में संगीत विषय की चर्चा करना तथा घर के लोगों को नगर के दर्शनीय स्थल व देवालय दिखाना इतना ही करता रहता हूँ ।

कृष्णराव नाईक–

इस गांव में कृष्ण राव नाईक जो महाराष्ट्र ब्राम्हण एवं अत्यंत योग्य व संपन्न सज्जन है, कुछ मित्रों ने, उनसे मेरा परिचय करवा दिया है। उनके घर जाने पर संगीत विषय पर चर्चा निकली उसमें हिन्दुस्तानी एवं कर्नाटक संगीत के मिलन करने की कल्पना अच्छी लगी । मैंने उन्हें बताया कि आप यदि जानकारी हेतु महाराष्ट्रीय व्यक्तियों को सप्ताह में एकबार एकत्र कर कभी हिन्दुस्तानी गायन का प्रसँग निकाले तो वह गायन यहाँ के तमिल गायन में प्रवेश किये बिना नहीं रह सकता । उन्होंने कहा कि मैं आज से ही एक मराठा क्लब स्थापित कर रहा हूं । उसमें सभी मराठी बोलने वालों को ही प्रवेश की अनुमति होगी तथा जहां तक संभव होगा वहां तक हिन्दुस्तानी संगीत का ही प्रयोग होगा । इस प्रकार की संस्था में संगीत के अतिरिक्त अन्य विषयों पर चर्चा से भी लाभ होगा । ऐसा ज्ञात होता है कि यहां इन लोगों के पूर्वज महाराष्ट्र देश छोड़कर मराठा राज्य में आये थे । उनमें परस्पर प्रेम देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई । मराठी भाषा बनाये रखने का उत्साह देख कर बहुत आनंद हुआ । उन्होंने मुझसे ऐसी विनती की कि हम यहाँ अनेक वर्षों से रहने के कारण हमारे उच्चारण एवं भाषा में यहां के तमिल उच्चारों की मिलावट के कारण मराठी भाषा कान को जितनी अच्छी लगनी चाहिये वह नहीं लगती । अतएव हमारी इच्छा ऐसी है कि हमारे इस नवीन स्थापित क्लब में आप कुछ बोलें । हमें केवल मातृ भूमि की स्वच्छ भाषा सुनकर ही समाधान होगा । सचमुच, यह शब्द सुनकर मैं गदगद हो गया । परन्तु मैं वक्त न होने के कारण तथा यहां लोगों के सामने किस विषय पर भाषण करूं

यह समझ में न आने के कारण ऐसा लगता है कि मुझे व्याख्यान देने के लिये मना करना पड़ेगा। यह भी सृष्टि का एक चमत्कार ही है कि इन लोगों को हिन्दुस्तानी गायन में बहुत रस मिलता है। उन्हें सैकड़ों वर्ष हो गये फिर भी अपनी मातृभूमि की भाषा संबंधी व संगीत विषय की स्वभाविक चाह उनके मन में है। वहां तमिल लोगों को तमिल प्रकार की ताने तथा मृदंग के शब्दों की संगति के साथ लिपटी हुई ताने पसंद आती हैं। उसी कारण, देवगोस्वामी के मठ में ग्वालियर से आए हुये एक हरिदास जिनका कीर्तन परसों हुआ था उसमें चमत्कार देखने को मिला। हरिदास बुआ बहुत द्रुत लय की ताने लेने पर तमिल लोग "भले भले" कहने लगे तथा "मींड" वगैरा लेने से महाराष्ट्रीय व्यक्तियों को आनंद प्राप्त होता।

पंजाब केशी अय्यर -

यह कहना पड़ेगा कि हमारे मित्र ने यहां के सभी प्रकार के संगीत विद्वानों से मेरा परिचय करा दिया। यहां के वाद्य यानी फ़िडिल, सारंगी, ताऊस, सरोद, वीणा, मृदंग यह है। कल रात्रि यहां के प्रसिद्ध फ़िडिल वादक "पंजाब केशी एय्यर" नामक द्रविड़ ब्राम्हण का वादन हुआ। यह स्वीकार करना चाहिये कि ये सज्जन वादन में अत्यन्न कुशल है। (इस नगर में सितार वाद्य एकदम नहीं है।) इस प्रकार के फ़िडिल वादक अपने यहां न होने के कारण मुझे यह ज्ञात न था कि इस वाद्य में इतना काम किया जा सकता है। उन्होंने अनेक कर्नाटकी राग बजाये तथा उसके उपरांत मेरे लिये बिहाग, दरबारी कान्हडा, सोरठ, केदार काफी इत्यादि राग हिन्दुस्तानी ढंग से बजाने का प्रयास किया। यह प्रयास साधारण ही था। कारण यहां इन रागों की जानकारी अधिक न होना स्वाभाविक ही है। सुनसुनकर जो असर हुआ उसके आधार पर वे बैठाये गये हैं। फिर भी, उनकी तैयारी सुनकर आनंद हुआ। ऐसा नहीं कि कर्नाटकी राग मुझे पसंद नहीं है। परन्तु उनका सुधार हिन्दुस्तानी अंग से होना चाहिये। मेरा ऐसा मत है। उस दिन एक तरूण तेलंग ब्राम्हण ने संगीत में घट वाद्य बजाया, उसे सुनकर अतिशय आश्चर्य व आनंद हुआ। घट वाद्य अर्थात एक बड़े से मटके को मृदंग के अनुसार बजाना। उससे निकलने वाले स्वर से तंबूरा इत्यादि वाद्य मिलाया जाता है। इस व्यक्ति ने अनेक सीधे एवं टेढ़े ताल इतने स्पष्ट बजाये कि सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। हजारों मृदंग के टुकड़े बोल व गत इतनी साफ रीति से बजाये कि उसके स्थान पर मृदंग की आवश्यकता का विचार क्षणभर को मन में नहीं आया। उनके रोम-रोम में लय भिदी हुई थी। मटका ऊँचा उछाल कर वे पुनः ताल में ही झेलते थे। बगल पर हाथ से आघात करते हुए योग्य स्थान पर ताल के ठोके देकर भी दिखाते थे। आड़ी लय ऐसी पकड़ते थे कि आश्चर्य होता था कि यह ध्यान में कैसे रही थी। अच्छे अभ्यास बिना उसके ताल एवं लय की तालियां हाथ से देना भी कठिन था। यह कार्य देखकर तथा उसे भी अपूर्व देख कर बड़ी तृप्ति हुई तथा मेरे मन में यह आया कि यह कार्य बम्बई में मित्रों के सम्मुख आवे। मैंने अपनी यह इच्छा गोपाल राव के सामने प्रदर्शित की। उन्होंने मुझे बताया कि अगले मई माह में छुट्टियों के समय वे बम्बई देखने जा रहे हैं। उस समय वहां के संगीत विद्वानों को वे बम्बई लावेंगे। इसमें संदेह नहीं कि यदि ये बम्बई की निगाह में आये तो वहां सभी चकित हो जावेंगे। यह आश्चर्य है कि मटके पर इतनी कसके थाप पड़ने के उपरान्त भी वह फूटता कैसे नहीं। वह थाप जैसी मृदंग पर पड़ती है एकदम वैसी इस पर भी आती है। यह

केवल कागज पर नहीं लिखा जा सकता। इस प्रांत के मृदंग में भांति-भांति के परनों का बड़ा प्रचार है तथा लोग भी मृदंगवादन अच्छी तरह समझते है। यहां ताल देने की पद्धति अपने यहां की अपेक्षा कुछ भिन्न प्रकार की है। तथा ताल के नाम एवं मात्रा भी भिन्न है। फिर भी वे समझने में कठिन नहीं है। ताल बजाते समय कोई संगति प्रदान करता है तथा वह उंगलियों से मात्राएं गिनता रहता है। मेरा मत कुछ इस प्रकार बना है कि यहां ताल वाद्य वादक ने गायक के ऊपर अपना प्रभाव स्थापित किया है। गाने वाला अपनी तानों मे अथवा वाद्य वादक अपने वादन में सदैव बड़ी संख्या में परवावज के मोहरे एवं परण बजाता है। इस प्रकार के वादन में आनंद हो या न हो परन्तु सभी वादन में एक ही ढंग का हो जाने से एक प्रकार की ऊब उत्पन्न होना संभव है। इसलिये मैं कहता हूँ कि इसमें सुधार होना चाहिये। यहां स्वर ज्ञान बहुत है, वहां अपने गायक को जितना स्वर ज्ञान होता है उतना यहां के साधारण व्यक्ति को ही है। यह हम जानते है कि यहां के गायन में केवल १२ स्वर हैं अर्थात "स" एवं "प" अचल तथा अन्य दो-दो, मिलाकर दस यानी यहां पर पाश्चात्य "क्रोमेटिक स्केल" है। मैंने यहाँ हाथ में तंबूरा लेकर बीच के स्वर जो अपने यहां कण के समान या कुछ मुख्य बनाकर भी लिये जाते हैं उन्हें गले से निकाल कर दिखाया तथा रागों के प्रभाव कैसे-कैसे बदलते हैं वह भी दिखाया। उसे सुनकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ तथा उन्होंने तुरंत कहा कि ऐसे स्वर उनके यहां किसी ने न गाये न सुने। वे वीणा पर निकल सकते हैं परन्तु वे गले से भी संभव है यह उन्हें ज्ञात नहीं था। यह स्पष्ट दिखता है कि ऐसे स्वरों से राग का प्रभाव बदलता है परन्तु यह कल्पना उनके यहां नहीं है। उनके सभी मेल १२ स्वरों के आधार से किये गये हैं इसी कारण इनकी आवश्यकता पर किसी का ध्यान नहीं गया। ये उनके गायन में आते भी होंगे परन्तु उनके स्थान की पड़ताल किसी ने देखने की आवश्यकता नहीं समझी। अब वह प्रयास हम करेंगे। मैंने कहा कि हमारे यहां यह बात साधारण सी है। यदि यह मर्म समझ में आया कि प्रत्येक स्वर का परिणाम भी भिन्न है तो इस प्रकार स्वरों की श्रुतियां भिन्न-भिन्न प्रकार से लेने के परिणाम् भी भिन्न-भिन्न होंगे। मुख्य स्वर बारह क्रोमेटिक मानने पर भी व्यवहार में उनके बीच की श्रुतियां भी उपयोग में आवेंगी तथा वह आती भी है। आपके गायन करते समय साथ में बजने वाली हार्मोनियम यदि हूबहू वैसे ही स्वर उत्पन्न नहीं कर सकते तो यह सिद्ध हो जाता है कि आपके गायन में एक प्रकार की विलक्षण श्रुतियों का उच्चार हो रहा है। वह गमक के रूप में लगे अथवा किसी अन्य रूप में। वे यदि उस प्रकार से प्रयुक्त न हुई तो राग को योग्य स्वरुप मिला ऐसा नहीं लगेगा। हम भी अपने यहां मुख्य बारह स्वर मानते है परन्तु उपर्युक्त चमत्कार उत्पन्न करने के उद्देश्य से अमुक राग में अमुक श्रुतियां निश्चित कर ली है। यह संगीत की उन्नति ही है।

यहाँ के गायन वादन की एक दूसरी विशेषता यह है कि राग में वादी-संवादी स्वरों का व्यवहार जान बूझ कर किया हुआ नहीं दिखता। यह नहीं कि उनके गायन में वे लगते नहीं अथवा गायक विभिन्न स्थानों पर कम, अधिक ठहरते नहीं। परन्तु अमुक राग में अमुक स्वर का प्राबल्य है, तथा उसके उपरांत अमुक स्वर प्रमाण में अपना महत्व दिखाता है, इस प्रकार भरोसा करने योग्य नियमों की कल्पना ही नहीं की गई। नागोजीराव इतनी खटपट कर रहे है (फिर भी) वादी-संवादी की रचना उन्हें अचंभित करती है। हमारे यहां जगन्नाथ पंत गोस्वामी जिन्हें गोपालराव ने भेजा था, उन्हें यहां इस संगीत का बड़ा अधिकारी भी मानते है। उन्होंने

हमारे यहां नित्य दो-तीन घंटे आकर बैठने एवं संभाषण करने का क्रम रखा था। उन्होंने इस संबंध में मुझ से जानकारी प्राप्त की थी और मैंने भी वह खुशी से दी थी। फिर भी, एक दिन, साहस कर मुझसे कहने लगे कि हमारे द्रविड़ प्रांत में वादी-संवादी पर कोई ध्यान ही नहीं देता। मैंने अनेक प्रदेश देखे हैं इस कारण वह तत्व मुझे समझ में आया है। मैं आपके सामने मेरा वाद्य अर्थात "बालसरस्वती" व (स्वरवत) सरोद लाकर यह वादी-संवादी करके दिखाऊंगा जिसे आप देखें।

जगन्नाथ भट्ट गोस्वामी का वादन --

प्र. – आप किस विधि से उसे दिखायेंगे।

उ. – एक राग प्रारम्भ करने पर उसमें एक बार "री" को वादी करता हूं तदुपरान्त "म" को वादी करता हूं तथा और एक आद को वादी करता हूं। इस प्रमाण से एक राग में भिन्न-भिन्न स्वरों को वादी करके रंग उत्पन्न करता हूं। यह सुन कर आपको बड़ा मजा आवेगा।

दूसरे दिन उन्होंने अपना वाद्य लाकर बजाया। "बालसरस्वती" अर्थात ताऊस और "स्वरवत्" अर्थात सरोद। यह वाद्य जैसे उत्तर में बजाये जाते हैं वैसे यहां नहीं, यह कोई भी स्वीकार करेगा। सरोद में लगातार परवावज के टुकड़ों को बिखेरते रहते हैं। हिन्दुस्तानी सरोद बजाने वाला ऊंची श्रेणी का कलाकार यहाँ मुझे नहीं मिला अतएव उस विषय में मत दे सकना संभव नहीं है। यहां के सरोद वादकों ने मेरे मन में बहुत अच्छा प्रभाव उत्पन्न नहीं किया, यह मैं कह सकता हूं। दूसरा वाद्य ताऊस। यहाँ तंजौर में ही नहीं अपितु संपूर्ण दक्षिण में "ताऊस" वाले केवल ये गोस्वामी ही है ऐसा उन्होंने बताया। एक-दो उदाहरण जो उन्होंने अपने बारे में बताये वे ऐसे है। मैं मैसूर के महाराज के यहाँ गया था। वहां एक बंगाली बाबू बहुत प्रसिद्ध वादक था। जब बजाने का अवसर आया तब यह दिखने में आया कि ताऊस बजाते समय घसीट द्वारा मींड का काम होता है यह उसे पता नहीं था। वह तार खींच कर मींड उत्पन्न करता था जिस कारण प्रत्येक बार तार उतर जाता था तथा उसे मिलाने के लिए वह अपना वादन रोक देता था। फलतः लोग ऊब कर उठ जाते थे। मेरी बारी आने पर जब उसने मुझे मींड घसीट निकालते देखा तो वह एकदम सामने आकर कहने लगा, 'अहा हा! ऐसा बजाने वाला मैंने मात्र एक ही देखा। अब यह घसीट मैंने इनसे सीख ली है तथा उसे मैं अपने बजाने में प्रयुक्त करता रहूंगा।

प्र. – वह पेशेवर वादक था या शौकीन गृहस्थ ?

उ. – बड़ा पेशेवर ! ३ रूपया रोज पर बजाने वाला था।

प्र. – उस बैठक में सुनने वाले कौन थे ?

उ. – शेषाणा वीनकार भी थे । उन्होंने भी मेरे बजाने की प्रशंसा की । वे बड़े संग्रहकर्त्ता तथा विद्वान है । यह कहें तो हर्ज नहीं कि आज दक्षिण में उनके व्यक्तित्व के समान कोई नहीं है । मुझे लगता है मेरी घसीट उन्होंने भी ग्रहण कर ली होगी कारण उस दिन के उपरांत वे मुझे बहुत मानने लगे । उनकी और मेरी भेंट मद्रास में फिर हुई । (यह भूल गया कि मद्रास में अथवा अन्य कहीं और) उस समय "मणी अय्यर" हाईकोर्ट जज के यहां विवाह समारंभ था, उसमें उन्हें एक बैठक का १००/– रुपया देकर बुलाया गया था । मुझे देखते ही उन्हें बड़ा आनंद हुआ तथा वे कहने लगे कि मुझमें और इन सज्जन में कोई भिन्नता नहीं है । एक ही हैं । मुझसे बार–बार आग्रह कर "बाल सरस्वती" बजाने को कहा । सभी लोग सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ।

यह वाद्य पूना के बलवंत राव सहस्त्रबुद्धे ने मुझे उपहार स्वरूप दिया है । मद्रास के पचोपा कालेज में एक बड़ा समारंभ था । कर्नल आलकार का व्याख्यान था । उस समय, एकाएक इस वाद्य के बजाने का आग्रह किया गया । मैंने कहा कि मैंने जीवन में कभी यह वाद्य हाथ में नहीं लिया । परन्तु 'सरोद" एवं वीणा बजाया हुआ था अतएव बलवंतराव ने कहा कि केवल आयोजन की शोभा बढ़ाने हेतु आपको इस वाद्य को बजाना होगा । ईश्वर की इच्छा–मैंने वाद्य को हांथ में लेकर बजाना प्रारंभ किया । उसकी मधुर आवाज से समस्त श्रोता गण प्रसन्न हो गये । बाद में इस प्रसंग पर २००/– रूपया का इनाम भी प्राप्त हुआ ।

प्र. – ताऊस बजाने के लिये ?

उ. – नहीं ! सरोद, वीणा इत्यादि के लिये । यहां मेरे अतिरिक्त और कोई यह वाद्य नहीं बजाता ।

प्र. – वाद्य तो अत्यन्त सस्ता है, लोगों को भी इतना पसंद है तो फिर यह स्थिति कैसे आयी ?

उ. – यह वाद्य उनको कौन देता ? मैं सभी को नहीं सुनता । यहां यह अपूर्ण है । यह वाद्य मुझे बलवंतराव ने बख्शीस में दिया है ।

हमारे यहां उन्होंने जो बजाया उससे तो बंबई के बजाने वालों में उनका तीसरा स्थान भी नहीं आवेगा । उनके पुत्र ने परवावज पर उनकी संगति की । लड़का अच्छा बजाता है । यहां उसको ऊंचा स्थान प्राप्त नहीं है ।

सेतुराम की परवावज एवं देव गोस्वामी का सरोद –

दूसरे दिन मेरे घर एक अन्य गायक की बैठक हुई । उसमें यहां के सभी कसबी गायक तथा हिंदुस्तान से सीखकर आये एक वृद्ध सज्जन "भैय्या साहिब" भी थे । ग्वालियर के मोरगांवकर हरिदास भी थे । तंजौर के सेतुराम नामक प्रथम श्रेणी के परवावज वादक भी थे । २ घंटे बड़ा आनंद आया । पहिले यहां के रामदास मठ के अधिपति 'देवगोस्वामी" का सरोद वादन हुआ । उसके

उपरान्त हिन्दुस्तानी गायन हुआ। हरिदास आयु से बीस-पच्चीस के लगभग तरुण ग्रहस्थ थे। वे वहां कुछ ख्याल इत्यादि सीखे हुए हैं। उन्होंने पुरिया के एक दो ख्याल कहे। तदुपरान्त कान्हडा गाया। उसमें धडल्ले से तीव्र धैवत लगाकर बागेश्वरी बना दी और उसे दरबारी कान्हडा कहा। भैय्या साहिब ८० वर्ष के वृद्ध हैं। उन्होंने अपने आयु के अनुसार दरबारी का एक ख्याल अच्छा गाया। उसके बाद एक-दो "गगरिया फोड़ी रे" जैसी ठुमरियां कहीं। सारांश यह कि उस रात्रि कुछ अंश में सरोद एवं परवावज उत्तम हुआ। दो घंटे आनंद से व्यतीत हुए। उन सब लोगों से स्नेह स्थापित हुआ। दिन के समय इनमें से बहुतांश गुणी व्यक्ति इस विषय पर चर्चा कर जाते। एक सज्जन ने मुझसे आकर कहा कि मेरे आने से इस नगर के संगीतज्ञों में एक सनसनी सी उत्पन्न हो गई है तथा मेरे प्रश्नों के उत्तर कोई नहीं दे सकता ऐसी धारणा बन गई है। यह भी धारणा बनी है कि इस प्रकार की समझ वाला कोई व्यक्ति पहिले कभी नहीं आया। यह सुनकर मानवीय स्वभाव के अनुसार मुझे कुछ अभिमान एवं थोडा आनंद हुआ।

मुत्तैया भागवत एवं दासस्वामी -

एक दिन "तिनिवेल्ली" के मुत्तया भागवत आये। उनको लेकर दासस्वामी नामक प्रथम श्रेणी के पखावजी आये। मैंने बातचीत में प्रश्न किया कि सम, अतीत, अनागत के नियम मुझे समझाइये। उस समय रामनाथ स्वामी, दासस्वामी, भागवत तथा जगन्नाथ भट्ट बीनकार ये सभी व्यक्ति थे। तमिल तथा मराठी भाषा में बड़ा संवाद चला। ऐसा दिखा कि जगन्नाथ भट्ट, अधिक कसबी न होकर बोलने में अधिक धूर्त हैं। उन्होंने मुनसिफ की अकड़ धारण कर भागवत से वार्तालाप किया। भागवत एक पद लेकर हाथ से त्रिताला देते हुए आड़ी लय दिखाने लगे। दासस्वामी अच्छे परवावज बजाने वाले थे परन्तु उन्हें शास्त्र ज्ञान नहीं था। विवाद समाप्त नहीं हो रहा था। किसी से किसी का वैचारिक मिलान नहीं हो रहा था। भट्ट जी को इस विषय में अपने ऊपर भरोसा नहीं था। ऐसी स्थिति देखकर मैंने कहा कि "महाराज ऐसा मत करिये"। 'धाधा, दिता' यह चौताल आप सबको आता है उसे लीजिये। इसी के साथ में गीत के स्थान पर "तक तक तक तक" ऐसे केवल बारह बोल कहिये तथा हर एक व्यक्ति ताल देते हुए "ठाह" लय में अतीत, अनागत लेकर दिखाइये। इस पर दासस्वामी और भट्टस्वामी इत्यादि पीछे हट गये और कहने लगे कि वे ऐसा नहीं कर सकते। केवल भागवत ने सामने आकर यह समझाया कि जब गीत को ताल के प्रमाण में बराबर की लय रख कर गाते हैं वह सम तथा उसकी लय का आड़ स्वरुप "विषम" हो जाता है। विषम लय के दो प्रकार "अतीत" एवं "अनागत" है। यह करके दिखाने के लिये ऐसा किया कि ताल का आघात देकर "तक तक" का प्रारंभ कर १२ अक्षर मात्राओं से समाप्त कर आवर्तन पूरा किया। पुनः उसी स्थान पर अर्थात ताल की पहिली मात्रा के स्थान पर "त" आया। इसका नाम "अतीत" ग्रह बताया। उसी ग्रह को "अनागत" करने हेतु "त" यह अक्षर ताल की पूर्व मात्रा पर रखना चाहिये। यह सुनकर अन्य स्वामी कहने लगे कि उन्हें यह स्पष्टीकरण ठीक लग रहा है। अतएव उसे यहां लिख रखना चाहिये। और कहीं किसी के द्वारा दूसरा स्पष्टीकरण बताए जाने पर उसे भी प्राप्त करुगा।

रविवार, ३ दिसंबर

आज, एक वीणा वादक हमारे यहां आया था। यहां वीणा का अर्थ, हम जिसे रुद्रवीन कहते हैं वह है। उस वैणिक ने विभिन्न कर्नाटकी राग बजाकर दिखाये। वह मैसूर में सीखा हुआ

था। उसने बताया कि मैसूर में "सुभाणा" एवं 'शेषाणा' महान संगीतवेत्ता हैं। उसी प्रकार, एक करगीरराव नामक संगीत शास्त्री, पेरिया पेठ, मैसूर में रहते है। उनसे भेंट करने के लिये भी कहा। वैसा मैं करने वाला हूं। आज सायंकाल, यहां का जगदीश्वर का बड़ा मंदिर देखने गया था। मन्दिर बहुत विस्तीर्ण एवं दर्शनीय है। हिन्दुस्तान में जो देखने योग्य मन्दिर है उनमें इसकी गणना होती है। यहां आकर योरोपीय लोग बार-बार फोटो लेकर जाते हैं।

ग्रन्थ-संग्रह –

मैं पहिले लिख चुका हूँ कि यहां सरस्वती महल में कुछ संगीत की पुस्तकें है। उनमें "संगीत सारामृत" (स्वराध्याय, रागाध्याय, एवं तालाध्याय) तथा "रागलक्षण" यह दो ग्रंथ मैंने मांगे हैं। उनकी नकल कराने का साढ़े बारह रूपया जमा किया है। नकल का कार्य प्रारम्भ हो गया है। दूसरे ग्रंथ "राग रत्नाकर" इत्यादि देखे। परन्तु उनमें केवल राग, उनकी पत्नी व पुत्र इत्यादि कुटुंब, उनके नाम तथा वर्णन के अतिरिक्त और कोई जानकारी नहीं है। अतएव ये ग्रंथ इस बार के प्रवास में नहीं लिये। उनकी केवल नामसूची मेरे पास ढेर सारी हैं। इनसे काम नहीं चलेगा। इसी कारण इन्हें प्राप्त करना स्थगित किया है। यहां ताल पर, 'नंदीभरत', तथा 'ताल दर्पण' ग्रंथ हैं ऐसा श्री दासस्वामी का कहना है। ऐसा भी बताया कि ये ग्रंथ "तिरवाडी" (यहां से ७ मील दूर एक गांव) में हैं परन्तु खेद की बात है कि उन्हें अभी तक देख नहीं सका। संभव हुआ तो अवश्य प्राप्त करूंगा। उनमें ताल व उनके अंग दिये हुए है।

ताल विषयक-चर्चा –

प्रत्येक ग्रंथ में ताल से १० प्राण माने हैं। "प्राण" यह नाम जो दिया है उसका मर्म इतना ही है कि प्रत्येक ताल के संबंध में यह १० बातें महत्व की समझते हैं। ये दस बातें प्रत्येक जाति के ताल पर लगाकर देखना हैं तथा उस ताल के संबंध में यदि यह सब ज्ञात हुआ तो वह ताल भली-भांति समझा ऐसा कहा जा सकेगा। जिस प्रकार "गीत" "वाद्य" एवं नृत्य के "मार्ग" एवं "देशी" ऐसे दो भेद किये गये है वैसे ही ताल के दो भेद किये हैं। अर्थात (१) मार्गताल व (२) देशीताल। इसके अतिरिक्त एक दूसरा वर्गीकरण इस प्रकार है (१) शुद्ध (२) सालग (३) संकीर्ण (ताल)। यही तीन वर्ग रागों के भी किये गये हैं तथा इस शब्द का अर्थ दोनों में एक जैसा है। अन्य प्रसंग पर "मार्ग" व "देशी" के संबंध में मैंने लिखा ही है। उसे दुबारा नहीं लिखता। "मार्ग" इस शब्द का अर्थ यहाँ इतना ही लेंगे कि जिसे पहिले के शास्त्रीय नियमों से बहुत जकड़ लिया था, जिसमें नियमों का भंग एकदम नहीं होता, ऐसा संगीत 'मार्ग' नाम से समझना चाहिए। यही नियम ताल के विषय में भी है। जो ताल प्राचीन शास्त्र में वर्णित नियमों के अनुसार बरते जाते हैं वे "मार्गताल" समझना चाहिये। तथा जिनमें छूट ली जा सकती है, देशकाल रूचि के अनुसार लोकरंजन हेतु जिनमें परिवर्तन करने में बाधा नहीं है उन्हें "देशीताल" समझना चाहिये। जैसे "देशीगीत में शास्त्र के श्रुति मूर्च्छना-ग्राम के नियमों में परिवर्तन करते हैं, वही स्थिति इन देशीतालों की है, यह सहज ही समझ में आवेगा। ताल के लिये "दशप्राण" बताये गये हैं। इन्हें भली-भांति देखेंगे तो ये मार्ग तालों हेतु हैं। इसी कारण देशी तालों का

समूह प्रथम शीर्षक बनाकर दिया गया है। "संगीत रत्नाकर" जैसी पुस्तक हाथ में लेने से तथा उसका तालाध्याय पढ़ने से, प्रथम दर्शन में घबरा जाने जैसा होता है। इसमें "सशब्द क्रिया" तथा "निशब्द क्रिया" आदि का वर्णन बड़ी गड़बड़ उत्पन करता है। परन्तु वह हिस्सा शांतिपूर्वक पढ़ने पर बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है। इस अध्याय में सबसे पहिली गड़बड़ "मार्गताल" के विषय में हैं। "चच्चत्पुट", "चाचपुट" आदि मार्गताल में गिने जाते हैं। इसके संबंध में सभी प्रकार के कठोर नियम इत्यादि की व्यवस्था बताई गई है। ये ताल अब प्रचार में एकदम नहीं है, ऐसा कहें तो भी चलेगा। प्रचार में जो ताल है –कम से कम शार्ङ्गदेव के समय में थे उन्हें देशीताल के शीर्षक में रख कर उनके अंग, चिह्नों सहित सरल रीति से लिख रखे है। ये अंग स्पष्ट चिन्हों से देने के कारण इन तालों को देखते ही तुरंत हांथ से मात्राएं गिनकर एवं आघात देते हुए प्रत्यक्ष करके दिखाया जा सकता है। इन देशी तालों के गले में "दशप्राणों" के कठोर लक्षणों का फंदा आवश्यक नहीं है। इनमें से कुछ अपने आप लागू हो ही जाते हैं। परंतु ऐसा नहीं है कि सभी नियमों के अनुसार, कठोरता से उनका पालन करना ही चाहिये।

शुद्ध, सालग, संकीर्ण, यह शब्द भी तालों हेतु प्रयुक्त हुए है। इनसे तात्पर्य इतना ही है कि "शुद्ध' ताल शुद्ध रागों के अनुसार दूसरे तालों की सहायता बिना रंजन करते है। जिस प्रकार से दो रागों के मेलजोल से एक राग बन कर सुख देता है और जिसे हम "सालग" राग कहते है, उसी प्रकार दो तालों का योग करने से एक नवीन ताल बना कर प्रयोग में लाने से उसे "सालग" कहेंगे। दो से अधिक तालों के संयोग से जो ताल उत्पन्न होता है उसे "संकीर्ण" जाति का ताल कहते है। इतना समझना चाहिये कि "शुद्ध", "सालग", "संकीर्ण" यह किन्हीं नवीन तालों के नाम नहीं है, यह तालों के वर्ग हैं। नाम दूसरे ही होते हैं। (मार्ग) तालों के दश प्राण बताए है जो इस प्रकार है :–

"कालोमार्गः क्रियांगानि ग्रहो जातिः कला लयः।
यत्तिः प्रस्तारकश्चेति ताले प्राणा दशः स्मृताः॥

इस प्रकार ये "दशप्राण" बताकर इसके उपरांत ग्रंथों में प्रत्येक के लक्षण तथा उनका प्रयोग बताया जाता है। हाल के प्राकृत ग्रंथकारों में इस विषय पर पढ़ने योग्य जानकारी "संगीतकलाधर" इस गुजराती पुस्तक के ग्रंथकर्त्ता ने दी है। उसने इन ताल–प्राण के संबंध में कुछ जानकारी दी है जो पढ़ने योग्य है। परन्तु उसने अपनी जानकारी किस संस्कृत ग्रंथ के आधार पर दी है, यह नहीं बताया। इसका कारण साफ दिखता है "रत्नाकर" के पांचवे अध्याय में तालों की चर्चा है। उसमें लिखा हुआ दशप्राण का श्लोक शब्दशः नहीं है। परंतु वहां इनमें से अधिकांश बातों का उल्लेख है। यह श्लोक "दर्पण" से लिया है। मैंने उसे "संगीतसार संग्रह" नामक टैगौर की पुस्तक से लिया है। "रत्नाकर" में तालाध्याय के दो भाग बन गये है। १. मार्गताल २. देशीताल। मार्गतालों का विचार हम नहीं कर सकते। कारण, उन तालों के प्रत्यक्ष उदाहरण अपनी दृष्टि में कभी नहीं आवेंगे। वे पुरातन काल के हैं। मेरे ऐसा लिखने से यह लगना संभव है कि मुझे पहिले भाग के तत्व समझ में न आने के कारण ही मैं उनका महत्व कम कर रहा हूँ। मैं, विनम्र भाव से यह तो स्वीकार करता हूं कि उसमें जो अनेक गीत उन (मार्ग) तालों के आधार पर लिखे हुए हैं, उन्हें मैं समझ नहीं सका। इन गीतों के नाम भी

तो इस ग्रंथ में प्रथम बार देखने मिलते हैं। उदाहरणर्थ :-

"एतै प्रकरणा ख्यानि तालैर्याविजगु बुधाः।
तानि गीतानिवक्ष्याम : तेषामाद्यं तु मंद्रकम् ॥
अपरान्तकमुल्लोप्यं प्रकर्योवेणकं तथा।
रोविंदकोत्तरे सप्त-गीतकोनीत्यवादिषु : ॥

इन श्लोकों में बताये हुए सात प्रकार के गीत उनके विभिन्न भेद क्या कोई आज जानता है ? जब मार्गताल ही कोई नहीं गाता, इसी कारण तालाध्याय का पहिला आधा भाग (अर्थात इनका इनका प्रायोगिक स्वरूप) समझने में कठिन पड़ता है। यह कहा जा सकता है कि ये मार्ग ताल, उसमें बताई गई क्रिया द्वारा कहे जाने पर पसंद ही नहीं आवेंगे। इस संबंध में मेरा कहना यह नहीं कि वह भाग छोड़ दिया जाय और उसका अभ्यास भी न किया जाय। वह अच्छी तरह पढा जाय तथा शास्त्री पंडितों की सहायता से उसका भाषांतर करवा लिया जाय। मैं ऐसा करने वाला भी हूं। मेरी इच्छा इतना भर कहने की है कि इस लेख में मुझे उस विषय की जानकारी लिख सकना संभव नहीं है। अभी तक वे गीत तथा उसके लक्षण इत्यादि समग्र जानकारी मुझे नही मिली है। कोई कहते है कि वह जानकारी मुझे वैदिक लोगों के पास मिलेगी। मैंने दक्षिण में किसी-किसी से इस विषय की पूंछ-तांछ की थी परन्तु वहां सस्कृत ग्रथों की चर्चा एकदम नहीं है। 'रत्नाकर' के अतिरिक्त और किसी का नाम भी कोई नहीं लेता। "रत्नाकर" का भी नाम केवल सुना हुआ है।

समय सारिणी--तालों के काल का कोष्टक --

(आंजनेय मत से)

पदमपत्र शतैकत्र छेदनात्तु क्षणः स्मृतः।
लवः क्षणैरष्टभिः स्यात् काष्टा स्यादष्टभिर्लवैः ॥
स्यान्निमेषोऽष्ट काष्टा भिर्निमेषैरष्ट भिः कला।
कलंद्वयाच्चतुर्भागः स एकः त्रुटि रुच्यते ॥
चतुर्भागद्वयेनैव विद्वद्भिः परिकीर्तितम्।
अणुद्वयात् द्रुतं प्रोक्तं तद्वयाच्च लघुः स्मृतः ॥
लघुद्वयात्तु वक्रः स्यात् तत् त्रयेण प्लुतो मतः।
इतिकाल गतिः प्रोक्ता तालज्ञैः पूर्व सूरिभिः ॥

इस श्लोक में काल का कोष्टक दिया हुआ है। इसे पिछले पृष्ठ पर मैंने दिया ही है, अतः पुनः नहीं देता।

मार्ग-ताल लक्षण --

"मार्ग तालः मुख्य पांच हैं परन्तु फिर उसके भेद अनेक हुए है।

(१) चच्चतपुटः (२) चाचपुटः (३) षटपिता पुत्रकः (४) संपर्केष्टोकः (५) उद्घट्टः

ऐसे पांच है। "दर्पण" में इनके लक्षण इस प्रकार है :-

पुराणों में ऐसा बताया गया है कि ये एकदम प्रारंभ के पांच ताल महादेव के मुख से उत्पन्न हुए है।

१. चच्चत्पुट –

ताले चच्चत्पुटे: ज्ञेयं गुरूद्वंद्वे लघु: प्लतु: ।
सद्योम्दव: शुक्लवर्ण: चच्चत्पुटोऽष्ट मात्रक: ॥
अर्थ = चच्चत्पुट ताल में दो गुरू, एक लघु एक प्लुत ऐसे अंग अथवा स्वरुप है। यह ताल "महादेव" के 'सद्य' मुख से निकला। उसका वर्ण सफ़ेद है। मात्रा आठ है। गुरू = २ मात्रा, लघु = १ मात्रा, प्लुत = ३ मात्रा।
गु. गु. ल. प्लु. कुल संख्या = आठ मात्रा

२. चाचपुट

"ताले चाचपुटे ज्ञेयो भगणो गुरूरेव च ।
वामदेव मुखाज्जात : षण्मात्र : पीतवर्णक: ॥
(अर्थ)–चाचपुट में "भगण" गुरू है। यह वामदेव के मुख से निकला है। छह मात्रा है। वर्ण पीला बताया गया है।

३. षट्पितापुत्रक :

षट् पितापुत्रके त्र्यस्त्र भेदे पौगौ गुरूर्गलौ ।
ईषान जो रक्तवर्णो मात्रा द्वादशभिर्युत : ॥"
अर्थ–इसमें एक प्लुत, तीन गुरू, एक प्लुत, ऐसा क्रम है। इसमें त्रयस्त्र भेद है। "ईशान" मुख से निकला है। मात्रा १२ हैं। रंग खूनी है।
प्लु. गु. गु. गु. प्लु = ३ + २ + २ + २ + ३ = १२

४. संपर्केष्टाक :

"संपर्केष्ठाकके भेदा : षट्पिता पुत्र कस्य च ।
तद्वद्यथाक्षरे कार्य : प्लुताद्यंताक्षरस्तथा ॥
अघोराख्य मुखाज्जातों नीलवर्णोयमीरित : ॥

इस ताल का भेद षट्पिता पुत्रक के अनुसार ही है (चिन्हों से दिखता है, परन्तु यथाक्षर करना है अर्थात अक्षरों का क्रम जैसा है (दीर्घ, ह्रस्व इत्यादि) वैसा ही रखना है तथा प्रारंभ एवं अंत में प्लुत अक्षरों की योजना करनी है। "अघोर" मुख से निकला है। वर्ण–नील।

५. उद्घट्ट:

गुरूत्रय समायुक्त: उद्घट: संप्रकीर्तित : ।
तत्पुरूषात्समुभूतो बहुवर्णोय मीरित : ॥

अर्थ– इस ताल में तीन गुरू बताए हैं। "तत्पुरूष" मुख से उत्पन्न हुआ बहुवर्ण है।

इस प्रमाण से यह मुख्य पांच ताल कहे गये है। इनका परस्पर सयोग करने से इनके अनेक प्रकार बताए गये हैं। मैं इस अंश का भाषान्तर कर रहा हूं। इससे वे प्रत्यक्ष समझ में आवेंगे।

अथ तालस्य दश प्राण निरूपणम्

कालोंमार्गः क्रियांगानि ग्रहो जाति : कला लय : ।
यति प्रस्तार इत्येते ताल प्राणा : दश : स्मृता : ॥

(१)काल : दशविध : जैसे :-१ क्षण, २ लव, ३ काष्टा, ४ निमिष,५ कला ६द्रुत, ७ लघु, ८ गुरू, ९ प्लुत, १० काकपद

८ क्षण = १ लव, ८ लव = १ काष्टा.
८ काष्टा = १ निमिष, ८ निमिष = १ कला,
४ कला = १ अणुद्रुत, २ अणुद्रुत = १ द्रुत,
२ द्रुत = १ लघु,२लघु = १गुरू
३ लघु = १ प्लुत, ४ लघु = १ काकपद,

(२) मार्ग:- षडविधः जैसे:–१ दक्षिण २ वार्तिक ३ चित्र ४ चित्रतर ५ चित्रतम ६ अतिचित्रतम। इनका मात्रा विनियोगः–

मात्रा – ८ स – १ कला अथवा १ दक्षिण
मात्रा – ४ स – १ वार्तिक
मात्रा – २ स – १ चित्र
मात्रा – १ स – १ चित्रतर
मात्रा – अर्ध स – १ चित्रतम
मात्रा – चतुर्थांश स – १ अतिचित्रतम

(३) क्रिया :– द्विविधा : जैसे :– १ मार्ग क्रिया २ देशी क्रिया तत्र मार्ग क्रिया द्विविधा : यथाः–

१ सशद्व क्रिया२निः शब्द क्रिया शब्द इस निःशब्द क्रिया में चार बातें हैः–
१. आवापः– (उंगलियां मोडना है),
२. उंगलियां फैलाना,
३. प्रवेश, (तिलंगी भाषा में 'कुडिवं ककुते च्चुट')
४. निष्क्रामः– (पोडवुगा जू पुटा) सशब्द क्रिया चार प्रकार से दर्शाई जाती हैः–
१. ध्रुवा–चुटकी देना,
२. शप्प–बायें हाथ से दाहिने हाथ पर घात करना,
३. ताल–दाहिने हाथ से बांये हाथ पर घात करना,
४. सन्निपातः– दोनों हाथों से समभाव घात करना तत्र देशीक्रिया अष्टविधाः यथा– १. ध्रुवका २. सर्पिणी ३. कृष्या ४. पद्मिनी ५. विसर्जिता ६. विक्षिप्ता ७. पताका ८. पतिता एतत् शास्त्रेण ज्ञेयं।

(४) **अंग**– षड्विधानि यथा :– [चिन्हों सहित]

अणुद्रुत	द्रुत	लघु	गुरु	प्लुत	काकपद
⌣	०	।	S	३	+

(५) **ग्रह**– चतुर्विधा यथा :– १. अतीत, २. अनागत, ३. सम, ४. विषम

१. अतीत– अर्थात् गीत ठहर जाने पर भी ताल रहता हैं। (गीत की सम के बाद ताल की सम दर्शाना)

२ अनागत– अर्थात् ताल ठहर जाने पर गीत रहता है। (ताल की सम के बाद गीत की सम दर्शाना)

३. सम– अर्थात् गीत व ताल समतासे एक साथ चलते रहना। (ताल और गीत की समों का एक साथ मिलान)

४. विषम– अर्थात् उपर्युक्त तीनों के विपरीत चलना।

(६) **जाति**– पंचधा जैसे– १. चतुरस्त्र २. त्र्यस्त्र ३. मिश्र ४. खंड ५. संकीर्ण
ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, संकीर्ण

(७) **कला**– त्रिविधा, यथा :–

१. एककला २. द्विकला ३. चतुष्कला
लघु : गुरू : संयुक्ताद्य दीर्घ मित्यादिना लघु गुरू विवेक :

(८) **लय**– विलंब, मध्य, द्रुत

(९) **यति**– षड्विधा जैसे– १. विषम २. मृदंग ३. सम ४. वेदमध्य ५. गोपुच्छ
६. स्त्रोतोवहा

(१०) **प्रस्तार**–१. नष्ट २. उद्दिष्ट ३. पाताल ४. द्रुतमेरू ५. लघुमेरू ६. गुरूमेरू
७. प्लुतमेरू ८. संयोगमेरू ९. खंडप्रस्तार १०. यति प्रस्तार

प्राचीन कृष्णा भागवत के मतानुसार मुझे जगन्नाथ भट जी ने दी हुई जानकारी :–

उद्धरणों के यह अंश मैंने तंजौर के जनन्नाथ स्वामी की पुस्तक से लिये हैं। इसमें की कुछ बातों का स्पष्टीकरण मैंने उनसे प्रत्यक्ष मांगा था। जैसे "मार्ग" चार प्रकार के कहे जाते हैं। (द्रुत, चित्र, वार्तिक व दक्षिण) यह कैसे ? "क्रिया" सशब्द, निःशब्द– निःशब्द क्रिया के प्रकार "आवाप, निष्काम विक्षेप व प्रवेशक," यह कैसे ? इत्यादि। परन्तु इस संबंध में उन्हें कुछ कहते नहीं बना। दक्षिण में यह जानकारी मिल सकना संभव नहीं है। ये अति प्राचीन समय की बातें हैं। हम जब गातें हैं तब ये क्रियाएं होती है यह सच है। परन्तु वह निशानियां,

नाम गांव की जानकारी सहित ज्ञात होने पर मन को समाधान अधिक होता है। (हम) हांथ से ताल के आघात देते हैं, खाली देते हैं, इत्यादि क्रिया हम करते ही हैं। हमारे सब करने में ताल के सभी प्राण आते ही हैं। परन्तु उन्हें समझ कर करने से अच्छा लगता है।

संगीतदर्पणकार ने "रत्नाकर" के मार्ग तालों के कठिन अंशों की खटपट तथा अनेक गीत उन तालों सहित लिखकर (स्वरलिपि नही) दिखायी है। दर्पण का रचा अंश यहां छोड़ दिया है। ऐसा लगता है कि उनके समय यह सब झंझट नहीं था। उन्होंने "दश प्राण" के लक्षण संक्षेप में सरल रीति से दिये हैं। यदि उसको याद कर लिया जाय तो पर्याप्त है।

भटजी की हस्तलिखित प्रति से :

श्री मुरजाक्षर मालिका

मृदंग में विशेषकर आने वाले शब्द :-

क वर्ग में- क, ग, ङ

च वर्ग में- केवल नृत्य में उपयोगी

ट वर्ग में- ट, ड, ण

त वर्ग में- त, थ, द ध, न

प वर्ग में- म

यकारादि- क्षांत वर्ग में- र, ल

क ग ङ ट ड ण त थ द ध न म र ल कुल- १४

विशेष सूचना :- यह पोथी पढ़कर मैंने कुछ धारणा बना ली है। जिसका उल्लेख अन्यत्र कर रखा है।

ध्रुवताल- नामांतर अठ्ताल अक्षर-१४ताल चिन्ह- ।०।।, आघात-१, ५, ७, ११, अथवा १, ३, ७, ११,

बोलाक्षर मात्रा-आघात सहित-

।	३	७	११
धि तृक धीना तो न्ना क त्ता धी धीना धी धी ना			
×	।	२	३

मट्ठताल- अक्षर १०, आघात १-५-७ अथवा १-८-९

गत मात्रा-आघात सहित :-

१	५	
धा धिन तक धेत् धिन तक किट तक गदि गन		
×	×	×

त्रिपुट– तेवरा अक्षर ७, (उत्तर में रूपक) आघात– १–४–६ अथवा ।–३–५ अथवा ।–३

बोलाक्षर मात्रा आघात सहित :–

१ ४ ६

धा किट – तिटि कत गदि गन

रूपक– अक्षर ६, आघात १–३

बोलाक्षर :– धिं धिं धिं धिं धिं त अथवा तिं तिं तिं तिं तिं न

चतुरस्त्र जाति

	गण	बोल	मृदंग	विष्णुनाम	शिव
१	मानस	दादिड	तक्किट	केशव	शंकर
२	जभान	दिडाद	धिनात	उपेन्द्र	महेश
३	सलग	दिडदा	तकथों	मुरजित्	पुरजित्

तिस्त्र जाति

४	मातारा	दादादा	तध्दितो	श्रीकृष्ण	हेशंभो
५	नसल	दिडद	किडत	मदन	गिरीश

खंड–मध्यरे अ. ५

	गण	बोल	मृदंग	विष्णुनाम	शिव
६	ताराज	दादड	धींतोन	गोविंद	भुजेश
७	राजभा	दादिडा	धीतनों	दैत्यहन्	कालहन्
८	यमाता	उदादा	तधींधीं	सुकीर्ति	पिनाकिन्

मिश्र जाति अ. ७

तिस्त्र के साथ चतुरस्त्र मिल जाने पर यह जाति बनती है :–

संकीर्ण

चतुरस्त्र के साथ युक्त खंड होने पर यह जाति बनती है :–

च. तेकधिन मि. तकिट खं. तक ताकिट

ति. तकधिन तकिट सं. तकधिन तक तकिट

चौताला

टुकड़ा सम से आरंभ कर ३ आवर्तन उपरांत पुनः सम पर

१. तक तदीं गिणतों किड तक गनि गन धा

× ० २ ० ३ ४ ×

२. त्रिकिट तक्ता कत् तृक्किट तक्ता कत् किटतक गदिगन धा कित्ता (कोल्हापुर) अनंत बुआ
× 0 2 0 3 4 ×
का मुखड़ा ॥ तुकड़ा ॥ बेलगांव में

१. (त्रिकिड तक्ता तिट कित गदिगन धा) 3 आवर्तन बजेगा

२. (कूड धेत्ता किड तक गदिगन धा) 3 आवर्तन बजेगा ।

३. (किडनक तिटकत धिनतक गदिगन धा) 3 आवर्तन बजेगा ।
×

४. कडान्धा कडान्धा कडान्धा 3 आवर्तन बजेगा ।

५. (गदिगन तकधिरि किडतक गदिगन धा) 3 आवर्तन बजेगा ।
×

६. (धा किटतक धुम किटतक गदिगन धा) 3 आवर्तन बजेगा ।
× 2 0 3 ×

७. गदी गदिगन धा (3)

८. गदिगन धा किटधान धा (3)

९. तिरकिड तक्ता तिटि कित गदिगन धा ता । तिट कित गदिगन धा

१०. कडधेत्ता धित्ता कडधान धा 3.

११. धगद्दिगन धगद्दिगन धा 3.

१२. धिटधिट धगितिट कत्ता नगतर कत्ता कडधेत्ता किट
धगद्दिगन नग तिटकत गदिगन धकिट धकिट ताकिट कड– धेत्ताकिट तक [कडधेत्तान धित्ता कड् धान धा] ३.

मैंने जगन्नाथ को एकताल के वैचित्र्य हेतु हमारे क्लब के गायकों के लिये तैयार की हुई चीज "हे जगपाला अतिशय सुन्दर ताला" इस प्रकार के अक्षरों की दिखाई तथा कहा कि इस ताल का ठेका बना दीजिये । उन्होंने अच्छा कहा तथा दूसरे दिन नीचे लिखे अनुसार ठेका बोला:–

जगपाल ताल मात्रा ॥ अंग ।000
)

स्थाई – धा धिननक थुंगा । धु मकिट । तिरकिट । गदिगन ।
सन्तरा – धा तक धिनतक धिट । धिट धागि । तिट तोम् । गदिगिन
× 2 3 4
२ अन्तरा:– धा धा । किट धा । किट । कत्त गन गत । कंडा कंडा धिम्
× 2 3 4

यह ठेका उनके लड़के ने बजाकर दिखाया तथा ठीक बजाया । यह करने की युक्ति उन्होंने मुझे समझाई है परन्तु मेरा विषय मृदंग न होने के कारण मैं मृदंग हेतु गत रच सकूंगा यह कहना एकदम उचित नहीं होगा ।

सात मुख्य ताल इस प्रकार बताए है:--

।0॥ ।0। 0। ।‿0 ।00 ॥00 ।

१) ध्रुव (2) मठ्य (3) रूपक (4) झंपा, (5) त्रिपुट (6) अठ (7) एक श्री

३५. ताल के नामों के श्लोक

१. श्रीकरश्च समश्चैव । पत्तिर्मधुर एवच ।
आदिलेखौच मानश्च । सप्त संज्ञा : प्रकीर्तिता : ॥
एते चतुस्त्र जातीया : । कथिताश्च ध्रुवादय: ॥

२. माणिसारौच चक्रश्च कदंब शंख एवं च ।
गुप्त सात : सुधो ज्ञेय : । सप्त संज्ञा : प्रकीर्तित : ॥
एते तु तिस्त्र जातीया इत्यादि ॥

३. पूर्णोदीर्णो कुलश्चैव सुरोलील स्तत: परं ।
लोय रागौहि बिख्यातौ । सप्त संज्ञा: प्रकीर्तित: ॥
एतेज मिश्र जातीया : इत्यादि ॥

४. प्रमाण उदयो राजश्चर्णमें दुष्कर एवच ।
विदकश्च रत: श्चैव सप्त संज्ञा प्रकीर्तिता: ॥
एतेच खड जातीया: इत्यादि ॥,

५. भुंवनश्च ततो राव : बिंदुश्चकर एवच ।
भोगधी रौव सु:श्चैव सप्त संज्ञा: प्रकीर्तिता: ॥
एते संकीर्ण इत्यादि ॥

"मुरजाक्षर माला" से
मृदंगस्य वर्णान् विजानी हि विद्वन ।
कगौ धसौटश्च डणौ प्रसिद्धौ ।
त वर्गश्य पूर्ण : म वर्णश्च रेफ : ।
हकार: कर्वचित कश्यते गान विघ्निः ॥
विष्णुर्निनाद मुरजं तद्धित्वं नौ दिवौकसां सदसि ।
सौतीव पार्वतीशं मृदंग नादेन माधव : श्रुतिवित् ॥

चतस्त्र जाति के ताल :

१. श्रीकर–1011– अक्षर 14 (४,२,४, ४) धा गक धी ना थुंगा कत्ता धी धी ना धी धी ना
× 0 2 3

२. समताल – ।0। अक्षर १० (४, २, ४) ना धिं धिं ना धी ना ना तिं तिं ना
× 0 2

३. पत्तिताल– 0। अक्षर ५ (१, ४) धाति धा गी तू ना अथवा धा तक धी धी ना
× २ × 2

तिस्त्रजाति के ताल:–

१. मणि–०००० अ. ११– (३,२,३,३) ता धिं ट किट धाकिट तकिट
× 0 2 3

२. मार – ००० अ. ८ [३,२, ३] धा किट तक थोंगिट
× 0 2

३. चक्र– 0। अ. 5 (1,4) घीड धा किट
S 2

मिश्र जाति के तालः--

१. पूर्ण, । 0 । । अ. २३ (७,२,७,७):– धी ड धा कि ट कि ड धि ट
× 0

ता धे ड धे ड त्त ड ः ता कि ट कि ड ता ड
२ ३

२. उदीर्ण । 0 । अ. १६ (७,२,७) धाकिट किट धिन तिर तागिर तकधिन
× 0 2

३. कुल संज्ञा, ०ड, अ. ९ (२,७):– घींड धा गिन तिटकत
× २

खंड जाति के तालः–

१, प्रमाण ताल, । ० । । (४,२,५,५)

१. घीं धा किट किड तागिट तक धी नागिना तक
× २ ३ ४

२. उदय– । ० । अ. १२. (५,२,५)

ता धे S धिदट धिट ता धा S तिट अथवा धाकिट धी S तक ताकिट धिS
× २ ३ × २ ३

३. राज –– अ. ७ (२,५) धी–धिट धागिट
× २

संकीर्ण जाति

१. भुवनताल अ. २९–––––(१,२,९,९)
। ० १६० । S
धा S धिट धिट धा । गिट धिन धै धिट धित
× २ ३

।
धा । किट तै त्रिट त्रिट तागिट
४

२. राव. ।०। अ २०. (६,२,६)
। ० ।
धा–गिट धिट धा धिट–ते–ता–तिट त्धे तित्रिट
× २ ३

३. बिन्दु ०। अ. ।। (२, ६)
0 ।
धा–धिट धागिट घे–घिट
× २

मुख्य सात ताल इस प्रकार हैः——
ध्रुवो मट्ठयो रूपकश्च झंप त्रिपुट एवच ।
अठताल एक तालश्च सप्त तालाः प्रकीर्तिताः ।।

इस कागज की समग्र जानकारी जगन्नाथ भटजी की पुस्तक में प्राप्त हुई, यह अच्छा ही हुआ। अब मैं यह ताल हमारे यहां के गायकों को सिखा सकूंगा जिससे उनके पास उन के तालों को गायन–वादन हेतु कुछ न कुछ आधार प्राप्त होगा। मुझे आधारयुक्त गायन–वादन का अत्यधिक विचार रहता है। ऐसा करने से अपनी पद्धति कभी न कभी किसी न किसी प्रकार से शास्त्रीय आधार पर लायी जा सकेगी। मैं यह कह सकूं तो ठीक ही होगा कि प्रारम्भ से ही मुझे अपने संगीत का इतिहास क्रमबद्ध रहने में रूचि है। पुराना सभी त्यागकर नवीन स्वतन्त्र बना कर रखना, पसंद नहीं आता।

भट गोस्वामी की पुस्तक से

वेदेतु – उदात्तानुदान्तस्वरिता इति त्रिस्वराः। तेभ्यः षड्जादि सप्तस्वराः। तत्र उदत्तात् निगौ। अनुदात्तात् रिधौ। स्वरितात् समपाः। तस्मात् संगीतस्य वैदिकत्वमुक्तम्।

दशविध गमकाः।

आरोहमवरोहंच ढालु स्फुरित कंपिताः।
आहतः प्रत्याहतश्चैव त्रिपुच्छांदोल मूर्छनाः ।।

१. आरोह–सरिगमपधनिसां, सारेग, सारेगमप इत्यादि

२. अवरोह– (सरल है) सांनिधा, सांनिधप, इत्यादि

३. ढालु– सप, सम, सग, तथा सांध सांम इत्यादि

४. स्फुरित– सासा, रेरे, गग, मम

५. कंपित— पा ऽ प प प्र प, मा ऽ म म म म
६. आहत— सारे, रेग, गम (पिछले स्वर से विभिन्न स्वरों को जोड़ना)
७. प्रत्याहत्— सानी, नीध, धप— (अवरोह करते समय पिछले स्वर से विभिन्न स्वरों को जोड़ना)
८. त्रिपुच्छ— सासासा, रीरीरी, गगग, ममम, (द्रुत लय में गाते समय)
९. आंदोल— सारीगमग, सारीपप, इत्यादि
१०. मूर्छना— सारीगमपधनी, रीगमपधनीसां, गमपध इत्यादि । (ये द्रुत एवं **अनियमित** ताने **साधारण** अभ्यास में सुनी जाती है ।

आलापक्रमः

मध्यषडजं समारभ्य मंद्रषड्जावधिक्रमात । सम्यगालापनं कृत्वा मध्य षड्ज समापयेत् ।। एषा विदारिका प्रोक्तायडुपीत्य मिधीयते । इति विदा: ? मंद्र मध्यषड्ज मध्ये रागवर्धनमारभेत् । गत्वां तानंतराकान्तं मध्य षड्जे समापयेत् ।। मंद्र पंचमयेमध्ये आरभत्–तानमुन्तमं । मध्य षड्जे समापयेत मुक्ता इत्युच्यते बुधैः ।। अथ स्थायीमेदा: ।। मन्द्र षड्ज मध्य षड्जं ऋषभं ऋषभान्तिकं । गांधारचोर्ध्वं गाँधार मध्यममंध्य–मावधि ।। पंचमं पंचमाँतंच धैवतं धैवतान्तिक । निषादोर्ध्व निषादात्तु षड्जं दड्जांतिकं क्रमात् ।। एवमेवावरोहेतु षोडषस्थायि संज्ञका: । अशेष तानवंदानि मध्य षड्जे समापयेत् ।। अल्प स्थायीं दर्शायित्वायत्र कापि निवेशयेत । पुनश्चालापनं कृत्वा तत्स्थायिंच प्रदर्शयेत् ।। एवं त्रिवारमालप्य चतुर्थे मंद्रतारकं । दर्शयित्वा मध्यषडजे समापनंच कारयेत् ।। एषानाम्नामकरणीत्युक्तन्वान् नारदो (भरतो) मुनि: । यत्र कापि समारभ्य मध्यषड्जे समापयेत् ।। स्वेच्छासंचारतो नाम्ना संचारीति प्रकीर्त्यते ।।

तालप्रकरणे नष्टोद्दिष्ट प्रकारः

तिर्यग् रखात्रयंरूत्वा रेखा: कोश्टानि कारयेत् ।
अग्रश्रेणीमूर्ध्वं कोष्टे संख्या श्रेणीमधो लिखेत् ।।
अणु द्रुतानूर्ध्व कोष्टे वर्धयित्वा विलेखयेत् ।
चतुरगेचांग श्रेण्यां द्रुतपूर्वविवर्धयेत् ।।
शरागंच तिस्त्र मिश्र खण्ड संकीर्ण जातिषु ।
अनुद्रुतं पुरस्कृत्य वर्धयेत पंच जातिषु ।। अंग श्रेणी लेखन क्रम:

अथ संख्या श्रेणी

प्रस्तार पूर्व संख्याकं तद्गृहं तु विसर्जयेत । वामस्थ ग्रहमारम्यअंत्योपांते चतुर्थकम् ।। षट संख्यात्य ग्रह संख्या द्रुतकध्वंत मुच्यते ।। गुर्वंतंच प्लुतांतंच नष्टोदिष्टेषुयोजयेत । संख्या श्रेणी ।।

अथ शरांगम्

अंत्योपाँत्ये चतुर्थंच अष्ट द्वादश संज्ञकं । संख्या श्रेणी शरांगेतुप्रतिकोष्ठे विलेखयेत ।।
।। संख्या श्रेणी ।।

॥ अथानुद्रुत द्रुतलघुगुरु प्लुन्तानि ॥

अंत्योपांते तृतीयंच बाणा ब्रांणा ब्रहन त्रयोदश । अनुद्रुत द्रुत लघु गुरु प्लुत विलोमतः ॥ एवं हेतानि विज्ञेयं नष्टोद्दिष्ट प्रदर्शने ॥ इति शरांग ॥

॥ अथत्र्यश्रजाति ॥

अंत्योपांतें त्रिषण्भोभ्यां संख्या कोश्टे नियोजयेत् ।
संख्या श्रेण्यां त्रयश्रजात्यां संख्या पूर्ति विलेखयेत ॥ संख्या क्रमः ॥

॥ अनुद्रुताधुच्यन्ते ॥

अंत्योपांते तृतीयंच चतुर्गिरि दशक्रमात् । अनुद्रुत द्रुतलघु गुरु प्लुत विलोमतः ॥ एवं त्वेतानि विज्ञेयं नष्टोद्दिष्ट प्रदर्शने ॥

मिश्रजाति

अंत्योपांते संप्तमंच चतुर्थश्चैक विंशतिः । संख्या श्रेणी मिश्रजात्यों क्रमात्कोष्टे विलेखयेत् ॥

॥ अनुद्रुताधुच्यन्ते ॥

अंत्योपांते त्रयष्टं पंचदश द्वाविंशति क्रमात् । अनुद्रुत द्रुतलघुगुरुप्लुत विलोमत । एतानि इति मिश्रजाति ॥

॥ खंडजाति ॥

अंत्योपांते बाणदिशः पक्षसंख्यामनुक्रमात् । संख्या श्रेणी खंड जात्यां प्रति-कोष्टे बिलेखयेत् ॥

॥ अनुद्रुतादि ॥

अंत्योपांते त्रिषट चैकादशषोडशक्रमात् । अनुद्रुत द्रुत लघुगुरूप्लुतमनुक्रमात् ॥ एवं त्वेतानि ॥

॥ संकीर्ण ॥

अंत्योपांते नवंचैव अष्टादश सुयोजयेत् । सप्तविंशति संख्या श्रेणीषु योजयेत् ।

॥ अनुद्रतानि ॥

अंत्योपांते तृतीयं च दंशचैकोन विंशति । अष्टविंशति संख्या च अनुद्रुत द्रुत क्रमात् ॥ एवंत्वेतानि-सर्व जातिषु नष्टोद्दिष्ट प्रकरंण सांग समर्थिनम्-

॥ अंग श्रेणी ॥

L 1	o 2	० 8	1 4	१ 5	9 6	६, 7	S 8	N 9	N 10	N 11	द 12	दो 13	+ 16

संख्या श्रेणी

1	1	2	4	8	16	32	64	128	256	512	624	1248	2496	4992	9984	19968

पाताल श्रेणी

1	3	9	27	81	243	729	2187

सूचना :– रत्नाकर में दी हुई सारिणी तथा प्रो. शिगराचार्य की "गायकलोचन" से तुलना कीजिये। निसंदेह रत्नाकर की संस्कृत समझने में सहायता की आवश्यकता होगी, परन्तु उसमें की गणना ध्यानपूर्वक देखने से समझी जा सकती है। हमारे उत्तर भारतीय संगीतज्ञों को इसकी कोई कल्पना नहीं है, परन्तु यदि आप किसी भी संगीत प्रधान नगर–जैसे तंजौर या मदुरा जावें, तो वहाँ ऐसे व्यक्ति मिल सकेंगे जो इसे आपको तुरंत समझा दें। मैं बाद में रत्नाकर के तालाध्याय का अनुवाद करूंगा तथा इन विषयों की विशद चर्चा करूंगा।

कृष्णा आयंगार से चर्चा

मदुरा, ५ दिसंबर' ०४

हम तंजौर छोड़कर प्रातः १० : २० की गाड़ी से निकले तथा "मदुरा" सायंकाल ६-३० बजे पहुंच गये। श्री कृष्णस्वामी के मित्र रामास्वामी पिल्लई, इनकम टैक्स इंस्पेक्टर, ने अपना सिपाही स्टेशन भेजा था। उन्होंने मैरियोट स्ट्रीट में देवराज मुद्लियार के घर पर उतरने की व्यवस्था की थी। घर छोटा है परन्तु स्वतंत्र होने से असुविधाजनक नहीं है। रात्रि को अंधेरा हो जाने तथा प्रवास में थक जाने के कारण घर के बाहर नहीं निकला। सुबह सात बजे बाहर निकला, तथा संगीत की पूँछ ताँछ करने लगा। इससे यह ज्ञात हुआ कि इस नगर में कृष्णा आयंगार नामक गायक अच्छे हैं तथा एक वकील सुब्रमणि ऐय्यर इस विषय का अध्ययन किये हुए एवं लिखने वाले बहुत गहरे विद्वान हैं। इसी प्रकार "पंचनद" इस नाम के एक प्रसिद्ध मृदंगवादक हैं। मैं रहता हूं उसके सामने ही एक संपन्न गृहस्थ रहते हैं। श्री रामास्वामी ने उनसे परिचय करवा दिया। उन सज्जन ने, कृष्णा आयंगार को सायंकाल बुलाकर उनका गायन सुनवाने हेतु कहा है। सुब्रमणि ऐय्यर हमारे घर के पास ही रहते हैं। उनके यहां कल जाना निश्चित हुआ है। रामास्वामी आने वाले है परन्तु यदि उन्हें आना संभव न हुआ तो स्वयं जाकर मिलूंगा कारण, यहां व्यर्थ समय नष्ट नहीं करना हैं। तथा संगीत ऐसे विषय में

आकर्षण के बिन्दु :–

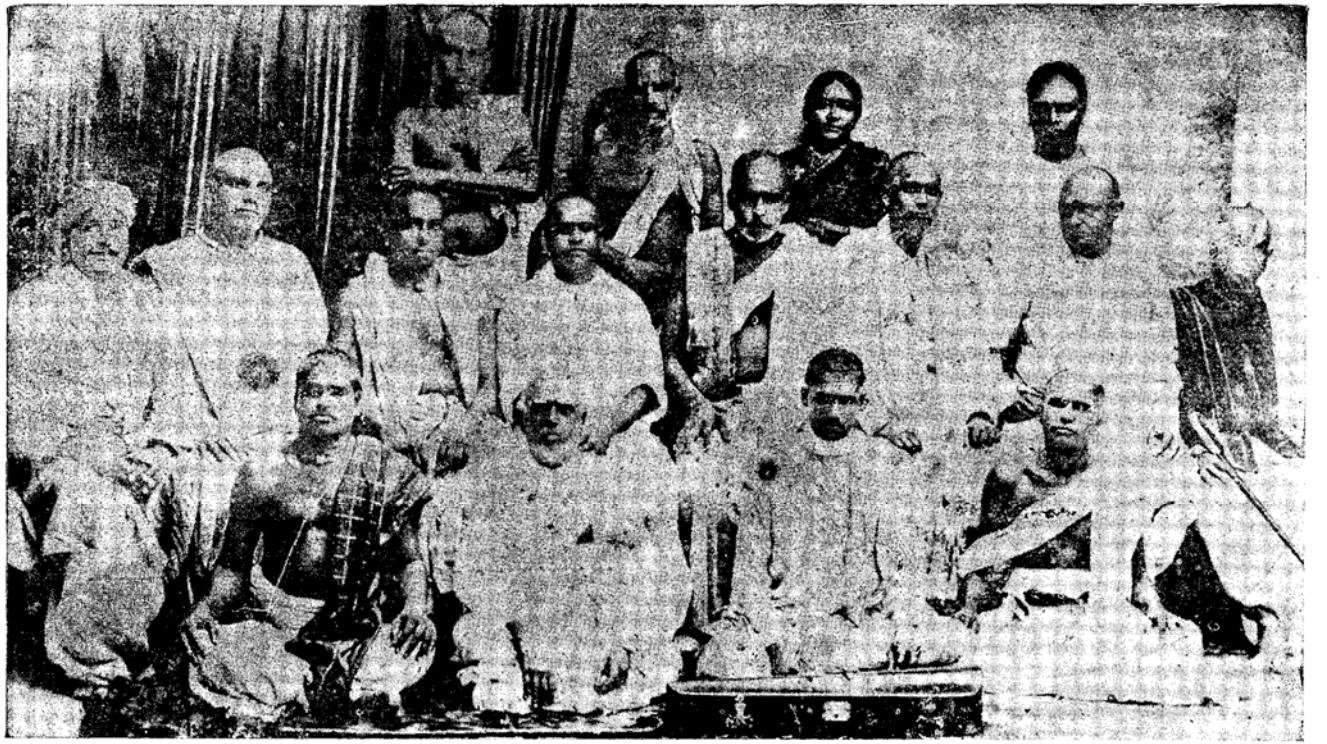

खड़े :– ३ वीणा धनाम्मल ४ आशाकानाम्बि पिल्लाई ।

मध्य पंक्ति :– १. मुत्तुस्वामी नायडू (सेक्रेटरी तोंडामण्डलम् संगीत सभा) २. तिरुपयानम् पंचपाकेश शास्त्रीगल ३. तंजौर नागराज भागवतर ४. कोनेरी राजापुरम वैद्यनाथ अय्यर ५. तिरुकोडिक्कवल कृष्ण अय्यर ६. हरिकेश नेल्लोर मुत्थैय्या भागवतर ७. वायलीन गोविंदस्वामी पिल्लाई ८. थाचूर शिंगर आचारी ।

खटपट करने वाले व्यक्तियों को स्वाभाविक रूप से हमदर्दी रहती है इस नियम का अनुसरण करने पर परिचय करवाने की आवश्यकता भी प्रतीत नहीं होती । भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर नगर देखने गया । ऐसा लगा कि तंजौर की अपेक्षा यह नगर अधिक संपन्न है । रचना अच्छी हुई है । मंदिर की चारों दिशाओं के दरवाजों पर जो टावर हैं वे बहुत ऊंचे है तथा उन पर नक्शी का अपूर्व कार्य किया गया है । ऐसा कहते हैं कि मंदिर एक हजार वर्ष पुराना है । उसमें "मीनाक्षी" नामक देवी है । रामेश्वर की यात्रा करने के लिये यहां होकर ही जाना पड़ता है । कृष्णा आयंगार के गायन हेतु रात्रि ७-३०/८-०० बजे का बुलाना आया है, अतएव वहां गया । ये लगभग ४५.५० वर्ष आयु के गृहस्थ होंगें । आवाज बहुत मधुर नहीं है । प्रथम "मुझे कुछ नहीं आता" ऐसा कहकर बाद में 'मुझ सरीखा कोई नहीं" ऐसा कहने वाले दिखे । उन्होंने मुझे बताया कि मुझसे उनकी भेंट मद्रास में हुई थी । उस समय कांग्रेस का प्रसंग था । मैंने उन्हें बताया कि मैं इस प्रान्त में पहिले कभी नहीं आया । इस पर वे बोले कि जो सज्जन आये थे उनका नाम नारायण राव वकील था । वे थोड़ा सा हिन्दुस्तानी गायन भी गाते थे । वे डेलीगेट थे । मैंने उन्हें मद्रास की प्रसिद्ध "वीणा धनम्" नामक गायिका तथा वीणा वादिका को सुनवाया था । उसे मोटी-मर्दानी आवाज से न गा सकने के कारण उसका गायन उन्हे बहुत पसंद नहीं आया । इस पर उनको भी बुरा लगा तथा वे बोलीं कि चूंकि उन्हें उनका गायन अच्छा नहीं लगा अतएव वे उनसे उनका परिश्रमिक नहीं लेंगी । मैंने उन्हें बताया कि ये नारायणराव मेरे परिचित नहीं है । एक दो बार की मुलाकात है परन्तु मुझे यह नहीं मालुम कि उन्हें गायन आता है । अस्तु । इसके उपरान्त कृष्णा आयंगर ने गायन प्रारंभ किया । "त्यागय्या" की कुछ कृतियां गाई । गायन बहुत रूचिकर नहीं लगा । जैसा अन्य स्थानों पर सुना, वैसा ही यहां भी लगा । दस-पांच बार वाह-वाह होने पर उनका मुंह खुल गया तथा (वे) बोलने लगे, मैं शास्त्र वगैरा नहीं सीखा हूं । स्वत: शिक्षित हूं, परन्तु मुझे सुनकर तथा अन्य लोगों को सुनकर आपको समझ में आवेगा कि मैं कितना शुद्ध गाता हूं । मैंने उनसे पूछा कि आपको शास्त्र ज्ञान न होते हुए भी शुद्धा शुद्ध कैसे समझता है । वे बोले कि वे रागों के आरोह अवरोह जैसे बताए गये हैं, हूं बहू वैसे ही गाते हैं । उसके उपरांत जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से हमारे प्रश्नोत्तर इस प्रकार हुए:-

प्र. महाराज क्या आप मेलकर्त्ता की ही पद्धति गाते हैं ?

उ. हां । इसके अतिरिक्त मुझे थोड़ा बहुत हिन्दुस्तानी संगीत भी मालुम है । मैंने मैसूर में आपके भास्कर राव का गायन सुना है । उनके कान्हड़ों की कुछ ताने मैंने उठा ली हैं जो इस प्रकार है । (थोड़ी निकालकर दिखाता हूँ ।)

प्र. इसमें "सां नी ध प" ऐसा अवरोह कहीं-कहीं करते हैं । ऐसा मत करिये । कारण ऐसा करने से हमारी आसावरी दिखने लगती हे । 'नीप" इस प्रकार का स्वर समूह हम कानड़ा में लेते हैं । इसके अतिरिक्त और कौन-कौन से हिन्दुस्तानी राग उठाये हैं ?

उ. (घबराकर) नहीं । मुझे वे गाने लायक नहीं आते ।

प्र. हमारे यहां ध्रुवपद, ख़याल, ठुमरी वगैरा है। आपके यहां ऐसी कौन सी चीजें है ?

उ. हमारे यहां त्यागय्या की कृति को उच्चकोटि का संगीत समझते हैं। पद, गीत, उनके कीर्तन हैं।

प्र. पल्लवी, अनुपल्लवी के स्वरों के क्या नियम हैं ?

उ. पल्लवी मध्य सप्तक में प्रारंभ होती है। तथा मंद्र पंचम के नीचे न जाते हुए मध्य व मंद्र सप्तक में ही गाते हैं। अनुपल्लवी में मध्य सप्तक के मध्य भाग से प्रारंभ कर तार पंचम तक विस्तार करते हैं चरण में तीनो सप्तकों का व्यवहार होता है।

प्र. क्या आपके कीर्तनों में एक ही चरण होता है ?

उ. यह विषय के अनुसार होता है। यदि विषय या कल्पना उतने में पूर्ण न हुई है एक दो चरण अधिक ले लेते हैं। परन्तु उसमें स्वर रचना भिन्न एवं विचित्र रखी जाती है।

प्र. यहां बड़ा विद्वान किसको समझते हैं ?

उ. यह मैं क्या बताऊँ ? (प्रतिपादक)– "इस नगर में ऐसा जानकार आपको नहीं दिखेगा। ज्यादा क्या कहूं, इस इलाके में इतना, शुद्ध राग गाने वाला एक–आद ही होगा)

प्र. क्या सुब्राम दीक्षित को जानते हैं ?

उ. वे बड़े विद्वान हैं। उन्हें, मैंने देखा है। उनका गायन आपको पसन्द नहीं आवेगा।

प्र. हिन्दुस्तानी गायन में आपको क्या अच्छा लगता है तथा क्या अच्छा नहीं लगता।

उ. उनके गायन में स्वर स्पष्ट व खुले हुए नहीं लगते। तथा वह गायन विलंबित लय में होने के कारण इस प्रान्त में पसन्द नहीं आता। उनके स्वर शुद्ध नहीं है।

प्र. क्या प्रत्येक स्वर का परिणाम भिन्न होता है ?

उ. हां। यह तो स्पष्ट ही है।

प्र. तो समझिये कि माया-मालव-गौल सप्तक लिया। दो तरह के कोमल रिषभ दो बार भिन्न प्रकार से लगाने पर राग बदलेगा कि नहीं (दिखाइये)

उ. (विचार करते हुए) परन्तु हमारे यहां ऐसे नहीं लगाते व उसे मानते भी नहीं। वे कहते हैं, स्वर १२ ही माने जायं। परन्तु ये हम वीणा पर लेते हैं व लिये जा सकते है।

प्र. उन्हें किस प्रकार लिया जाय व किस नियम से लिया जाय, इस विषय के नियम आपके यहां किस पुस्तक में दिये गये है ?

उ. मुझे वह ज्ञात नहीं। हम केवल कान के आधार पर रूचि के अनुसार लगाते है। नियमों का ध्यान रखकर नहीं।

प्र. परन्तु क्या इस प्रकार लगाना लोक एवं आपको पसन्द आता है ? तथा क्या ऐसा लगता है कि इस प्रकार न लगाने से राग खिलता नहीं ?

उ. हां यह सच है। परन्तु आपने जैसे गले से लगाकर दिखाये क्या वैसे आपके यहां व्यवहार में नियमित रूप से लिये जाते हैं ?

मैं. हां। वे हमारे यहां नित्य लगाये जाते हैं। तथा इस श्रुति भिन्नता से राग भी भिन्न लगने लगता है। परन्तु उसे कण स्वर कहें अथवा श्रुति भिन्नत्व कहें।

प्र. हिन्दुस्तानी गायन बहुत विलंबित तथा उसमें मींड अधिक होने के कारण पसन्द क्यों नहीं आता ?

उ. एक स्वर को लगातार दूसरा स्वर लेने पर 'सरगम" करते समय "सरगम हूबहू नहीं हो पाती। (उदाहरण देकर) इस प्रकार के कृत्य से "सरगम" नहीं होती इसीलिये हमारा गायन मध्य एवं द्रुत लय में होने से लोगों को बहुत प्रिय लगता है।

प्र. क्या विलंबित गायन अधिक कुशलतापूर्ण नहीं ?

उ. वह होगा। परन्तु यहां वह पसन्द नहीं आता। योरोपीय लोगों को हमारा गायन बहुत पसंद आता है तथा वे उसे लिख लेते हैं एवं प्रशंसा करते हैं।

प्र. क्या आपने हिन्दुस्तानी द्रुत गायन अच्छी तरह सुना है ? मेरे मत से, वे लोग जितनी जलद तानें लेते हैं वैसी आपके लोगों को ले सकना संभव होगा कि नहीं, यह एक, प्रश्न ही है ?

उ. वह मैंने थोड़ा सा मैसूर में सुना है। परन्तु उसके विषय में कुछ कह नहीं सकता।

प्र. आपके समग्र गायन में रिषभ एवं धैवत पर इतनी खींचतान क्यों की जाती है ? (दिखाकर)

उ. हंसकर। आप जो कह रहे हैं उसमें सचमुच कोई अर्थ तो है। परन्तु यहां ऐसा प्रचार हो गया है तथा वह शोभा देता है। हमारे गायन में हम जिस प्रकार स्वर लगाते हैं आपके यहां लोगों को उन्हे पहिचानने में कठिन लगेंगे।

प्र. वे बारह स्वरों के बाहर तो हैं नहीं हैं, फिर ऐसा क्यों ?

उ. फिर भी देखिये। (सावकाश गाकर)

मैं. "सरगम" ठीक होनी ही चाहिये इस चिन्ता में आड़ी तिरछी बहुत लम्बी खीचतान करते हुए गाने लगे।

प्र. महाराज, जब यह निश्चित हो चुका कि मैं स्वर समझता हूं व उसे गले से निकाल भी सकता हूँ फिर इस प्रकार के आडे-तिरछे, जल्दी-जल्दी गाये गये भोंड़े "हकार" गाकर फिर उसके स्वर ढूंडने में क्या आकर्षण है ? अब यह एक छोटा सा हिन्दुस्तानी स्वर समूह "मियां मल्हार" राग में लेता हूँ । क्या, आपको उसकी सरगम कर सकना संभव होगा ?

उ. थोड़ा थोड़ा गायेंगे तो हो सकेगा ।

प्र. परन्तु कुछ देर पूर्व आप बीच में ही अकारण जल्द बाजी क्यों कर रहे थे ? खैर वह रहने दीजिये । आदि सप्तक कौन सा है ?

उ. मायामालवगौल कारण, हमारे यहाँ वह पहिले सिखाते है ।

प्र. आपके यहां सभी गाने वाले क्या मेल के अनुसार गाते है ?

उ. नहीं । वे रूचिकर बनाने के लिये सदैव नियमों का उल्लंघन करते हैं और वर्ज्य स्वर लगाते है । मैं शुद्ध गाता हूं ।

प्र. मेरे मन में शिगराचार्य की पुस्तक में बताया हुआ लय-प्रस्तार सीखना है । क्या आपको आता है ?

उ. हां । मुझे सभी प्रस्तार आता है । शिगराचार्य के पास बहुत विद्या नहीं है । उनका भाई अच्छा था । यह पुस्तक (गायक लोचन) उसने लिखी है ।

प्र. वह छोड़िये । ताल के "दशप्राण कहते है, उसमें "मार्ग" चित्र ध्रुव दक्षिण' बताए गये है ये क्या थे यह आपको ज्ञात है क्या ?

उ. हां हैं । मैं कल आकर यह सब आपको समझाऊंगा । तालों की ३५ जातियां किस प्रकार होती है, यह बताऊंगा ।

प्र. उसकी आवश्यकता नहीं । तंजौर के एक पंडित ने उन्हें समझाया है । मुझे "मार्ग" 'यति' "प्रस्तार" लघुमेरु 'गुरूमेरू" इत्यादि समझलेना है ।

उ. ठीक है । आप कहेंगे वही समझाऊंगा । परन्तु यह सब आप किस लिये शोध कर रहे हैं?

प्र. मैंने बताया कि मेरे मन में उत्तर व दक्षिण के संगीत का मिलन करने की इच्छा है । इसके उपरांत अपना उद्देश्य थोड़े में समझाया । बाद में, थोड़ा सा गायन इत्यादि होकर कच-हरी समाप्त हुई ।

मत. ये सज्जन तंजौर के जगन्नाथ भट के समान दिखते हैं । करने की अपेक्षा बोलना अधिक है । आवाज मधुर नहीं है । दूसरे के गायन में दोष निकालने वाले व बीच- बीच में

चित्रक्रम ८

आकर्षण के बिन्दु :–

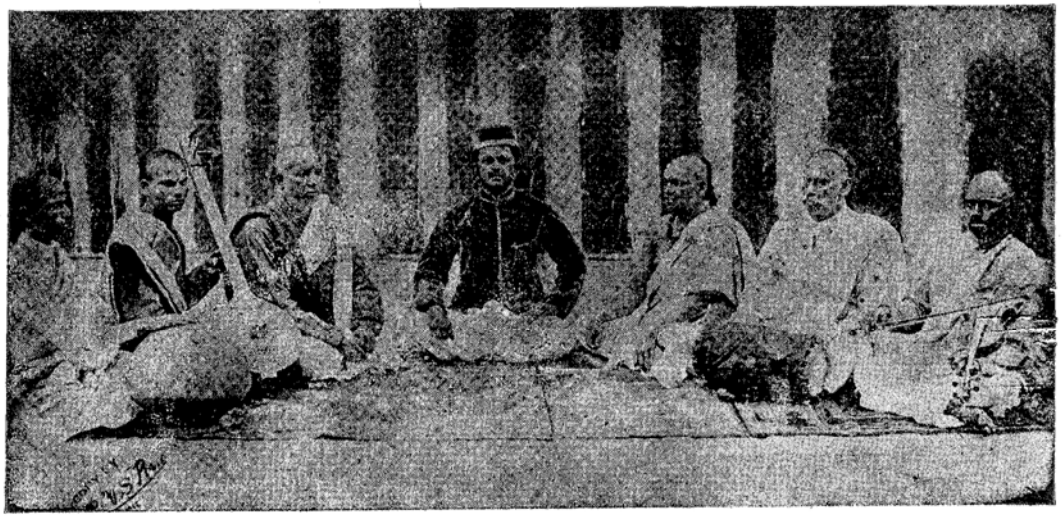

गडम् नारायण अय्यर, रामनाद श्रीनिवास अयंगार, पट्टणम् सुब्रम्हण्य अय्यर, पंडितुराई देवार, महावैद्यनाथ अय्यर, तंजौर मृदंगम् नारायण स्वामी अय्यर, वायलीन पांच अय्यर ।

शास्त्रीय ज्ञान का ढोंग रचने वाले है। एक भी संस्कृत ग्रन्थ नहीं देखा। यह भी नहीं सुना है कि मेलकर्ता के संबंध में संस्कृत श्लोक हैं कि नहीं ?

श्री सुब्रमणि अय्यर से भेंट — बुधवार ४।१२।०४,

आज प्रातः उठते ही श्री सुब्रमणि का घर खोज लिया तथा उनसे भेंट भी कर ली–परिचय स्वयं ही किया–प्रश्नोत्तर इस प्रकार हुए:–

मैं. मैं एक संगीत विद्यार्थी हूं तथा रामेश्वर जा रहा हूँ। मुझे शास्त्र से विशेष लगाव है। कल पूछने पर ज्ञात हुआ कि इस नगर में इस विषम में आपका विशेष चिंतन है तथा आपने विगत कुछ माह पूर्व इस विषय पर समाचार पत्रों में लेख भी लिखे थे तथा उनकी बड़ी प्रशंसा हुई। मैं इस प्रदेश में नया ही हू जिस कारण मैं उन्हें नहीं देख सका। परन्तु यदि आपको दिनांक का स्मरण हो तो उन्हें प्रेस से मंगलवार अवश्य पढूंगा। मेरा एक निश्चय है कि यदि किसी भी सुशिक्षित व्यक्ति ने इस विषय पर शास्त्र की दिशा में कुछ भी प्रयत्न किया हो तो उनके दर्शन कर उनसे विचार विमर्श करूंगा। इसी कारण आपके पास आया हूं। मुझे यह विदित है कि आपको सुबह फुर्सत रहना संभव नहीं हैं। इसी लिये आप जोसमय निश्चित करें मैं उसी समय आऊंगा तथा आप से दो बात समझ-लूंगा।

एय्यर:-(मैंने भेजा हुआ मेरा परिचय-पत्रउनके हाथ में था। उसे देखकर) मुझे यह जानकर बहुत आनंद हुआ कि आप सरीखे व्यक्ति इस विषय में रूचि रखते हैं। (पारस्परिक शुभकामनाओं के उपरान्त) इस विषय पर मैंने बहुत समय लगाया है तथा बहुत शोध भी किया है। मुझे संस्कृत ज्ञात होने के कारण और वेदान्त में रूचि के कारण मैंने संगीत के तत्वों का शोध किया है। अपने पूर्वजों ने संगीत सांसारिक सुख हेतु नहीं रचा, वरन् परमेश्वर से आत्मा के मिलन हेतु संगीत को लिया है। यह दुर्भाग्य की बात है कि इसका उपयोग आज लोग बुरे कार्यों हेतु करते है।

प्र. मैंने सुना है कि आपके यहां मेलकर्ता पद्धति प्रचलित है उसमें तथा रत्नाकर में क्या कोई संबंध है ? अर्थात, यदि बुद्धिमान लोगों ने परिश्रम कर रत्नाकर सरीखे एक आद ग्रन्थ से मेल रचना निकाली तो क्या प्रमाणिक मानी जावेगी ?

उ. अवश्य ही। मैंने रत्नाकर पढ़ा है वह मेरे पास है (मंगवाकर) मेलकर्ता–पद्धति रत्नाकर के समान ही है। मैंने तो स्वरों की रचना को वैदिक काल तक खोजा है।

प्र. वाह-वाह। यह तो आनंद की बात है। इस विषय में ऐसा प्रयत्न करने वाले की आवश्यकता है। आप अत्यंत दूर रहने के कारण हमारी ओर आपके लेखों की जानकारी नहीं हुई ? आपसे मेरी भी यह विनती है कि यदि ऐसी शास्त्रीय जानकारी हमारी तरफ प्रेस में प्रसिद्ध होने लगी तो उससे लाभ होगा। आपने बताया कि ७२ मेलों की रचना

'रत्नाकर' में है। मुझ जैसे शोधार्थीयों के सम्मुख यह बड़ा विकट प्रश्न रहता है कि मूल स्वर सप्तक ही कौन सा हैं ? क्या कृपाकर इस प्रश्न पर आप अपना मत व्यक्त करेंगे ?

उ. हां। बड़ी खुशी से। अपना वैदिक स्वर सप्तक, शंकराभरण का स्वर सप्तक हैं, यह मैंने स्थापित किया है। मै यह सात स्वर वैदिक स्वरों तक पहुंचाता हूं तथा उन्हें सहज में समझाता हूं।

प्र. यह सुनकर अच्छा लगता है। योरोपीय लोग जो यह दुराभिमान करते है कि यह उनका सप्तक है वे भी निश्चित रूप से झूठे सिद्ध हो जावेंगे। वेद कितने और किन स्वरों से गाते थे मुझे यह भी पूंछना है।

उ. मूल "ओम्" स्वर हुआ। उसमें से उदात्त, अनुदात्त व स्वरित इत्यादि स्वरों की योजना होती है, मैंने यह मेरे लेख में प्रसिद्ध किया है। मैंने पांच लेख लिखे हैं और छठा तैयार कर रहा हूँ।

प्र. बहुत अधिक विस्तार से समझने का कष्ट आपको न देने का निश्चय मैंने किया है। कारण, एक तो आप प्लीडर होने के कारण आपने समय की कीमत मुझे ज्ञात है, तथा दूसरे आपका पैर दुख रहा है और सूजा हुआ है (वैसा था भी जिस कारण आप को बैठे रहना सभव नहीं है।

उ. नहीं, नहीं। मैं आपको मेलकर्ता के १२ स्वर, अपने पूर्वजों ने कितनी सहज में समझाये हैं यह दिखाता हूं। (घर से वीणा मंगाकर तथा सामने रखकर) समझिये कि यह षड्ज का तार आपके सम्मुख है जिसकी लम्बाई २४" है अब इसके दो भाग करने पर बीचो–

△ △

बीच में ऊपर का तार "सा" मिलेगा अर्थात मेरू पर स्थित "सा" मध्य सप्तक का है। इसकी अपेक्षा मध्यभाग का "सा" तार सप्तक का है। मेरू की ओर से कुछ नीचे अर्थात ३/४ भाग में उत्पन्न होने वाला स्वर "मध्यम है। तार के २/३ भाग की आवाज पंचम है यह तीन स्वर कायम हुए कि काम बना। सभी १२ स्वर एक के बाद एक तुरंत कायम करना संभव होता है।

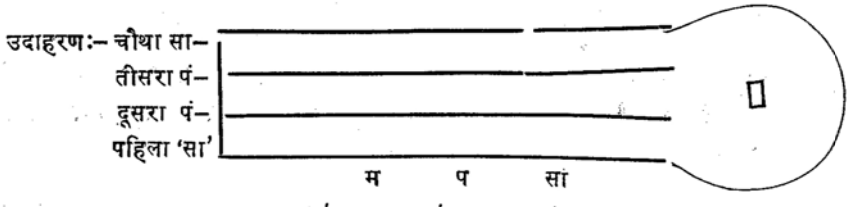

३/४ तार २/३ तार १/२ तार

पहिला "सा" का तार ––– इसके मध्यभाग में तार "सा"

२/३ तार पर पंचम स्वर है।

३/४ तार पर मध्यम स्वर है।

समझिये कि पंचम स्वर में हमने दूसरा तार मिलाया तथा वहां २/३ अंतर खोज कर दबाने से "रिषभ" स्वर मिलता है। समझिये कि असली तार "रिषभ" स्वर में तथा उसमें २/३ लम्बाई पर स्वर खोजा तो पुनः पंमच मिलेगा।

इस प्रकार, भाषण चलते हुए १० बजे का समय हो गया। अब उन्हें कोर्ट जाना था अतएव आगे का भाग स्थगित किया। मैंने कहा कि यदि मेरे इस संभाषण से आपको कोई कष्ट न होता हो तो आप जो समय दें उस समय मैं पुनः उपस्थित होऊं। वे बोले कि यह उनकी बड़ी रूचि का विषय है अतः उन्हें मेरे संभाषण से कोई कष्ट न होगा। सायंकाल आवें। सायंकाल सात बजे के उपरान्त भेंट करना निश्चित हुआ। घर आकर, उन्होंने जो अपने समाचार पत्रों में प्रकाशित लेख दिये थे, उन्हें पढ़ा। उन्होंने तीन लेख दिये थे जिनमें से दो गायन-प्रशास्ति के रूप में थे, यह कहा जा सकता है। एक में, गायन क्यों उत्पन्न हुआ तथा उसका उपयोग वगैरा क्या था, तथा दूसरे में इसी प्रकार की ऊपरी जानकारी थी। मेरी यह मान्यता है कि मात्र प्रशस्ति से शास्त्रीय गहराई प्रकाशित नहीं हो सकती। भक्तिमार्ग में गायन का उपयोग पहिले स्तोत्र गाकर होता था। यह बताने के लिये श्री अय्यर की आवश्यकता नहीं है जिस लेख में थोड़ी सी शास्त्रीय जानकारी देने की खटपट की गई है वह × नंबर का लेख है अतः उसे ध्यान से पढ़ा। उसमें यह विचित्र लगा कि श्री अय्यर को रत्नाकर कितना समझा है। कारण, जिसको यह नहीं समझा कि किस स्वर की कितनी श्रुतियां हैं, । वह लिखता है कि "ग, नि," इन स्वरों की ३, ३ श्रुति तथा "रे, ध, की २ २ श्रुति रत्नाकर है में आरंभ में "ओम्" शब्द निकला तदुपरान्त उससे स्वर, सप्तक, उदात्त, अनुदात्त स्वरित, प्रचय, इस प्रकार स्वर उत्पन्न हुए। इस प्रकार की थोड़ी 'फिलासफी' बताकर सप्तक को उत्पन्न करना प्रारंभ किया। मुझे पहिले एक पंडित से भेंट हुई थी जिसने इस प्रकार की 'फिलोसफी' बताई थी, उसका स्मरण हो आया। "ओम्" शब्द में अ + उ + म् यह पद है अ = अनुदात्त, उ = उदात्त, 'म' अर्थात इन दोनों के बीच का "स्वरित" = स्वर। इनके नीचे के स्वर इनके ऊपर के स्वर मिलकर प्रारंभ में तीन प्रकार के स्वर उत्पन्न हुए। इनके योग से सा, नि रे यह स्वर प्राप्त हुए। उनके प्रत्येक के पाँचवें स्वर की हार्मनी दिखाई पड़ी जिसे लेकर "सा" से "प," "रे" "से" "ध" व "नी" से "ग" का शोध हुआ। इस रीति से मध्यम स्वर की योजना बीच में करने से दो टेट्रा-कार्न्डस बने। इसके आगे जाना संभव नहीं कारण, आगे के स्वर नीचे के स्वर की जाति के ही परन्तु द्विगुण प्रयत्न से उत्पन्न होने वाले दिखे। उनका कार्य एक सा है उस पंडित ने इस प्रकार स्वरोत्पति बताई थी। परन्तु उसने निःश्चय पूर्वक यह नहीं बताया था कि वैदिक काल के इन सभी सप्तस्वरों की पंक्ति आज के प्रमाणानुसार ही तैयार थी। यह श्री सुब्रमणि अय्यर ने निश्चित कर दिया। उन्होंने कहा कि योरोपीय 'मेजर-मोड' ही अपना स्वर सप्तक है तथा यही वैदिक काल में था ऐसा मैं सिद्ध करता हूं। इस लेख को पढ़कर मैंने यह तर्क किया कि श्री अय्यर के शास्त्र के स्वरूप में अवश्य ही त्रुटि है। परन्तु मैंने उनसे और चर्चा कर तथा उन्हें अपने शास्त्र को सिद्ध करने का अवसर देकर बाद में आखिरी मत, निश्चित करने की सोचा है।

दोपहर को इस शहर के प्रसिद्ध मृदंगवादक पंचनद को श्री रामस्वामी मेरे यहां लाये उन्होंने भांति २ की तालों की गति, मोहरे, परण मुँह से सुनाई। वे सभी बहुत मनोहर थे। शब्द विभिन्न लयों में बहुत सुन्दर रीति से रचे गये थे। मैं यह पहिले ही बता चुका हूं कि इस प्रदेश में अत्यन्त साधारण गायक या वाद्यवादक भी वह मृदंग के बोलों का कुछ न कुछ ज्ञान रखता है। इन "पचनद" के बोल मुझे बहुत पसंद आये। उन्होंने सम, विषम, अतीत, अनागत, इन्हें तरह २ से कहकर हांथ से ताल देकर दिखाया। तंजौर में मुत्तया भागवत "ने कहा कि" "विषम" को प्रथक प्रकार नहीं मानना चाहिये, अतीत, व अनागत ही "विषम" है। शेष अतीत व

"अनागत" का प्रकार जैसा भागवत ने किया वैसा ही "पंचनद" ने भी दिखाया परन्तु इनके बधे हुए व ताल में बैठाए शब्द अच्छे लग रहे थे। मैंने उनसे विनती की कि आपके ये शब्द मृदंगाक्षरों सहित मैं लिख लूंगा। वे बोले कि आप ले सकते है,इसके उपरान्त मुख्य ३५ तालों की बात चल पड़ी। उन्होंने एक एक ताल की गति के शब्द कहना प्रारंभ किया। बीच बीच में मुझे ऐसा लगने लगा कि वे ताल के अंग के चिन्ह देखकर तत्काल मृदंग के अक्षरों की योजना करते हैं। यह देखकर मैंने पूछा कि क्या आप जाति के अनुसार शब्द योजना कर रहे है ? वे बोले हां। मैं नित्य बजा बजाकर चतुरस्त्र, तिस्त्र वगैरा जाति के टुकड़े याद कर रखता हूं, उन्हें ही चिन्हों के अनुसार प्रयुक्त करता हूं। मैंने उनसे, इन ३५ तालों की गति के बोल विलंबित, मध्य, द्रुत, इन तीनों लयों में माँगे। वे बोले मैं लिख दूंगा। (ऐसे लोगों पर भरोसा करना उचित नहीं रहता, कारण ये लोग अत्यन्त संकीर्ण बुद्धि के होते हैं, तथा उनका प्रयास सदैव विद्या छुपाना रहता है।) मुझे लगता है, जगन्नाथ बुवा ने मुझे दी हुई जानकारी के सहारे हमारे क्लब के तबलावादक को गतों की रचना कर सकना संभव होगा। "पंचनद" जैसे परवावजी के कसदार बोलाक्षर अच्छे दिखेंगे तथा वे अधिक शास्त्रीय व सुन्दर होंगे भी। परन्तु यदि वे उन्होंने न दिये तो दूसरा रास्ता क्या है ?

मैं इस प्रकार की इस इलाके में प्रचलित बोला अक्षरों की किसी पुस्तक की खोज में हूं "स्कंदस्वामी" नामक एक दूसरे व्यक्ति ने तमिल भाषा में लिखी हुई एक पुस्तक मुझे दिखाई है। वह मैं लेकर रख लूंगा। "पंचनद" "ने" सिंहनंदन" नामक ताल मुंह से पढ़कर सुनाया। वह बहुत लम्बा है तथा इसकी रचना चमत्कारिक थी। उसमें अनेक प्रकार के आघात गूंथे हुए दिखे। वह ताल रत्नाकर में बताया गया है। मुह से गत कहकर, हांथ से सिंह की गति के समान चिन्ह बनाकर (पैर वगैरा टिकाकर घात लगाये बैठना, छलांग लगाना इत्यादि) ताल पूर्ण कर दिखाया यह सब देखना कुतूहलपूर्ण था। मैंने पूछा, महाराज क्या इस ताल का नाम "सिंहनंद" सार्थक है ? वे बोले हाँ। इस ताल के चलते हुए इसमें सिंह की चाल का आभास होना चाहिये। ऐसा बनने वाले का मन्तव्य है। इसमें कितना तथ्य है कौन जाने ? तालों के नाम यर्थार्थ है। तथा रागों के भी वैसे ही है, यह कहना बहुत कुछ एक सा ही है। यद्यपि सिंह नंदन" में सिंह के समान आडे-तिरछे हांथ करके दिखाना संभव हुआ फिर भी प्रत्येक ताल में नाम के अनुसार "एक्शन" करना इष्ट है, अथवा वह इष्ट होता है यह कहना शायद सयुक्तिक नहीं ठहरता। सारांश यह कहा जा सकता है कि एक घंटा बड़ी मौज में व्यतीत हुआ।

"पंचनद" ने बताया कि उनके भाई फिडिल अच्छा बजाते हैं तथा स्वयं वे परवावज बजाते हैं। उनकी इच्छा उनके भाई को सुनाने की है उनके भाई "चंग" नामक छोटा सा लोहे का वाद्य भी कैसे बजाते है वह भी देखिये। वे उसमें छोटे रागों की चीजें तथा मृदंग की हजारों परणें कैसे बजाते हैं वह भी देखिये। यह सचमुच आश्चर्यजनक लगा। हमारे यहां छोटे बच्चे इस प्रकार के "चंग" एक एक पैसे में खरीदकर "टों टों" बजाते रहते हैं। परन्तु उसमें इतना काम होता हुआ मैंने नहीं सुना। कल हमारे पड़ौस में आठ वर्ष का एक छोटा लडका, भांति भांति के गायन के समान आवाजें अच्छी लय में निकालता हुआ मैंने देखा था। परन्तु उस ओर जानबूझ कर ध्यान नहीं दिया। यदि "पंचनंद" की बैठक हुई तो यह सब देखूंगा ऐसी आशा है।

कृष्णा स्वामी अयंगार से चर्चा –

इसके उपरांत कल के कृष्ण स्वामी आयंगार जिन्होंने मुझे लयप्रस्तार सिखाना स्वीकार किया था उन्हें हमारे सामने रहने वाले मित्र श्री गोपाल स्वामी नायडू ने मेरे यहाँ भेज दिया। उनके सम्मुख "गायक लोचन" नामक पुस्तक मैंने रखी तथा कहा कि इसमें लय–प्रस्तार किस तत्व के आधार पर किया गया है यह मुझे समझना है। यह पुस्तक तेलगू भाषा में लिखी हुई है। इसमें प्रस्तार कैसे करें यह उदाहरणों द्वारा दिखाया गया है। थोड़ी जानकारी मुझे शिंगराचार्य ने दी थी। इनकी सहायता से तथा तंजौर के सुब्रमणि शास्त्री, की सहायता से मेरी थोड़ी समझ हो ही चुकी थी। कृष्णा अयंगार को पुस्तक से समझा सकना संभव नहीं हुआ। उन्हें तेलगू का ज्ञान अच्छा न होने के कारण, पुस्तक में लिखा हुआ, समझा नहीं सके।

इस पर मैंने मेरी जानकारी सामने रखी तथा पूछा कि क्या पुस्तक का यह प्रस्तार, स्वर प्रस्तार की धरती पर किया है ? तथा उस प्रकार से उसे करके भी दिखाया। उन्होंने इसे देखकर कहा कि इसी का नाम प्रस्तार है तथा आपने जो समझ लिया वह ठीक ही है। अस्तु। उसके उपरान्त इस पुस्तक में जो विभिन्न मेरू चित्र दिये हुए हैं उनको समझाने के लिये कहा। ऐसा लगा कि उन्होंने इसके पहिले इन मेरू के संबंध में कभी देखा सुना ही नहीं था। वे एक प्रायोगिक संगीतकार है तथा इनके जैसा गायक यहां न होने के कारण तथा लोगों की आलोचना करके उनकी हंसी उड़ाने की पटुता के कारण, लोग इनसे घबराते हैं। परन्तु मैंने तो उनके सम्मुख पुस्तक ही रख दी तथा उनसे समझाने की प्रार्थना करने पर उन्होंने कहा कि यह तो शास्त्र का विषय होने के कारण उन्हें नहीं आता। यह मेरू मैं नहीं सीखा। इस पर, उस संबंध का भाषण ही समाप्त हो गया। वे यह भी बोले कि यहां आपको इस विषय को समझाने वाला मुझसे ज्यादा योग्य और कोई नहीं मिलेगा। अब चूंकि मैं यह विषय नहीं सीखा हूं वह आपकी समझ में भी नहीं आवेगा। मैं स्पष्ट वक्ता होने के कारण स्वीकार करता हूं कि यहां इस विषय का शोध करने वाला कोई कभी आया ही नहीं। हमारी तरह का गायन व हमारे राग आदि आप को सुनाऊं क्या? हमारे यहां मृदंग कैसे बजती हैं वह भी देखिये। परन्तु यह कह सकना संभव नहीं है कि दक्षिण में आपको शास्त्र की अच्छी जानकारी प्राप्त हो सकेगी। कहते है कि मद्रास में कुछ शास्त्रकार है। जैसे तिरूमल्लय नायडू इत्यादि सज्जन। वे लेख आदि लिखते भी है। उनको यह जानकारी हो सकती है। मैंने कहा कि श्री नायडू मेरे मित्र है तथा उनसे मेरा संभाषण हो चुका है। दुर्भाग्य से, उस समय मुझे इस मेरू की जानकारी प्राप्त करने का ध्यान नहीं रहा। वहां ग्रन्थकर्ता भी थे। जिस प्रकार से उनसे प्रस्तार के विषय में कुछ पूछा, वैसे ही पहिले से सूचित करके, एक दो दिन और ठहर कर यह भी सीख लिया होता। तथापि अस्तु, अब कोई उपाय नहीं है। मैंने यह मेरू समझ लिये हैं तथा उन्हे मराठी में लिखना भी है। सम्भवत : इटैय्यापुरम् में सुब्राम दीक्षित से यह जानकारी प्राप्त हो सकी तो देखूंगा। कृष्णा अयंगार ने बताया कि सुब्राम दीक्षित उनके अच्छें परिचित है। परन्तु उनकी भाषा आपको नहीं आती। संगीत जानने वाला दुभाषिया भी मिलना कठिन ही होगा। वे भी पुरानी तरह के क्रियाकुशल

संगीतकार तथा दीक्षित संप्रदाय के अभिमानी है । यह भी कहूं कि वे त्यागैया से द्वेष करने वाले है। वे यह समझते है कि उनका मत बड़े आदर का विषय है । आप उनसे अवश्य मिले तथा उनके विषय में आपको जैसा लगे वह मुझे बतावें। हिन्दुस्तानी व्यक्ति किसी बात का शोध किस प्रकार करते है यह मुझे अब समझ में आया । हम लोग भी अब इस विषय का शोध करेंगे । हमारे यहां श्री सुब्रमणि अय्यर एक बडे संगीत पंडित है उनसे आप भेंट करें । मैंने बताया कि आज प्रातः उनसे भेंट कर, उनसे थोड़ा बोल कर आया हूं । परन्तु आज प्रातः अकेले श्री अय्यर को ही बोलने का अवसर दिया है। अभी आठ बजे जाकर एक-एक विषय पर तर्क करने वाला हूं ।

कृष्ण आयंगारः- यदि आप वहां जाने वाले हो तो क्या मैं भी आपके साथ आकर आपकी चर्चा संवाद सुन सकता हूं ?

मैं. - मुझे कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु मेरे साथ में आने से उनको यह लग सकता है कि मैं जानबूझकर तमाशा दिखाने लाया हूं ।

कृष्णाः- वे मेरे बहुत ही अच्छे परिचित हैं । उन्हे मेलकर्ता सिखाने वाला मैं ही पहिला व्यक्ति हूं । अतः उन्हे बुरा नहीं लगेगा । फिर भी मैं उनसे १०/५ मिनट बाद में आऊंगा । ऐसा निश्चित होने पर निर्धारित समय पर मैं श्री अय्यर से भेंट करने गया । मेरे उपरान्त थोड़ी देर से श्री आयंगार भी पहुंचे । श्री अय्यर घर में नहीं थे । वे ८-३० बजे के लगभग आये । देर होने के संबंध में क्षमा याचना इत्यादि समाप्त होने के उपरान्त संभाषण प्रारभ हुआ । उनके मिहमान व हम सब मिलकर ७/८ व्यक्ति थे ।

मैं:- मैंने आपके सभी तीनों लेखों को ध्यान पूर्वक पढ़ लिया । उनमें शास्त्रीय चर्चा पर एक ही था, ऐसा दिखा ।

अय्यर - क्या आपको वे पसंद आये ? मैं इस विषय पर मेहनत कर रहा हूं । जो उपयुक्त है वह प्रसिद्ध भी करता हूं ।

मैं - हम दोनों मित्र ही है ऐसा मानकर निर्भयता से बोलने की अनुमति चाहता हूं । आपके दो लेख केवल संगीत प्रशास्ति विषयक होने के कारण मुझे ऐसा लगता है कि, हमारे यहां के लोगों को उनका अधिक महत्व नहीं होगा । संगीत से हमें मोक्ष मिले अथवा न मिले इस पर यदि हम विचार न करें तब भी चलेगा । मैं यह कहूंगा कि हमारे आज के पंडितों को अर्थात स्नातकों को (जिनको इसमें रूचि है [१] संगीत-जैसा था (२) जैसा है और [३] जैसा होना चाहिये- इस प्रकार के तीन विभाग कर प्रत्येक की उपयुक्त जानकारी से भरपूर लेख लिखने चाहिये । लेख पढ़कर हम क्या क्या सीखे हैं इसका हिसाब मिलना चाहिये । यदि वह मिला तो ही पाठक को संतोष होगा ।

अय्यर - जानकारी से संबंधित मेरे लेख के विषय में आपका क्या मत हुआ ?

मैं – मुझे डर लगता है कि यद्यपि आप रत्नाकर भलि भांति पढ़ा हुआ बताते हैं तो भी उसे समझने में किसी प्रकार की कहीं न कहीं आपकी बड़ी भूल हुई है । कारण अ + उ + म इससे संगीत के स्वर निकले, यदि यह मानकर चलें तब भी, रत्नाकर की श्रुति–स्वर रचना आपको ठीक तरह नहीं समझी, ऐसा प्रतीत होता है ।

अय्यर – किन कारणों से ऐसा प्रतीत हुआ ।

मैं – आप लिखते हैं कि रि, ध, की २/२, श्रुति, ग, नि की ३/३ श्रुति है, यह रत्नाकर के एकदम विपरीत है । उदात्त, अनुदात्त इनके स्थान व इनके अर्थ आपने उलटे स्वीकार कर लिये है । रत्नाकर में ग, नी, दो श्रुति के स्वर तथा रे, ध, तीन तीन श्रुति के स्वर बताये गये हैं । स्वरित के ऊपर उदात्त, नीचे अनुदात्त, ऐसा सर्वत्र समझा जाता है ।

अय्यर – हो सकता है श्रुति संख्या के विषय में मेरी गलती हो गई है । परन्तु उससे क्या कठिनाई आ रही है ?

मैं – मैं एक प्रश्न आपसे पूछता हूं कि षड्ज, मध्यम, पंचम उनकी ४/४ श्रुति का अर्थ आपने कहां, कौन सा व किस प्रकार समझा है वह बतावे । यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मैं केवल मतों की तुलना करने हेतु पूछ रहा हूं ।

अय्यर – यह प्रकार, रत्नाकर में बहुत अच्छा बताया है । वह कहता है दो वीणा "सदृशे कार्ये" अर्थात् समान आवाज की करिये । एक पर बाईस तार लगाइये । तदुपरान्त १–२-३-४ गिनकर चौथे पर "सा' स्वर है । इसका अर्थ ऐसा है कि पहिले चार तार एकदम बजाकर उनकी जो एकत्र ध्वनि होती है वह "सा" स्वर हुआ । अर्थात 'सा" स्वर में पहिली तीन श्रुति अन्तर्भूत होना चाहिये । इसी प्रकार 'री" की दो तारें व "ग" की तीन इस ढंग से यह बात कही गयी है । यह विषय बड़ा गहन है । यह अंतर्भूत होना ठीक से समझ लेना चाहिये ।

मैं – श्री अय्यर ! मुझे खेद है कि, किसी अज्ञानी व्यक्ति ने आपको भ्रमात्मक जानकारी प्रदान की है । इस श्रुति रचना में कोई गड़बड़ नहीं है । केवल सप्तक के २२ टुकड़े कर उनको २२ पृथक नाम दिये है । यह समझने में गलती होने के कारण ही ऐसा लगता है कि आपने शंकराभरण को आदि सप्तक समझ लिया है । वह आदि संस्कृत सप्तक एकदम नहीं है । इसी लिये मैं रत्नाकर के एक दो राग लेकर उनके सप्तक आपसे पूछने वाला था । परन्तु मुझे लग रहा है कि मेरी इतनी स्पष्ट उक्ति से मैं आपकों नाराज तो नहीं कर रहा हूं ? मैं आपके ऊपर नासमझी का दोष एकदम नहीं लगा रहा हूं । आप इस विषय को इतना समय देते हैं, यही अभिनंदनीय है । इस प्रकार अकेले काम करने से गलतियाँ सहज हो सकती है । प्रारंभ में मुझसे भी बार बार हुआ करती थी । उन्हें अन्य लोगों ने दुरुस्त किया । यदि आपकी इजाज़त हो तो संस्कृत सप्तक मैं एक क्षण में समझा सकता हूं । तथा मुझे ऐसी आशा है कि स्वयं

आप ही यह कहेंगे कि वह सीधा, सरल और सयुक्तिक है । [मुझे काफी थाट के सशास्त्र होने का निश्चित करना था इसलिये ऐसा कह दिया]

अय्यर – मुझे बिलकुल बुरा नहीं लगेगा। अपितु यदि अच्छी जानकारी मिली तो मेरे लिये उपयोगी होगी ।

बाद में, मैंने थोड़ी देर में ही उन्हें रचना समझा दी, तथा रत्नाकर आदि ग्रन्थों का स्वर सप्तक "खरहरप्रिया" मेल का होगा, यह दिखा दिया । उसको सुनकर एवं समझकर उन्हें आनंद हुआ तथा वे बोले कि सचमुच मुझे रत्नाकर आपके समान नहीं समझा। आपने कही हुई बात बहुत महत्व की है तथा मैं वचन देता हूं कि अब वह पुस्तक मैं इस दिशा से पुन ध्यान पूर्वक पढ़ूंगा । मैं आपका उपकार मानता हूं ।

मैं – मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं यह जान पाऊं कि आपने शंकराभरण सप्तक किस प्रकार आदि सप्तक ठहरा लिया हैं ? यदि वैसा ठहर सका तो हम पश्चिम हिन्दुस्तान के लोगों का बहुत काम बन जावेगा ।

अय्यर – मैंने देखा कि अपने सप्त स्वरों की रचना " सा " तथा उसके " पांचवे स्वर के आधार पर है । आपको १२ सेमीटोन चाहिए । वे ससी ऐसी व्यवस्था से मिलते हैं । " सा " का पांचवा " प " । "प" को 'सा" मानने से उसका पाँचवा " रे " – " रे " का पांचवा "ध" इत्यादि इत्यादि । इस विधि से करते–करते तथा "सा म" इनके संबंध से मैंने १२ सेमीटोन स्थापित किये तथा उदात्तादि की स्वर कल्पना वेदों में होने के कारण " शंकराभरण यह आधुनिक स्वर – सप्तक हमारे वैदिक काल का है , ऐसा निश्चित कर लिया । परन्तु आप जो कहते हैं वह अधिक सत्य रहा हैं। मैं उस पर विचार करूगा तथा आपको लिखूंगा। ऐसी समझबूझ से मैंने रत्नाकर पढ़ा ही नहीं । वह पुस्तक बहुत कठिन है , मुझे ठीक तरह से समझ में नही आई , ऐसा कहने को मैं तैयार हूं । यह शोध बहुत महत्व का है , ऐसा मैं मानता हूं । यहां विद्वान लोग इस विषय के शास्त्र की ओर ध्यान ही नही देते । इस कारण अधिक शोध नहीं हो पाता । इनको वह शुष्क सा लगता है ।

मैं– आपके समान यदि २/४ विद्वान भी यहां पर भी मिल गये तो बहुत लाभ हो सकता है। योरोपीय लोग इस ओर ध्यान दे रहें है । उनकी एवं मेरी परिचर्चाएं हुई हैं तथा जिस प्रकार " करहरप्रिय अपना आदि–स्वर–सप्तक है , उसी प्रकार उनका प्रथम–स्वर–सप्तक भी (डोरियनमोड) है यह देखकर उनको आश्चर्य हुआ। अपने यहाँ जों उपयोग मूर्च्छना का है उनके यहां भी वैसा ही था । (समझाया) वे अब हमारे संगीत के स्वर – सप्तक को बहुत प्राचीन मानने की तैयार है तथा हिन्दुस्तान से वह वहां गया , ऐसा भी वे अधूरे मन से स्वीकार करते है तथापि अभी भी हमको उसके सबूत जुटाने चाहिये ।

अय्यर – मुझे आपके साथ रत्नाकर के संबंध में तथा प्राचीन संगीत के संबंध में साधारण चर्चा

कर सकना संभव नहीं होगा कारण मुझे लगता है कि मेरी प्रारंभिक जानकारी ही त्रुटिपूर्ण है।

मैं – शायद, मैं भी त्रुटि कर रहा होऊँ। क्या आपने अपनी समझ के अनुसार रत्नाकर के रागों का विचार किया है ? वे राग कम से कम "ग्रामराग" जाति प्रकरण में गूथे हुए हैं। क्या आपने जातियों का विचार किया है ?

अय्यर – यह कहने में कोई संकोच न होगा कि मैंने उन्हें पढ़कर देखा, परन्तु वे बहुत कठिन है तथा मुझे एकदम नहीं समझे।

मैं – क्या आप सुब्राम दीक्षित से मिले है ?

अय्यर – हां। परन्तु उनको संस्कृत ग्रंथों की जानकारी नहीं है। वे मेलकर्ता के विषय में जानकारी दे सकेंगे।

मैं – क्या आपने मेलकर्ता के विषय में कोई संस्कृत पुस्तक पढ़ी है ? उस प्रकार की एकाद पुस्तक मैं ढूंढ़ रहा हूँ।

अय्यर – नहीं। परन्तु वह आपको किसलिए चाहिये ?

मैं – मैंने यह देखना चाहता हूं कि, मेलकर्ता कार ने अपनी पद्धति किस ग्रंथ से प्राप्त की, तथा वह थोड़े बहुत प्रमाण में रत्नाकर के साथ जोड़ना संभव है कि नहीं। यह पद्धति अत्यंत उत्तम, सादी व सरल होने के कारण किसी बड़े मंझे हुए व्यक्ति की होनी चाहिए। उसने रत्नाकर आदि ग्रंथ सहज ही देखे हों व उनके आधार पर परन्तु अपनी तरह से मेल उत्पन्न करने के विषय में यदि लिखा हो तो वह संगीत रत्नाकर से निकला होने के कारण अपनी इस महान परंपरा को ऐतिहासिक आधार मिल जावेगा। अन्यथा योरोपीय पंडित तो एकदम यह कहते है कि, उनके यहां आने के बाद उनकी कसब देखकर, अपनी गणित के सहारे यह रचना की गई है। मेरे मन में इस आक्षेप को दूर करने का यत्न करना है।

अय्यर – ऐसा यत्न बहुतस्तुत्य है। हमारे प्रदेश में आपके समान यत्न करने वाले यदि कोई निकले तो बड़े आनंद की बात होगी।

इस प्रकार चर्चा होने के बाद औपचारिक शुभकामनाओं के साथ हमारा संभाषण समाप्त हुआ। उधर कृष्ण आयंगर को मात्र श्री अय्यर की स्थिति देखकर आनंद होता प्रतीत हुआ। श्री अय्यर बहुत ही भले सज्जन गृहस्थ हैं। वे बुद्धिमान एवं उद्योगी हैं उन्होने हमारे विषय में तथा हमारी सुख सुविधाओं की आत्मीयता से पूछताछ की तथ मदद करने हेतु पत्र इत्यादि देने का भी प्रस्ताव किया। मैंने भी आभार प्रदर्शित किया। उन्होने कहा कि वे भी मुझसे मिलने के लिए आवेंगे। इस प्रकार संभाषण पूर्ण हुआ।

पंचनद से तालचर्चा — बृहस्पतिवार प्रातः १० बजे

"आज पंचनद" आये। उनके साथ दुभाषिया न होने के कारण कुछ भी चर्चा करना संभव न हुआ। परंतु उनसे तालों के बोल सिर्फ इशारों से ही लिख लिये। वे दूसरे कागज पर है।आज दोपहर में उनका व उनके भाई का गायन वादन निश्चित किया है। यदि आये तो देखें और क्या-क्या बातें सामने आती है।

दोपहर में निश्चयनुसार "पंचनंद" अपने भाई को लेकर आये तथा बाद में गायन – वादन हुआ। भाई ने "फिडिल "बजाया तथा "पंचनंद ने मृदंग बजाया। इस नगर में ये उत्तम है ऐसा मानतें हैं परन्तु तंजोर के "पंचापेगशी" तथा "सेतु-राम के समान विद्वान नही, ऐसा मुझे लगा। फिडिल को तो तीसरी श्रेणी में रखूगा 'पंचनंद "ठीक है"। उसने, गणेशताल, पार्वतीलोचन अदि ताल बनाये हैं। परन्तु ऐसा लगता है कि ये ताल नृत्य के उपयोग के अधिक है। इन तालो में गीत बहुत शोभादायी नही होंगे। इस पर से यह भी तर्क किया जा सकता है कि सात ताल मुख्य व उनकी ३५ जातियां यह गायकों के उपयोग के माने गये तथा उनपर गीत रचे गये तथा बाकी के अनेक ताल (१०८ आदि) तथा उनके लम्बे चौड़े अंग ये सब नृत्य के उपयोग के माने गये। "पंचनंद 'ने कुंभताल, सिंह-नंदन इनके बोल कहे, जो पढन्त के लिये उपयोगी होंगे। उत्तर में शास्त्रीय नृत्य पीछे हटता गया जिस कारण मुसलमान लोग कहने लगे कि "ये ताल ग्रन्थ के है।" इन पर गीत रचना क जा सकती है परन्तु उसमे केवल आवर्तन पर आवर्तन कहने होंगे। सारी करामात बंद हो जावेगी अर्थात तानबाजी रुक जावेगी और यह सत्य भी हो सकता है।

पंचनंद ने बताये हुए कुछ तालों के शब्द, श्रीकंठ

विलंब – तूक नक नक जक णं तूक तरी तक णं
०
तूक तरी किट तक

मताल – ता खूधणाखु सिणाखु तरेखु तकुं तक
। ० ।

पत्ति – ता धी ता क त झं ताटि
० – । २ ३ ४

मणि – ध्रुव तिस्त्र जाति । ० । ।
धाधी ता क त झं धी ता क त झं कत्तित तट्टीकत

सार – । ० । मठ्य तिस्त्र जाति
ता धी णु त्र धि मि ता क त्त झं त टिट्
१ से ४ ० द्रुत २ ३ ४

चक्र – ० १ रूपक तिस्त्र

तक नक झं तट्टि त क

० द्रुत । २ ३

लघु

पूर्ण – मिश्र ध्रुव १ ० १ १

ता क त्र झं त ट्टी ता ता झं त तट्टी कित्त तक तत्रा कत्त

उद्दीर्ण

धा णु ध्द नं तट्टी । धा (अ) णु ध्दानं तट्टी। (–) ३ बार

तक्कु ताकि किट तक्

कुल–रूप मिश्र ० । अंग

ता त्त ढिंगु त क त ढ़िंग्गु त ढिंग्गु तक

खंड जाति ध्रुव । ० । ।

रि त्ता त्ता रि त्ता रत्ता नो णु त्ता रि त्ता धिं तक

उदय ताल १ ० १ खंड

धी त्त क णं तट्टी ता –त क्क णं तट्टि तक–घटि कित त क्क

राज ताल ० १ खंड

झं तट्टी त्रकणं तटि किट तक

ध्रुव संकीर्ण । ० । ।

धा धी ता, क त्र झ तटि क्कणं तकित क तक धी

झंतटिट्णं तट्टि किट तक

गणेश विनायक

ताढि मित ढिंऽकु कु ताढिऽकु ताऽऽऽ । त ढिंऽगु द णंऽ द

१ ० ० १ ०

के धिऽत्त धाऽऽऽ । ग ज मु ख ताऽ लं ऽ अ न ग ल

। ० ० ।

क ल प्लु त भु लु इ द गो ऽइन हाऽ तं ऽगी ऽकि ड् ढ्र क । धीऽ क्कु त्ता ॥

० । ० । ० । ०

पार्वतीलोचन ताल

धि ध्दि त्त्यै त्यै ययं त्त धि ध्दि त्ता ता थै त्यै त त्त त्था त क ता धींग ण ता

। । । । ० । । । ० ।

घटच खच्च पंद (लम्बी विश्रान्ति)

धा धी त क धी धा धी न्न ता

। ० । । । । – ०

सिहनंदन = १२८ अक्षर, ३२ मात्रा

कुंभताल

धि धि धि धि त्यैं (–) धि त्यैं धि त्यें त्यैं युत त्त त्त

। । । । । । । ०

थै थै थु त त्त त्त ता थै थैं मु त त्त त्ता ।

। जल्दी ० जल्दी लम्बा लम्बा लम्बा

पंचनंद ने ये ताल मुंह से पढ़कर तथा अत्यन्त सुन्दर हस्त मुद्राओं से दिखाये। इनका वर्णन केवल कागज पर करने से प्रात्याक्षिक के लाभ मुझे बहुत अधिक नहीं दिखता, अतएव ऐसा नही करता। इन मुद्राओं की वैसे कोई आवश्यकता भी नहीं है। किसी भी रीति से चाल-ढाल के अनुरुप हाथ से ताल देने से काम बनता है। अच्छी तरह कहने से यहीं अंतर पड़ता है कि गीत सुनने में काने को अच्छा लगता है दीर्घ ह्रस्व अक्षर कहे जाते है अतएव यदि उनका ध्यान रखकर कहा गया तो अशुद्ध नहीं होगा। ये ताल रत्नाकर से मिलाकर नहीं देखें हैं। स्पष्ट है कि जिस प्रकार राग रागिनी में अंतर है उसी प्रकार तालों में भी होगा ही। इनका यह अंतर ढूंढकर बाद में लिखूंगा।

पंचनंद मेरे यहां प्रात:काल आए थे अतएव उनके आने का लाभ उठाकर उपयुक्त बोल लिख लिये। मुझे लगा कि यदि उनसे पुन: भेट न हुई तो यह एक काम रह जावेगा। ऐसा एकदम नहीं कि विभिन्न प्रकार के तालों की गति के ठेकों के बोल बजाना आ जावेगां। परन्तु हमारे क्लब के पांडु को उनका उपयोग होने पर उसे वें बताऊंगा। उनमें कम ज्यादा फेरबदल किस तरह से किया जा सकता है यह अच्छी तरह मेरे ध्यान में आ गया है।अत:उनका उपयोग करते हुए अच्छी गतें बांधकर लिख रखना संभव मुझे लगता है कि कभी किसी को उनका उपयोग भी हो सकेगा। अर्थात यह सत्य है कि पंचनद ने जिस सुन्दरता से उन्हें कहा उस प्रकार कह सकना मेरे लिये संभव नहीं होगा। परन्तु यह देखना है कि यदि किसी हुनरमंद तबलावादक के पास वे पहुंच गये तो वह उनका करेगा कि नहीं ?

शब्द

दै धण दण दण दण दा (अथवा) धा

तक दणत् दणत् दण झुण्ता।

क्षण झुण्त झुण्त झुण दिमिता (या) धा।

दिमि दिमित दिमित दिमि किट्तक।

(जल्दी) कड् (धा) तं जगणक जगण शा।

शी तंजपुरी जगदीशा।

म हा (ग) पं च न पंचन दीशा

जय पांड्यराज शंदेशा।

मलर पंच नडन नडराजा ।
शुंच खंडणि अणयं त्यागेशा ।
खडणुंचे वैदीशा ।
शिव रंचित श्वैद वनीं शा ।

(मधुरा – पंचनद ने कहे हुए बोल)

पुस्तक नाम – 'साउथ इण्डियन मेलाडीज एंड" देयर केरेक्टसटिक्स 'महावैद्धनांथ संप्रदाप के अनुसार तमिल से

(१) अठणा

आ. सा रें म प ध नी सां । अ. सा नि सां ध प म ग रे स ।
– –

स ग प ध

नि. –सा– रे म प धा – – – पमाप सां निसां . निसां रेंमं ,रें सं नि सं रें सां
नि सं रें सां निसा धा – – –पध नि धानिप मप गा – – गारेसा
निस धनि सारिस निसरेम – – –पधाप म पंसधा – – –
धनि सरिगसा निरोस पधाप मपमगा –– – – रीसा

सुचना:-तंजौर के जगन्नाथ भट्ट बात बात में कह गये कि श्री नागोजीराव तथा सामनाथ अय्यर ने "संगीत पारिजात" के रागों की सरगमों का उपयोग कर यह छोटी सी पुस्तक तैयार की है । वे मुझे सहायक के रुप में बुला लिया करते थे अतःमै वहां जाते रहता था। इसी कारण मैंने उनकी यह खटपट देखी थी। खैर मै पारिजात से मिलाकर इसे देखने वाला हूं ।

२ आशावेरी –सारेग्पध

आ– सारेमप धसं । अ. संनी धुप मग रे स
– – – –

स्वरूप :– सा – रेमपधा – – – पमपध सां रौंगांरी सां री सां निसां
पधाप ,मपध नीधप मधप , मपमगा – – – रीसा , नीसाधा

ध सरिगारीस . मयगा – – –प मा – – पधाप म प ध प मपामगा – – –

रीस , नीसरीसा रीनिसा मपधपागमपमगा – – – रीसा ।

३ आँनंद भैरवी

आ. :– सा ग री ग म प नी सं । अ. सां नि ध प म ग री स
– – – – –

वि.– स्वरूप—सा – नि सगारि गम पा. म प सां नीसांनि सां ,

रींमं गं रीं गारीसं , सांनि्धनीसां नि संरीसा निधपा पानीपा षा

म गा – – – ग म प ध प म ग री , गामा गमपगानीसा , सांरें सारें

ध पा म ग रि गा पा , पामगाम , गामापमापगारीनी ,गारीसा ,सारि

सनि – – – – सनिधाप ,निसा , सामगारि, सरिगारी ,गारीस, नि नि सा ।

सूचना:– नमूना के तौर पर यह राग लिखे है । इनमें ऐसा /\ चिन्ह कोमल स्वरों का है । इनको मैं ऐसा k लिखा हूं । सो(सी?) इस प्रकार की निशानी तार सप्तक की है। सा– इसप्रकार की निशानी मंद सप्तक की है । मध्य सप्तक के स्वरों की निशानी नहीं है । वि = रागों का विस्तार ऐसे करना है जहां दीर्घ अक्षर है वहां अधिक ठहरना है जहां स्वरों के आगे --- ऐसी बिन्दिया दी गई है वहां आ आ आ ऐसे स्वरों के झोंके देना है । एक बार " रे " एवं "ध ' पर आंदोलन कैसे करते है , यह सीख लिया कि पढ़ना बहुत कुछ आसान हो जावेगा ।

श्री नागोजीराव ने अपने गायको की सहायता से यह लिख रखा है तथा वह पुस्तक मुझे भेंट स्वरूप में दी है।इसमें कर्नाटकीय सौ रागों के स्वरूप लिखे हुए हैं।एकबार"सारेगमपधनी" स्वर तमिल भाषा में पढना आ गया तो अन्य दूसरी जानकारी की कोई आवश्यकता न रहेगी।तब रागों का स्वरूप धीरे-धीरे पढ़ते हुए गा सकना संभव होगा।मैंने यह सात अक्षर सीख लियें हैं अतएव ये सौ राग "नागरी"अक्षरों में यहां सविस्तार नहीं उतारेंहैतथा ऐसा करने के लिए इतना समय भी नहीं हैं।बाद में यदि आवश्यक प्रतीत हुआ तो धीरे धीरे कर सकूंगा । वर्तमान में मेरा उद्देश्य इतना ही देखना है कि यह टूकड़े ऐसी ही लेकर हिन्दुस्तानी ढंग से सुधार करते हुए गायकों से गवा लेने पर कैसे लगते हैं?जो अच्छे लगे उन्हे यथावत रखकर एक एक राग को हिन्दुस्तानी स्वरूप लिख रखना है तथा नागोजीराव जैसी ही एक छोटी सी पुस्तिका" फीचर्स आफ हिन्दुस्तानी मेलाडीज"को तैयार करनाहैं।इसे देखकर यहां के लोगों को उस संगीत की कुछ कल्पना मिलेंगी । दोनों संगीत के मिलन का उद्देश्य लेकर प्रयत्न करना हैं।मैं यहां की संगीत सुनता चला आ रहा हूं।फिर भी संस्कार इतने प्रबल है कि यहां की ताने लेने की पद्वति आदिम लगती हैं । कुछ कुछ बातें पसन्द भी आती है, तथा हिन्दुस्तानी ढंग अधिक सरस लगता है। कल श्री अय्यर (मादूरा)भी कहने लगे कि यहां हिन्दुस्तानी

संगीत जन-साधारण का चित्त तत्काल लुभा लेता हैं। तथा जो कर्नाटकीय अधिकारी संगीतज्ञ है उनको यह पसंद नहीं है। मैं यह मुद्दे की बात अपने मत की पुष्टि हेतु लेता हूं।

मदुरा, शुक्रवार १ दिसम्बर ०४

एक स्फूट विचार

जब मैं बम्बई में था तब मेरे मित्र कहते थे कि यदि मैं दक्षिण की ओर जाऊं तो मुझे हमारे प्राचीन संगीत की जानकारी पूर्णरूप से मिलेगी। वहां सभी कुछ शास्त्र के आधार पर उन्होने सम्हाल कर रखा है। यह सुनकर मेरे मन में बड़ा उत्साह था कि फुर्सत से वहां जाकर गहराई से शोध करते हुए जो जानकारी मिलेगी उसे मैं अपने मित्र के सम्मुख रख सकूंगा। मुझे ऐसे लगने लगा हैं कि "दूर के ढोल सुहावने" जैसी अवस्था मेरी हो गई है। यहां संगीत के संस्कृत शास्त्र ग्रंथों की लोगों की गंध तक नही है। हर कोई बेहत्तर मेलकर्ता के उपरान्त की बात करेगा। इस मेलकर्ता का सस्कृत आधार हैं या नहीं, यह भी उसे मालूम नहीं। "श्रुति" का (अर्थात कीनोट) तक तथा 'मुर्च्छना' का अर्थ स्वरों को एक प्रकार का (व्यवहार) आघात (आपरेशन) "यहां तक जिनका अज्ञान हैं। "ग्राम" किसी किसी ने तो यह शब्द ही नहीं सुना हैं। "वादी" "संवादी" इनका उपयोग तो समझाऊंगा। उतना ही "जाति प्रकरण" केवल यह शब्द ही किस पुस्तक में है यह ज्ञात नहीं। मुझे यह सूचना मिली थी कि तंजौर में ज्ञान का बड़ा खजाना मिलेगा परन्तु वहाँ भी यही स्थिति है। इसमें सदेह नहीं कि यह सब देखकर मन में बड़ी निराशा हुई हैं। लोगों को कहना है कि अब "तिन्नवेली" के समीप इट्टैय्यापुरम में सुब्राम दीक्षित रहते है उनसे भेट हुई तो समझिये कि संगीत का परमोच्च शिखर ही देख लिया। अतएव वहां और संभव होने एवं आवश्यकता पडने पर त्रावणकोर जाने का निश्चय किया हैं। मालूम नहीं परमेश्वर क्या क्या दिखावेगा। यह दुर्भाग्य का विषय है कि शास्त्र की जानकारी कुछ प्राप्त करने की अपेक्षा मुझे वह बतानी पड़ रही है। यहां ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय पक्ष के संबंध मे उदासीनता हैं। अच्छे अच्छे गायक लोगों ने ग्रंथों के नाम तक नहीं सुने है। अब यहां के उदासीन गायकों का प्रायोगिक गायन सुनने बैठने से, बम्बई के संगीत मित्रो को मैं शास्त्रीय क्या दे सकुंगा; मेलकर्ता पद्धति तो पंधरा मिनट में चारबार भी समझा दी जा सकेगी इसके तुरंत बाद ही तालों की जानकारी भी दी जा सकेगी अब बचे हुए काम में यहां के गायन और वादन के नमूने वहां से लोगों की दृष्टि से लाना है श्री गोपालराव ने यह करना स्वीकार किया परन्तु इस कार्य हेतु मैं वचनबद्ध नहीं हूं। अतएव नहीं हो सका तो भी यह मेरा दोष नहीं होगा। पूना के अंणा साहिब धारपुरे से मैंने शास्त्रीय प्रश्न पूछे थे। उन्होंने उनके उत्तर दिये ही नहीं। परन्तु उन्होने वे प्रश्न हमारे एक मित्र श्री बनहट्टी को दिखाये थे। उस पर श्री बनहट्टी ने उत्तर दिया था कि श्री भातखंडे ने दक्षिण का संगीत देखा समझा ही नही है, जब वे वहां जाकर देखेंगे तब तत्काल समझ में आवेगा कि उसमें ग्रंथों का कितना अनुसरण किया है, तथा पुर्ववर्ती नियमों को कितनी

सुन्दरता से उन लोगों ने संभालकर रखे हैं। यदि श्री बनहट्टी के कहने का भाव ऐसा है कि इस बीसवीं सदी में प्राचीन संगीत खोजना मूर्खता हैं तथा दक्षिण का संगीत देखकर तो मेरा पूर्णतःसमाधान होगा,कि वर्तमान संगीत में ग्रंथों की गंध तक नहीं है तो वह सचमुच एकदम सत्य है । परन्तु इसे मेरे प्रश्न का समाधान कारण उत्तर नहीं समझा जावेगा । अण्णा धारपुरे ने कम से कम इतना तो स्पष्ट कहा कि मेरे प्रश्नों के उत्तर उनको दे सकना संभव नहीं है। यह कहना पड़ेगा कि मुझे अभी तक मिले हुए लोगों में अंण्णाधारपुरे की अपेक्षा अधिक चिंतन किया हुआ व्यक्ति नहीं मिला । परन्तु इससे काम बनता नहीं है।उनकी भी कठिनाईयों का निराकरण हुआ हैं । ऐसा नहीं है । रत्नाकर के कुछ राग "जाति प्रकरण" के अनुसार स्पष्टतः उसी सप्तक में गा बजाकर दिखाया जा सकेगा ? ठीक रत्नाकर के सदृश्य अथवा दूसरे किसी भी ग्रंथ के आधार का"रिध"कहीं भी है संगीत क्या रागबोध में मुर्च्छना" व जाति प्रकरण क्यों नहीं है?तथा उसमें "धी" की कोमल विकृति की योजना क्यों की गई है ? क्या ऐसा संगीत दक्षिण हैं ? क्या रागबोध का शुद्ध-सप्तक दक्षिण का ही है ऐसा ठहरेगा ? मूल सप्तक (वैदिक) कितने व कौन से स्वरो का तथा वह कैसे-कैसे बढ़ते गया, इसका इतिहास कहां प्राप्त होगा ? ग्रामों की भिन्न भिन्न रचना करने का क्या उद्देश्य था ? तथा वे किस कठिनाई के कारण पीछे रह गये ?

उनकी आवश्यकता बाद में क्यों नही रही ? इत्यादि इत्यादि । इसप्रकार के प्रश्न मैं महत्वपूर्ण समझता हूं , जिन पर विद्धार्थियों को विचार करना चाहिए । हमारे प्रारंभिक "चर्च मोंड" ,काफी या भैरवी , दक्षिणी "कहरप्रिया" व तोड़ी ये सभी पाश्चात्य डोरियन स्केल"ही है ऐसी जानकारी अपने समक्ष हैं। ऐसा लगता है कि इसका उपयोग करते हुए यदि हमने ग्रीक संगीत पर प्राचीन ग्रंथों को देखा तो अपने संस्कृत संगीत की कुछ गुत्थियाँ सुलझ सकेंगी । यहां दक्षिण में ऐसा ही एक सरल मार्ग ढूढ़ लिया और कहने लगे कि हमारे ७२ मेल अनादि हैं तथा सभी स्थानों के संगीत शास्त्रों ने उनसे संगीत तत्व लिये हैं । ऐसा कहने में तथ्य एवं बुद्धिमता नहीं है, यह सहज ही समझ में आवेगा। पुरातत्व की दृष्टि से ही सही परन्तु जो संगीत अब प्रचार में हैं वह किन्ही कारणों से विकास के किन्ही नियमों से आज ऐसा है । और वह संगीत की प्राचीन पुस्तकों(ग्रंथों)से निकलता हुआ होना ही चाहिये।देश पर आये हुए विदेशी राज्यकर्त्ताओं का प्रभाव उनके द्वारा लाया हुआ सगीत,समाज के आचार विचार में होने वाले क्रमवार बदलाव तथा उनकी वजह से संगीत के सम्भावित परिवर्तन इन सबका परिणाम कैसे कैसे होता गया इसका शोध करते हुए एक अखंडित एवं सुसंबद्ध इतिहास , लिखना संभव होना चाहिए । तभी तो यह कह सकना सम्भव होगा कि संगीत का हमें सहीं ज्ञान हुआ, ऐसा मेरा मत है । देखिये इस दिशा में पाश्चात्य लोग कितना प्रयत्न कर रहें हैं तथा इससे विपरीत अपने लोग उदासीनता में पड़े हुए यह अपना भूषण मानतें है कि उनका संगीत एक बड़ा गूढ़ और रहस्यमय विषय है । पाश्चात्य प्रोफेसर लोग यह प्रश्न करते है कि हम यह सिद्ध करे कि हमारा संगीत प्राचीन है । हम उनको इतना ही उत्तर दे पाते हैं कि हमारा संगीत

प्राचीन हैं परन्तु वह क्या था यह आप अपनी बुद्धि से खोजिये। हम केवल उसे फेंक देकर एवं आपका संगीत सीखकर आपकी पुस्तकों के आधार पर पंडित बनेंगे। दक्षिण में बहुत से लोग बुद्धिमान हैं, सैकड़ों स्नातक हैं, संगीत के रुचि के नाम पर त्यागय्या के पद, कीर्तन गुनगुनाना अथवा जिनका शरीर (आवाज) अच्छा नहीं वे वीणा उठाकर दस पांच रागो के स्वर पीसते रहना इतना मात्र है। यहां संस्कृत भाषा का ज्ञान अधिक व्यक्तियों को है, परंतु तंजौर जैसे निकटस्थ स्थानों में, संगीत पर कितने ग्रंथ है यह बताने के लिए मेरी आवश्यवता पड़ती है। मैंने पैलेस लाइब्रेरी में रत्नाकर की हिन्दुस्तानी में भाषान्तर की हुई एक विशाल पौथी देखी। उसके स्वराध्याय, रागाध्याय, एवं तालाध्याय मैं मांगने वाला हूं। (नकल लेने वाला हूँ)। वह पुस्तक हिन्दी में है और यहां हिन्दुस्तानी किसी को एकदम नहीं समझती जिसके कारण यह निरूपयोगी है। उस पुस्तक में संस्कृत का हिन्दी भाषांतर किया हुआ देखा परन्तु स्पष्टीकरणार्थ लिखी हुई टिप्पणियाँ देखीं। इस विषय पर अधिक पढ़कर लिखूंगा। दक्षिण में लोगों का उनके अपने संगीत का बड़ा अभिमान दिखा वे कहते हैं अरे! आपके उत्तर की ओर संगीत में शास्त्रोक्त नियम,रीत-रिवाज इत्यादि नहीं है।उनको यह कहने का साहस तो नहीं होता कि वह अच्छा नहीं लगता। कारण वे स्वयं टर टुराते रहते हैं कि हिन्दुस्तानी संगीत जनसाधारण को रुचिकर होने के कारण यहां के गायक लोग शास्त्रीय संगीत में अजीब-अजीब फेरबदल करने लगे हैं। मैंने कहा कि यदि योरोपीय लोग यह आक्षेप करें कि उनके आने पर उनका संगीत सुनकर आपके किसी गणितज्ञ ने मेल पद्धति निकाली, तो आप यह केसे सिध्द करेगें कि आपका संगीत प्राचीन शास्त्रों पर आधारित हैं "त्यागय्या" के कीर्त्तन यहां के शास्त्रीय गीत बन गये, दीक्षित का केवल नाम भर शेष हैं। वे क्या गाते थे उनका गायन कैसा था यह उनको ही मालूम। 'त्यागय्या" की मृत्यु हुए मात्र ५० वर्ष हुए है। इस पर मेल-कर्ता की श्रेष्ठता एवं प्राचीनता की प्रशंसा करते रहने का अधिकार इन लोगों को है भी ? प्रशंसा का मुल्यांकन भी कितना होगा ? मेल रचने वाला बड़ा चतुर था और होगा भी परन्तु मूल का परित्याग करके प्राचीन ग्रंथों से नवीन रचना किस प्रकार हुई, अथवा उन दोनो का पारस्परिक सम्बन्ध गुप्त रखकर मेल प्रथा का प्रारम्भ मैंने किया ऐसा स्वयं का गुणगान करने वाले की प्रशंसा करना मुझे अच्छा नही लगता। व्यंकटमखी ने यदि यह रचना की है तो उन्होंने 'किस ग्रंथ के आधार पर की तथा रागों को प्राचीन नाम क्यों दिये, यदि इसका स्पष्टीकरण किया होता तो उनकी भारी प्रशंसा करता। इससे यह दिखेगा कि उस संगीत यात्रा में जिस शोध कार्य में निकला हू, वह कहने लायक सफल नहीं हुआ। जिधर जाओ उधर यह सुनता हूं कि अरेरे ! यहां के कोई बड़े विद्वान, शास्त्र जानने वाले को ऐसा ही करते हैं तथा शास्त्र को साहित्य कहते हैं,) बचे ही नहीं है। पहिले नामांकित व्यक्ति हुए थे। ऐसे उद्‌गारों से कौन सा कार्यभाग सिध्द हो सका है ? ऐसी प्रशंसा सुन रहा हूं कि तंजौर में नारायण स्वामी नामक एल मराठी गृहस्थ जैसा मृदंग वादक दक्षिण में एक भी नहीं हुआ। महावैद्यनाथ नामक गवैया कुछ वर्ष पूर्व दिवंगत हुआ और ऐसा गायक त्यागय्या

के बाद कोई हुआ ही नहीं। विलाप के ये सुत्कार हमें अब सुनते रहना है और यह समझ लेना कि दक्षिण में थ्योरी जानने वाला अब कोई मौजूद नहीं है। तथापि मद्रास से लेकर यहां तक सुब्राम दीक्षित की प्रशंसा एक स्वर से बराबर सुनता आया हूं। ईश्वर की कृपा से उनसे भेट होने पर उपयुक्त जानकारी मिली तो कृतकृत्य होंऊंगा। मैसूर में शेषन्ना एवं शुभन्ना नामक बहुत प्रसिद्ध संगीतज्ञ हैं। उनकी प्रशंसा बम्बई में भी है। ऐसा कहते हैं कि उन्हे दक्षिण एवं उत्तर इन दोनो ओर का संगीत ज्ञान है। अब मुझे धीरे धीरे यह लगने लगा है कि वर्तमान में प्रचलित किसी भी पद्धति का संबंध रत्नाकर से स्थापित कर सकना संभव नहीं हैं। स्वयं रत्नाकर भी यह कहता है कि देशी संगीत का प्रचलन अधिक होने से मार्गी संगीत अर्थात (कठोर संस्कृत नियमो वाला) अब विलुप्त हो गया है। और तो और उसे कोई गाता भी नहीं। येषां श्रुति जात्यादेर नियमः ते देशी रागः अर्थात रत्नाकर के समय में भी जहां श्रुति व जाति की चर्चा पीछे रह गई थी तो फिर अब वह एकदम समूल नष्ट हुई होगी, यह सहज ही समझने योग्य है। मेरा यह तर्क है कि बाद के लोगों को कठिन नियमों से युक्त संगीत रुचिकर न होने के कारण भाषा, विभाषा, अन्तरभाषा जैसे चार अंगों के रुचिप्रिय गीत प्रचार में आ गये। आगे चलकर काव्यात्मक अभिरुचि के किसी विद्वान ने राग की कुटुम्ब रचना स्थापित कर ली और "भरत उवाच" इत्यादि जोड़ दिया। यहाँ दक्षिण में व्यंकटमुखी उनमें से एक है। पुराण और कथा-प्रिय लोगों की वह कुटुम्ब व्यवस्था बड़ी आर्कषक मनोरंजक लगी इससे रत्नाकर पीछे हट गया। तथापि भरपूर जानकारी से ओतप्रोत इतना विशाल ग्रंथ एकदम उड़ा देना संभव नहीं था। अतएव परावर्ती ग्रंथकारों ने स्वराध्याय का सीधा सादा फुटकर झमेला अपने ग्रंथों में उतारकर बाद में "मनपुत समाचरेत" इन न्याय से प्रचलित रागों को चाहे जैसा ढकेल दिया। मुसलमानी राग "हिजाज" आदि का प्रवेश भी इसी न्याय से हुआ है। इन रागों पर अब जाति प्रकरण कैसे लगाया जाना संभव होगा? अतः उसे अपने ग्रंथों से एकदम हटा ही दिया। ग्रामों का प्राबल्य प्रत्यक्ष रत्नाकर ने ही नेस्तनाबूत कर डाला था तो फिर उसी न्याय से बाद के ग्रंथकारों ने रत्नाकर की शह पर ही कार्य किया तो उसमें क्या आश्चर्य हैं? इस पर लोग यह पुछेगे कि इस विनष्ट संगीत का शोध अब क्यों? परन्तु उत्तर इतना ही दिया जा सकता है कि मानवीय जिज्ञासा आगे चलकर जो भी व्यक्ति "संगीत का इतिहास" यह विषय हाथ में लेगा उसे ऐसे अनुसधानों का उपयोग होगा यह तो सभी को स्वीकार्य होगी।

पुष्टीकरण— **दिनांक २० दिसम्बर १९०४**

ये उद्‌गार, शास्त्रीय संशोधन की दृष्टि से निराशाजनक लगते हैं। तथापि सुदैव से इटैय्यापुरम् के दीक्षित से हुए संभाषण को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होगा कि इस विषय में एकदम निराश न होते हुए कुछ गहराई से विचार किया जाना चाहिये। परिणाम स्वरुप पूर्ववर्ती एवं वर्तमान संगीत का आंशिक तालमेल प्रस्थापित किया गया तो भी बहुत बड़ा काम होगा। मुझे तो लगता है, सम्भवतः अब मैं इसे पूर्ण कर सकता हूं। वर्तमान में तो रागों के स्वरूप तक बहुत

बदल गये हैं यह सभी को मान्य होगा । परन्तु वेदों के समय में पहिले अमुक स्वर थे,उनके उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों के वर्गीकरण विषयक तात्विक नियम, मूल सप्तक कैसे बना, कब बना तथा वह क्या था; उनसे १८ जाति तथा राग अथवा मेल (?); व्यंकट मखी ने इन १८ जाति व रागों से (प्रमुख) अपने ७२ मेल किस आधार से उत्पन्न किये; इनसे उत्पन्न हुए १००० राग; इस क्रम से शोध किया व कुछ निर्णय हुआ तो इतिहास को क्या कोई कम दिशा मिलेगी ? बम्बई जैसे नगर में 'नेटिव जनरल' लाइब्रेरी मे भारतीय संगीत बिषय पर समग्र प्राप्य ग्रन्थों को नकलों सहित एकाद अलमारी किसी ने दान स्वरूप प्रदान की तो यह काम परमोच्च महत्व का होगा । मद्रास में "ओरयिन्टल लाईब्रेरी", तंजौर व त्रावनकोर में पैलेस लाइब्रेरियाँ तथा बीकानेर में पैलेस लाइब्रेरी इतने स्थानों पर ग्रंथों का संग्रह है जिनकी सूचियां मैने इस रिपोर्ट में जगह-जगह दे रखी है ।

स्फुट विचार–परिवृद्धि रामेश्वरम् रविवार. १० दिसम्बर

तंजौर के श्री जगन्नाथ भट्ट स्वरवत् बजाने वाले तथा मदुरा के परवावज बजाने वाले श्री पंचनद इन दोनों ने कहा था कि उन्हें मृदंग के विभिन्न तालों की गतें सहज में बांधना आती है । इसका पहिले तो मुझे आश्चर्य लगा परन्तु ऐसा लगने की आवश्यकता नहीं है । मैने उन्हें अपने सम्मुख बैठाकर उस प्रकार की गतें तैयार करने के लिये कहा, तथा गतें कैसी तैयार करते है यह देखा । जगन्नाथ भट्ट ने "मुरजाक्षर मालिका" नामक पुस्तक से लिये हुए अक्षर में लेकर कहा कि अपने यहां के अनेक मूलाक्षरों में से केवल अमुक वर्ग (दूसरे पृष्ठ पर देखिये) के अक्षर ही मृदंग पर बजते है. ऐसी एक पारम्परिक कल्पना है । अपने ग्रंथों में प्रत्येक शास्त्र को किसी न किसी देवताओं के साथ जोड़ने का रिवाज होता है। तदनुसार संगीत शास्त्र का उद्गम महादेव से माना जाता है । महादेव के पांच मुंह बताकर, उनके पांच मुखों में मुरजाक्षरों का बंटवारा किया है । यही जानकारी मैंने रत्नाकर के वाद्याध्याय में पृष्ठ × × पर थोडी पढ़ी थी । वह मैंने उन्हें दिखाई तथा उसे जगन्नाथ भट्ट ने (मेरी पुस्तक से) उतार ली । इस जानकारी का मुझे प्रत्यक्ष स्वरुप का कोई उपयोग नहीं है । मुरजा के अक्षर निश्चित ही है तथा वे कम अधिक प्रमाण में सभी बजाने वालों को ज्ञात रहते है । अस्तु । क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग इत्यादि वर्गो में मृदंग के अक्षर कौन से कैसे दिखते है इस आधार पर मुरजाक्षर निश्चित कर रखे है तथा जिस गत की रचना करनी हो उन-उन अक्षरों से रचने की परिपाटी है ।

ठेके अथवा गतें तैयार कीजिये ऐसा मैंने कहते ही उस ताल के कौन से अंग हैं यह उन्होंने पूछा । (अर्थात ध्रुवताल = ।०।।, रूपक ०।, इस प्रकार की निशानियों को अंग संज्ञा हैं जो मैं लिख ही चुका हूं) । वह मिलते ही जाति कौन सी है (अर्थात चतुस्त्र, त्रिस्त्र, मिश्र इत्यादि में से कौन सी) ऐसा प्रश्न किया । जाति ज्ञात होते ही, अक्षरों की कौन सी रचना सुन्दर दिखती है, इसकी बुनावट पर विचार प्रारम्भ हुआ । उदाहरण :- ध्रुवताल का अंग ।०।। यह है, परन्तु चतुरस्त्र जाति लेने पर यह निश्चित होगा कि लघु का जो चिन्ह है उसकी कीमत ४ मात्रा अथवा अक्षर है । इस चाबी के सहारे ध्रुव चतुरस्त्र जाति का कहने का अर्थ

हुआ ।०।। अर्थात 4,2,4,4 के क्रम से $\underset{4}{1.2.3.4}$ $\underset{0}{5\text{-}6}$ $\underset{4}{7\text{-}8\text{-}9\text{-}10}$ $\underset{4}{11\text{-}12\text{-}13\text{-}14}$

इस प्रकार से मात्राएं हुई । पहिली मात्रा पर सम मानना तथा ऐसे ४ टुकड़े अंक के हिसाब से बनाना है । अब गत रचना में ४ मात्रा के लिये धा धिन नक त अथवा धा तिरि किट अथवा
1 2 3 4 1 2 3 4
धा धा दिं ता धा धि द्धि तों तिट कित गिद गिन इस प्रकार के टुकड़े उपयुक्त होंगे ।

२ मात्रा के लिये– धिं धा धा धिन तिट तिर किट तक धिन नक ता किट इस
1 2 1 2 1 2 1 2 1 2 1 2
प्रकार के टुकड़े उपयोग में लाते है । सारांश . जो जितना अधिक हुनरवान होगा वह उतनी ही सुन्दर शब्द रचना कर सकेगा यह तत्व है । इसमें कोई बड़ी विद्या नहीं है । शब्द आपके सामने रहते है । मात्रा, जाति इत्यादि भी रहते हैं । केवल अपना उपयोगितानुसार उनका चयन करना कलाकार का काम हैं । यहां सभी छोटे बड़े वादकों को जाति एवं अंग की जानकारी रहती है । यहां प्रचार में रूपक, त्रिपुट, झंप आदि तालों का उपयोग बहुत होता है । यह रुपक ताल हमारे पश्चिम के रूपक ताल से भिन्न है । यह बात उसके "०।" इस अंग से स्पष्ट होगी । $\underset{1.2}{2.4}$
ऐसी ६ मात्रा तथा दो आघात देते हुए यहां अधिक गाते हैं । त्यागैय्या ने अनेक तालों व रागों में चीजें तैयार की है । ऐसी धारणा है कि तेलगू भाषा संगीत के लिये अत्यंत उपयुक्त भाषा है । अत: ऐसा कहें तो भी चलेगा कि इसी कारण इस भाषा में यहां का शास्त्रीय सगीत है ।

ताल की गति बांधने का प्रकार जो जगन्नाथ भट्ट ने दिखाया । वही पंचनद ने भी दिखाया । यह सरल होने के कारण सहज समझने लायक है । इसकी सहायता से नज़रे खां एवं पांडू तबलावादक को तैयार करने का निश्चय मैंने किया है । यह विद्या उन लोगों को अधिक उपयोगी होगी । पांडू अपनी प्रायोगिक जानकारी से गतें अच्छी कर सकेगा ।

संस्कृत ग्रंथों के स्वर–सप्तक की कर्नाटकी स्वर–सप्तक से तुलना

	संस्कृत	कर्नाटकी
१	.....	
२	.....	
३	.....	काकली नी
४	.....सा	सा
५	.....	शुद्ध रिषभ
६	.....	

७	………………………………री	चतु: श्रुति "री"
८	………………………………	षट श्रुति "री"
९	………………………………	साधारण गांधार
१०	………………………………	
११	………………………………	अन्तर गन्धार
१२	………………………………	
१३	………………………………	शुद्ध मध्यम
१४	………………………………	
१५	………………………………	प्रति मध्यम
१६	………………………………	
१७	………………………………प	शुद्ध पंचम
१८	………………………………	शुद्ध धैवत
१९	………………………………	
२०	………………………………ध	चतु: श्रुति धैवत
२१	………………………………	
२२	………………………………नी	कैशिक, निषाद, षट् श्रुति धैवत
२३	………………………………	
२४	………………………………	
२५	………………………………	काकली नी
२६	………………………………सां	सां

बाईस श्रुतियों का सात स्वरों मे विभाजन दर्शाने वाला श्रुतिमंडल :-

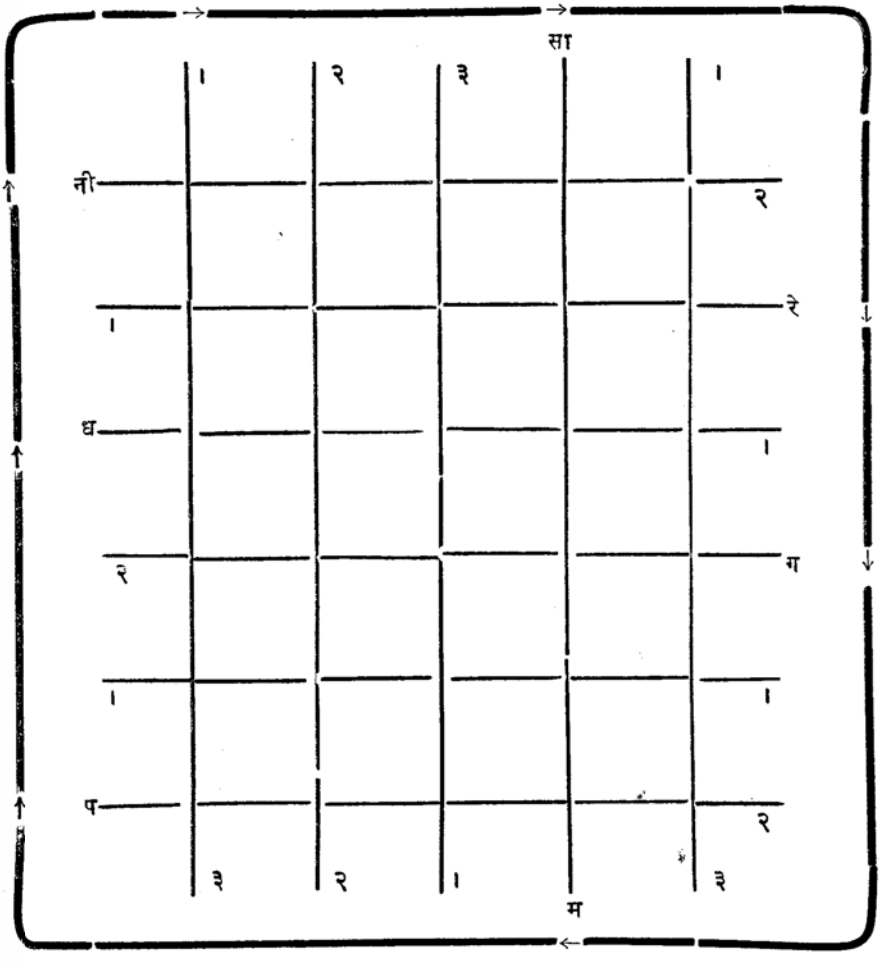

इस चित्र में दाहिनी ओर प्रदक्षिणा करने से ४,३,२,४,४,३,२, इस क्रम से इन श्रुतियों के अंतर पर स्वरों की रचना स्पष्ट दिखती है। श्रुति की रचना शीघ्र ध्यान में लाने एवं कायम रखने हेतु यह चित्र रत्नाकर की टीका में दिया गया है। इसका संबंध संगीत से कुछ नहीं है। कर्नाटक में योरोपीय क्रोमेटिक सप्तक को निर्धारित करते हुए संगीत के सभी राग रागिनी की रचना हुई है। यही योरोपीय टेम्पर्ड स्केल है। यह अत्यन्त आधुनिक होने के कारण उन लोगों को अभिमान है कि हमने उनका स्वर सप्तक लेकर संगीत रचना की है। अपने संस्कृत स्वर सप्तक को अर्थात उसे वे "एनहार्म-निक" स्वर सप्तक कहेंगे। तथापि योरोप में विज्ञान का विस्तार अधिक होने से वहाँ "वाइब्रेशन्स," के आधार पर तथा हार्मनी के आधार पर क्रोमेटिक

निश्चित किये गये। कर्नाटक में योरोपीय संगीत का प्रसार जल्दी हुआ होगा यह मानना पड़ेगा। कारण योरोपीय राष्ट्रों के निवासी वहां प्रथम आकर कालीकट के समीप आबाद हुए, ऐसा इति हास बताता है। दूसरी एक बात भूली नहीं जा सकती कि दक्षिण में गायन की संगीत के लिये वायलिन है, (जो योरोपीय वाद्य हैं)। वहां सारंगी देखने में नहीं आती। इस कारण, योरोपीय पंडितों को कर्नाटक संगीत की प्राचीनता का कुछ भी बोध नहीं हो सकता। हम यदि इसे प्राचीन संगीत से संबद्ध न कर सके तो यह सुन्दर पद्धति एकदम आधुनिक व योरोपीय "क्रोमटिक स्केल" पर आधारित दिखेगी। यह बात मान्य है कि इस स्वर सप्तक को ग्रहण करने के पूर्व हिन्दुस्तान में संगीत था, परन्तु इतने से ही "क्रोमेटिक स्केल" को अनादि मानना भूल होगी। कारण, विश्व का इतिहास देखने से यह ज्ञात होता है कि यह स्वर सप्तक अत्यन्त आधुनिक है। योरोपीय संगीत का इतिहास पढ़ने से ऐसा ही ज्ञात होता है।

पार्वती मंदिर के संगीतज्ञ श्री एम. आर. सुन्दरम् अय्यर से प्राप्त तालों के आघात देने की विधि — रामेश्वरम्, १० दिसम्बर १९०४

एकतालम उसी प्रकार है जिस प्रकार तंजौर के संगीतज्ञों ने बताया था। उंडे दी समु ओकड उरक चंडी पोके मंनसा। पल्लवी। (अ) चंड मार्तंड मध्य मंडल मुन। सूचें लगे। । अनुपल्लवी।

तमसा दि गुणा रहि तुंडु धर्मात्मुडु स्वमुडुक्षेम करूण्डु
त्यागराज चित्त हि तुडु जगमु निंडि (चरणम्)

आज इस गायक को मेरे पास (श्री देवधर, हमारे उपाध्याय जिनके घर में ठहरा हूं) लाये थे। देवधर ने बताया कि यहां ये ही एकमात्र गायक है। उनके भाषण से ऐसा लगा कि उन्होंने संगीत के बड़े ग्रन्थ अर्थात "गायक लोचन" व्यंकट शास्त्री की 'म्यूजिक सेल्फ इन्सट्रक्टर' तेलगू पुस्तक भी देखी है। प्रायोगिक रूप से यहां के लोगों की भांति ही गाते है और इसमें आश्चर्य भी किस बात का है। यहां इन विचारों को ऊंचे दर्जे का साहित्य सिखायेगा भी कौन? उनको ७ रूपया मासिक वेतन मिलता हैं। उनके पास व्यंकट शास्त्री की तेलगू पुस्तक "म्यूजिक सेल्फ इन्सट्रक्टर" छपी हुई थी। इस पुस्तक की प्रशंसा नागोजीराव ने की थी। अतएव मैंने वह उनसे खरीद ली। उनमें कोई उपयुक्त जानकारी प्राप्त नहीं हुई। रामनाद के शिनोय आयंगर की प्रशंसा भी उन्होंने की तथा कहा कि वे मेट्रिकुलेशन तक अंग्रेजी पढ़े हुए है अतएव आपको अंग्रेजी में समझा सकेंगे। देवधर कहते थे कि शिनोय आयँगर ने एक ही गायक पसँद किया वह हैं भास्कर बखले। वे हिन्दू होने से उनके बारे में उन्हें अभिमान हैं। मुस्लिम गायकों का गायन उन्हें बहुत पसँद नहीं है। जहां पसदगी को लेकर तारीफ होती है वहां चर्चा करने में कोई मतलब ही नहीं होता। इन गायक महाशय ने बाहर के अन्य किसी का सँगीत अधिक नहीं ही सुना, ऐसा उन्होंने कहा। इस कारण कूपमँडूकवत् यदि उनकी सँगीत दृष्टि सँकुचित हो गई तो उसमें उनका दोष नहीं। यह सज्जन स्वभाव से गरीब, और स्वस्थ और सम्पन्न लगे तथा खुले मन के भी हैं।

श्रीनिवास आयंगर से भेंट चर्चा — रामनाद, १४ दिसम्बर

आज दोपहर १ बजे हम लोग रामेश्वर से चल कर यहां आ पहुंचा। मेरे पास परिचय पत्र रामनाद के सबमजिस्ट्रेट श्री वेल्लूरस्वामी के लिये था, परन्तु उसका उपयोग नहीं हुआ। कारण वे अपने शासकीय दौरे पर चले गये हैं ऐसा मुझे स्टेशन पर ही ज्ञात हुआ। स्टेशनमास्टर अत्यन्त दयालु होने से उन्होंने अपना सिपाही हमारे साथ भेजकर हमें शहर में एक सुन्दर मकान में ठहरा दिया। अब बड़े आराम में है। वहां पहुँचते ही मुझे अनोखा समझ कर देखने के लिए दरवाजे के पास कुछ सज्जन इकठ्ठे हुए थे। उनमें से एक गृहस्थ मुझसे पूछने के लिए सामने आये कि मैं कौन और कहां से आया हूं। उनसे मैंने संगीत विद्वान श्रीनिवास आयँगर की पूछ-ताछ की। सौभाग्य से, मालूम पड़ा कि वे शहर में ही हैं और हमारे पड़ौस वाली गली में ही रहते हैं। इस उत्साहपूर्ण जानकारी के लिए भगवान के आभार माने। मैंने उन सज्जन से कहा कि मेरा उद्देश्य श्री आयँगर से भेंट करना है। उनकी प्रशँसा मैंने मद्रास तक सुनी हैं। ऐसा पता चला कि श्री आयंगर इनके मित्र हैं क्योंकि उन्होंने आधे घंटे में अर्थात ४ बजे तक पुनः आकर बताया कि श्री आयंगर स्वय ५ बजे मेरे यहां मिलने के लिए आने वाले है। यह बात बहुत अच्छी बनी।

संध्या, ५.०० बजे

श्री आयंगार सचमुच निश्चित समय पर एक शिष्य को लेकर मेरे पास आये। औपचारिकता समाप्त होते ही उन्होने बताया कि तंजौर में उनके पास रामन्ना स्वामी का पत्र मेरे यहाँ पहुचाने के विषय में आया था तथा वे मेरी प्रतीक्षा में ही थे। इसके बाद उन्होने कहा कि उनको जो जानकारी है मुझे देने को तैयार हैं तथा गाकर भी दिखा सकते थे परन्तु उनकी छाती में थोड़ा दर्द है और वे दवा भी ले रहे हैं। फिर भी जहां थोड़ा थोड़ा दिखोने की आवश्यकता होगी वहां गाकर भी दिखावेगे। मैंने कहा कि मुझे "थ्योरी" की जानकारी अधिक चाहिए। प्रायोगिक जानकारी थोड़ी तथा यथा-शक्ति दिखाने से भी चलेगा। थोड़ा संभाषण हुआ, वह संगीत की जानकारी से बहुत अधिक संबंधित नहीं था। उन्होने कहा कि मेरे बम्बई पहुंचने पर भी वे मुझसे पत्र व्यवहार करते रहें तथा जो जानकारी मांगू उसे प्रदान करेंगे। यह कहकर गये कि बाद में रात को राजबाड़े से फुर्सत पाने पर फिर से आवेंगे। घर के हम सब लोग शहर घूमने हेतु पैदल गये। श्री आयांगार रात्रि में नहीं आये। प्रातः अर्थात गुरुवार को सात बजे मैंने उनके घर यह सूचित करने लड़के को भेजा कि यदि उनको फुर्सत हो तो मैं उनसे मिलने पहुंचू। उन्होने कहलाकर भेजा कि वे स्वयं आ रहे हैं। तदनुसार वे आये भी उनसे जो वार्तालाप हुआ वह इस प्रकार है

प्र :-श्री आयांगार ! क्या आपने रत्नाकर ग्रथ अथवा दूसरा कोई ग्रंथ पढ़ा है ?

उ. - हां। मुझे संस्कृत नहीं आती, परन्तु उसे मैंने सुनकर समझ लिया है। उसमें से राग व ताल के प्रकरण मेरे उपयोग के होने के कारण उन्हे मैंने समझ लिया है।

दूसरी कड़ी :–

रामनाद श्रीनिवास आयंगार

●

मुत्थुस्वामी उपनाम अम्बी दीक्षितर
सन् 1863 - 1937

प्र. – क्या आप मुझे बतावेंगे कि उसमें कितने राग, कैसे व किस स्वर–सप्तक के आधार से लिखे गये है ;

उ. – उसमें ४०० से अधिक राग बताये गये हैं तथा वे श्लोक सहित स्पष्ट एवं सरल रीति से समझाये गये हैं। इसमें स्वरो की जो मूर्च्छनाएं बताई गई हैं वे बड़ी मजे की बताई है। उनसे राग भिन्न भिन्न दिखते है ।

प्र. – स्वरों की मूर्च्छनाएं किस प्रकार से बताई है ?

उ. – ऐसा समझिये कि शंकराभरण के सप्तक में देवगंधार माना जाता है। उसमें मध्यम से रिषभ पर जाते समय स्वरों की (करके दिखाया) ऐसी क्रिया करनी पड़ती हैं। यहीं क्रिया भिन्न प्रकार से करने पर भिन्न राग होगा। मैं ऐसा समझता हूं कि मूर्छना का अर्थ स्वर को किसी विशिष्ट प्रकार की गमक देना है। तथा ऐसी बाते उस पुस्तक में बताई है।

प्र. – मेरे पास रत्नाकर की जो प्रीति है मुझे लगता है कि उसमें २६४ राग रागिनी बताई है।

उ. – मेरी पुस्तक में ४०० से भी अधिक हैं। मैं वह आपको दिखाऊंगा। वह तेलगू लिपि में है परन्तु संस्कृत भाषा में है। उसमें सभी रागों के जानकारी वाले श्लोक दिये हुए है।

प्र. – आपके गुरू कौन थे ?

उ. – मेरे गुरू पाठण सुब्रमणि अय्यर। वे तंजौर के निकट "तिरवाड़ी" नामक तीर्थ क्षेत्र में रहते थे। रामनाद के पूर्व राजा ने दो तीन हजार रूपया खर्चकर मुझे संगीत विद्या सीखने हेतु तिरवाड़ी में रखा था। मैं वहीं तैयार हुआ। मेरे पास रामदुर्ग के एक दक्षिणी सज्जन यहां से संगीत सीखकर तथा अच्छा स्वरज्ञान संपादित कर वापस गये हैं। उनके पास से मैंने भी हिंदुस्तानी रागों की जानकारी ली है। वे सज्जन ग्वालियर के प्रसिद्ध शंकर पंडित के शिष्य है।

प्र. – इस विषय पर क्या आपने संस्कृत पुस्तक देखी है ?

उ. – हां, मेरे पास "संगीत रत्नाकर" है। उसकी देवनागिरी लिपि में नकल मैं आपको भी दूंगा। इसी प्रकार "रागताल चूड़ामणि" नामक एक दूसरी सुन्दर पुस्तक मेरे पास है। तेलगू पुस्तके भी है। सूब्राम दीक्षित की भी नवीन पुस्तक है।

प्र. – आप अपने अतिरिक्त अन्य किस जीवित संगीत विद्वान को शास्त्र का ज्ञाता समझते है ?

उ– – इट्टैयापुरम् के दीक्षित बड़े विद्वान है। उनको गाना भली भांति नहीं आता। परन्तु वे समस्त थ्योरी जानते है और उत्तम जानते हैं। मेरी जानकारी में अन्य दूसरा शस्त्राकार कोई नहीं है।

प्र. – दीक्षित की पुस्तक के बारे में आपका क्या मत है !

उ. – वह बहुत ही अच्छी बनी है, मैंने वह सब पढ़ ली है। उसमें त्रुटि दर्शाने के लिये कोई गुंजायश नहीं है। वह मुझे पूरी तरह से मान्य है।

प्र. – यहां दीक्षित एवं "त्यागैय्या" ऐसे दो संप्रदाय मानते है ! इनमें मुख्य अन्तर कौन सा है।

उ. – दीक्षित की रचनाएं संस्कृत में है तथा वे अच्छी है। परन्तु भाषा के कारण वे बहुत प्रसिद्ध नहीं हुई। वे बड़े विद्वान पण्डित थे। उनके गीत, अर्थात जैसे हिन्दुस्तानी प्रसिद्ध शास्त्रीय ध्रुवपद–विलंबित लय में और कठोर नियमों में बंधे हुए वैसे ही है। वे सभी प्रचार में न आने के कारण बहुत से नष्ट हो गये। तथा जो है वे भी बहुत थोड़े से लोगों को आते है। उनके विषय भी बड़े गम्भीर स्वरूपक है।

प्र. – यहां कर्नाटक संगीत पर सबसे पुरानी पुस्तक कौन सी मानते है ?

उ. – मैं तो "रागताल चूड़ामणि" को ही ऐसा मानता हूँ। उसमें ७२ मेल तथा उनके १००० राग श्लोकों सहित सुंदर रीति से दिये गये है। वह पुस्तक मैं आपको दिखाऊंगा और यदि आवश्यक हो तो नागरी लिपि में नकल बम्बई भेज दूंगा।

प्र. – क्या आपने "चर्तुदंडिप्रकाशिका" नामक पुस्तक देखी हैं ?

उ. – नहीं।

प्र. – क्या आप यह बता सकते हैं कि मेलकर्त्ता ने अपना "क्रोमेटिक स्केल" किस आधार पर सुनिश्चित किया हैं ?

उ. – मैं यह जानता हूँ कि उन्होंने ७२ मेल किस प्रकार रचें। परन्तु यह १२ स्वर किस प्रकार निश्चित किये यह मैं नहीं जानता।

प्र. – आपके मत से सबसे पुराना स्वर सप्तक कितने स्वरों का और कौन सा है ?

उ. – यह मैं नहीं बता सकता।

प्र. – आपके यहां समावेदी गायक है ? क्या आपने उनसे पूछा है कि वे गायन में कितने और कौन से स्वरों का व्यवहार करते है ?

उ. – नहीं, तथापि पूछ के बताऊंगा।

प्र. – दक्षिण में आपके अतिरिक्त अब कौन–कौन से नामांकित गायक है ?

उ. – अनंतराम तथा मुत्तय्या–भागवत यह अच्छे है । परन्तु वे प्रायोगिक संगीतज्ञ है । तथा तिन्नावेली में है । सुनने लायक है ।

प्र. – आप कहते हैं आपने हिन्दुस्तानी संगीत सुना है, तो फिर बतायें कि उसमें कौन से दोष प्रतीत हुए ?

उ. – मैंने केवल श्री भास्कर राव बखले तथा मेरे पास आये रामदुर्ग के विद्यार्थी को चुना है । इन लोगों को अच्छा स्वरज्ञान नहीं है तथा उन्हीं से ऐसा भी सुना कि वहां के गायक बहुत अच्छे स्वर–ज्ञानी नहीं होते है ।

प्र. – परन्तु क्या उनकी गायकी आपको पसंद आती है ।

उ. – बहुत पसंद आती है । उसे सीखने की मेरी बड़ी इच्छा है । कुछ–कुछ चीजें मैंने सीखी भी है (गाकर दिखाता हूँ) वह संगीत यहाँ के लोगों को भी अच्छा लगता है परन्तु अभी भी उसकी रचना वैशिष्टय यहां के लोग अच्छी तरह नहीं समझते । अर्थात उनके नियम ज्ञात नहीं है । (मैंने मन में कहा कि समझने वाले उत्तर में भी कितने है कौन जाने) । यह देखिये आपके यहां का पूरिया का ख्याल "प्यार दे" यह मुझे बहुत पसंद है । मैं जब गाता हूँ तब लोगों को भी पसन्द आता है । आप मुझे कुछ हिन्दुस्तानी चीजें बताइये ।

इतनी बातचीत के उपरान्त श्री आयंगर ने कहा कि उनको राजवाड़े की नौकरी पर जाना है । १० बजे के बाद मुझे फुरसत रहेगी । तब आपके पास आकर जो जानकारी चाहिये वह दूंगा । मैंने कहा बहुत अच्छा होगा । उन्होंने यह भी बताया कि यहां कौन–कौन से मेल प्रचार में लोकप्रिय है । उनके कथनानुसार "महावैद्यनाथ" की पुस्तक में मैंने चिन्ह लगा लिए है । श्री आयंगर ११ बजे आये और उन्होंने पुनः संभाषण प्रारम्भ किया बीच–बीच में गले से गाते-गाते समझाते भी गये तथा मैंने उपस्थित किये हुए प्रश्नों की प्रायोगिक जानकारी भी देते गये । वह आगे इस प्रकार चलती रही :–

प्र. – आप के यहां "लक्षणगीत" नामक कुछ रचनाएं गाते है , ऐसा सुनता हूं क्या वे मुझे मिल सकेंगे ?

उ. – हां । मेरे पास वे सब हस्तलिखित तेलगू लिपि में है । मैं उनकी नकलें कर आपको दूंगा । यदि आपने उन्हें छाप दिया तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है । लक्षणगीत बहुत है । कहिये कि वे सैकड़ों है । मै यह नहीं बता सकता कि ये लक्षणशील प्रथा किसने रचें क्योंकि वे मेरे पास पांडुलिपि में लिखे भर हैं । उनके रचने वाले का नाम ठिकाना आदि नहीं लिखा है । मेरी समझ से ये गीत मेलकर्ता के समय के ही होंगे। जिस समय मेलकर्ता एवं उनके अन्य राग निश्चित हुए उस समय उन सबके नियम बताने की आव-

श्यकता पड़ी होगी तथा वे नियम "लक्षणगीतों" में लिख रखे होंगे ऐसा मैं मानता हूं। कुछ कहना यह है कि "लक्षण गीत" गोविन्द दिक्षीत ने रचे है। परन्तु मैं यह ठीक नहीं मानता वे उनके भी पूर्व के होंगे। गोविन्द दीक्षित ने "संचारी गीत" रचे हैं। इन संचारी 'गीतो' में देशकाल रूचि, परिवर्तन के अनुसार आरोह व रोह में फेरबदल किया हुआ है यह फेर बदल अच्छे ही है तथा लोगों को भी पसंद पड़ने योग्य है।

उ. – आपके यहां "पल्लवी" के संबंध में प्राय: बहुत कुछ सुनता हूं। इस "पल्लवी" के संबंध में मुझे जानकारी दीजिए।

उ. – यह एकदम सरल है। संक्षेप में कहे तो आपके यहां ध्रुवपद एवं ख्याल में जैसे स्थायी है वैसे ही पल्लवी। पल्लवी में राग का स्वरूप शब्दों सहित (गीत के शब्दों) तथापि आलाप व तानें स्पष्ट रूप से दिखाया जाता है। आलाप में भी पल्लवी ही गाई जाती है परन्तु वहाँ उसमें शब्द नहीं होते। गीत में प्रथम पल्लवी, इनके बाद अनुपल्लवी तथा बाद में चरण ऐसा क्रम रहता है। यह क्रम आपके यहां भी है। उनके लिखित नियम मैं नहीं दे सकूंगा। परन्तु ऐसा नियम स्पष्ट दिखता है कि "पल्लवी" में तार सप्तक की ताने प्राय: नहीं होती तथा उसका विस्तार मंद्र व मध्य स्थानों में ही होता हैं। "अनुपल्लवी" में मुख्य भाग तार सप्तक के स्वरों का ही रहता है। चरण में तीनों स्थानों के स्वर लगाने में दोष नहीं मानते। आलाप में ये तीनों प्रकार सम्मलित है। राग का विस्तार उपर्युक्त नियमों के आधार से परन्तु "आकार" में करते हैं। मध्यलय में तान आदि लेते समय आधार के रूप में "अनंत" इत्यादि का अक्षर प्रयोग करते है।

प्र. – आपके यहां गायन में कौन-कौन सी बंदीशे गाते हैं?

उ. – गीत, प्रबंध, वर्ण, स्वरजाति, कीर्तन, पद, जावली। प्रबंधों का गायन यहां अल्प प्रमाण में है। उसमें "जाति गायन" समाविष्ट है। कीर्तन में सुन्दर पदों के अंतर्गत अर्थपूर्ण शब्द रहते हैं। प्रबंध, स्वरजाति इत्यादि में स्वरों के नाम, मृदंग के बोल व पद्य का प्रयोग होता है। आपके यहां जैसे "चतुरंग" होते हैं उसी प्रकार जैसा इसे मानने में कोई त्रुटि नहीं होगी। गीत में "गपधम" इत्यादि गड़बड़ नहीं होती ऐसी रचनाएं केवल गायन वेचित्र्य के लिये एवं गायक का चातुर्य उजागर करने के लिये होती है, यह सहज ही समझ में आवेगा। इस तरह के प्रकार "सरगम" इत्यादि आपके यहां भी है–वे सभी हमारी पद्धति से यहां भी है।

प्र. – क्या रागांग, भाषांग, क्रियांग, उपांग की व्याख्या करेंगे?

उ. – इन शब्दों के अर्थ, मैं अपनी समझ के अनुसार इस प्रकार करता हूं:–

(१) भाषांग अर्थात वह राग जो शास्त्रीय आधार पर अधिक नहीं है। परन्तु विभिन्न प्रांतों की भिन्न-भिन्न रीति रिवाजों को जिसमें स्वीकार किया जाता है उदाहरणर्थ में सौराष्ट्र राग। यह राग जिस शास्त्रीय राग के समीप आवेगा उसका वह भाषांग

माना जावेगा। इस प्रकार के रागों में अधिकतर उन उन प्रदेशों के नाम स्वीकार किये जाते है।

(२) रागांग– अर्थात शुद्ध शास्त्रीय राग। जिसमें शास्त्र में बताए गये आरोह-अवरोह से गायन किया जाता है। ये राग प्रथम श्रेणी के परिष्कृत माने जा सकते है।

(३)–क्रियांग:–अर्थात, शास्त्र में बताए हुए नियम कायम रखते हुए, (बहुधा अवरोह में) कुछ वर्जित स्वरों का व्यवहार थोड़े प्रमाण में कहीं-कहीं वैचित्र्य या रंजकता हेतु किया जाता है। सच कहूं तो यह राग को भ्रष्ट करना है। मैंने सुना है कि आपके जिन हिन्दुस्तानी रागों में इस प्रकार का कौशल मुसलमानों ने दिखाया है वे बहुत लोकप्रिय हुए है। मैं ऐसा करना बुरा नहीं समझता। सभी संगीत यदि आनंद प्रदान करने के लिए है और यदि ऐसे कृत्य से समाज को अधिक आनंद मिलता है तो जिस शास्त्रीय राग के आधार पर हम ऐसा करें, उसका वह "क्रियांग" राग कहा गया तो
T T T
अच्छा ही है। उदाहरणार्थ, हमारा "सारंग" राग शास्त्र में स, रे, ग, म, प, ध, नी, सा, (प्रति मध्यम) इस थाट में है। इसमें आरोह संपूर्ण है। परन्तु अवरोह में हल्की सी शुद्ध मध्यम भी लग जाती है। और वह लोगों को मधुर भी लगती है।
उपांग –यहां भी क्रियांग की तरह राग को भ्रष्ट करना है। तथापि अन्तर यह है कि क्रियांग में शुद्ध स्वरूप को कायम रखकर नवीन स्वर को ढकेलना होता है। उपांग में सही स्वर वर्ज्य करते हुए केवल रुचिकर होने के कारण वर्जित स्वर प्रयुक्त होता है। उदाहरणार्थ, भैरवी (हमारे यहां की) इस राग में यद्यपि शुद्ध धैवत सही स्वर माना है तथापि कोई लोग उसके स्थान पर चतु: श्रुतिक धैवत (तीव्र ध) लगाकर ही गाते है।

प्र. – महावैद्यनाथ की पुस्तक "मेलराग मालिका" आपने तो देखी ही होगी ?

उ. – हां। वह मैंने देखी है। वे भी बड़े अच्छे शास्त्रकार तथा प्रायोगिक गायक थे। वे "आनेयागारी" के शिष्य थे। हमारे गुरूजी उनके घराने के ही थे। महावैद्यनाथ अभी-अभी दस–पांच वर्ष पूर्व ही स्वर्गवासी हुए। उनको मैंने भी सुना है। उनका गला बहुत अच्छा था। अतएव उनकी बड़ी प्रशंसा हुई। वे भी त्रिवाड़ी के ही थे।

प्र. :– क्या मुझे बतावेंगे कि उनकी पुस्तक (पुस्तक हाथ में लेकर) में किन-किन विषयों पर कैसी-कैसी चर्चा की गई है ?

उ. – हां। (पुस्तक हाथ में लेकर) पहिले एक-एक मेलकर्ता लेकर प्रत्येक का एक–एक छोटा सा गीत तैयार किया है। उसके प्रथम भाग में राग का नाम है। उसके उपरान्त उसमें 'सरगम" रखी गई है। तथापि उस राग के नियम बताए बिना तथा उसमें लाने वाले स्वर बताए बिना गाना संभव नहीं अतएव बाद में कोष्टक रूप से नोटेशन सहित वही चीजे लिखी है। बाद में विभिन्न प्रकार के गीत नोटेशन सहित दिये है। ताल आदिताल रखा है तथा उसके अनुसार रची हुई चीजों को स्तंभ बना

कर लिखा है।

प्र. – आपके यहां "गमक" कितनी व कैसी मानी है। क्या उसके उदाहरण देंगे ?

उ. – हां। हमारे "गमक" दशविध माने है। वे ऐसे हैं:– १. आरोह २. अवरोह ३. ढालु ४. स्फुरित ५. कंपित ६. आहत ७. प्रत्याहत ८. आंदोल ९. त्रिपुच्छ १०. मुर्च्छन। इनमें से आरोह–अवरोह तो एकदम स्पष्ट समझ में आवेंगे। ढालु="सं प–सं ग" इस प्रकार से छलांग लगाते हुए उन्हें गाते हैं। (पालकी उठाने वाले जैसे चिल्लाते है वैसे) उसमें मींड की भांति घसीटते हुए नहीं जाते (करके दिखाया)। स्फुरित–इसमें दो ही स्वरों को आरोह क्रम में गाते हैं। कंपित=एक–एक स्वर को हिला-हिला कर कहना है। इस प्रकार कुल १० गमक हैं।

सूचना:– जगन्नाथ पंत की पुस्तक में जो प्रकार दिये हैं वें हीं इन्होंने भी बताए। परन्तु इन गमकों की जानकारी सुब्राम दीक्षित की पुस्तक में अच्छी तरह दी है। उसे वे स्वयं अच्छी तरह से समझा देंगे।

प्र. – तान एवं अलंकार में आप क्या अन्तर मानते है ?

उ. – ताने, केवल **आ आ आ** इस प्रकार इच्छानुरूप लेते हैं। अलंकारों में स्वर नियत क्रम में बद्ध होते है और उन्हें उनके नामो सहित उच्चारण करना है। हमारे यहां ३५ तालों के भिन्न-भिन्न स्वरालंकार तैयार किये गये हैं और उन्हें ही हम गाते है।

प्र. – लधुमेरू, गुरूमेरू आदि-आदि बताए गये है; क्या उसकी जानकारी देंगे?

उ. – मैं दे सकता था परन्तु पुस्तक यहाँ नहीं है। उसमें बहुत कठिन कुछ नहीं है। प्रस्तार में एक-एक के कितने प्रकार होते है यह एक स्थान पर बता दिया जाता है। प्रस्तार करना आपकों मालूम ही है। अतएव इन मेरू के आंकडों की जांच कर लेने से तुरंत स्पष्ट हो जावेंगा। वे केवल गणना मात्र है। खंडमेरू का चित्र व उपयोग आपने देखा ही है। उसी प्रकार से इस पर भी विचार करके देखिये। फिर भी बम्बई पहुंचने पर आप मुझे लिखें तो यह जानकारी भी अंग्रेजी में लिखकर मैं भेज दूंगा। यही पर संभाषण समाप्त हुआ।

श्री आयंगार ने मुझे दो पुस्तकें ताडपत्र पर लिखी हुई दिखाई। वें हैं (१) राग–ताल चूडामणि (२) संगीत सार संग्रह। यह अच्छी स्वच्छ लिखी हुई है। यह पुस्तकें संस्कृत भाषा में होने के कारण, उनकी नकलें मैंने नागरीलिपि में करवा कर मांगी है तथा श्री आयंगार के पास ताल विषयक तथा मूर्च्छना–प्रस्तार पर भी छोटी-छोटी पुस्तकें हैं। उसकी नकलें भी वे देने वाले है।

कुल मिलाकर श्री आयंगार एक अच्छे स्वभाव के व्यक्ति है। वे सहायता के लिये बड़े तत्पर रहते हैं। यद्यपि उन्होनें खुली आवाज से गाकर नहीं दिखाया फिर भी भाषण एक-

दम खुले मन से किया। वायदे अनुसार यदि उन्होंने नकलें भी दी तो बहु महद् उपकार होंगे। नकलें कैसी हैं यह तो प्रत्यक्ष हाथ में पड़ने पर ही समझ में आवेगा। ऐसा लगा कि अन्य स्थानों पर जो गायक है उनसे श्री आयंगार अधिक कुशल हैं। उनका स्वर ज्ञान अच्छा है तथा यहां की दृष्टि से गला भी अच्छा तैयार है। उनसे यह पूछने पर कि यहाँ दूसरे और कौन नामांकित है? उन्होंने कहा सुब्राम दीक्षित और इनके अतिरिक्त,त्रिकोड़ी रामकृष्णय्या तथा तिवंशललु नरसमयंयार। ये दोनों कुंभ कोणम् में हैं। परन्तु वे क्रिया कुशल है ऐसा ही कहना पड़ेगा। मायावरम् में वीणा वैद्यनाथ अय्यर नामक गृहस्थ भी प्रसिद्ध है। ऐसा कहते हैं कि वे शास्त्र के जानकार है।

मुझे रामनाद में ठहरने के लिये अधिक समय न होने के कारण मैं शुक्रवार (१५-१२-१९०४) को दोपहर १ बजे की गाड़ी से चल पड़ा। यहां के संगीत विद्वानों ने संस्कृत ग्रन्थ एकदम नहीं पढ़े। इनके मेलकर्ता के आधार स्वरूप कतिपय संस्कृत ग्रन्थ हैं पर वे भी सर्व साधारण जानकारी में नहीं है। जिनके पास वे हैं उन्हें संस्कृत भाषा न आने के कारण, उनका उपयोग करना मालूम नहीं। संगीत की यहाँ पर ऐसी स्थिति हो गई है। यहां केवल विशुद्ध पाश्चात्य क्रोमेटिक स्केल प्रचार में है तथा उसी में से रागों के भांति-भांति के आरोहावरोहों की रचना कर ली है अत: सामान्य रुप से देखने पर ऐसा लगता है कि हिन्दुस्तानी संगीत जैसी शास्त्र से संबंधित भ्रमपूर्ण स्थिति और अड़चने यहां नहीं है। यद्यपि वादी संवादी का बखेड़ा तो एकदम नहीं है। यद्यपि तालों का गड़बड़ बहुत अधिक है फिर भी अच्छे मृदंग वादकों में भी मध्य एव द्रुत लय में बजाने का रिवाज दिखता है [मैंने एक दो स्थानों पर विलबित लय में चौताल के एक दो ध्रुवपद गाकर इनसे बजाने के लिए कहा। इस पर वादक का हाथ चौथाई दर्जे में रह गया। अपने यहाँ तबलावादक जैसे जलद लय में तरह तरह के प्रकार बजाते है। वैसे ही यहां मृदंग पर बजाते है। इस पर भी यह तो कहना ही पड़ेगा कि यहा के लोग अधिक परिश्रम करते है। राग के केवल आलाप करने वाले बहुत थोड़े दिखते है। तान लेते समय इनकी एक कंपित स्वर कहने की विधि आदिम प्रकार की सभी गायकों में दिखाई पड़ती है। यदि उनसे कहें कि हिन्दुस्तानी गायन में कलात्मकता अधिक है तो ऐसा लगता है कि सामान्यत: उन्हें नाराजी होती है। इनको लगता है कि आरोह अवरोह को संभाल कर यदि कांपते कांपते जल्दी में फुर्ती से कहा गया तो उसमें अधिय कौशल ही है। इन्हे अभी भी यह भली भांति नहीं समझता है हिन्दुस्तानी गायन का वर्चस्व कहां और कैसे है। हिन्दुस्तनी गायक स्वरों की "गपधप" की खटपट स्वरों में कम तथापि गायन से अधिक प्रगट करते हैं। उस कारण ये लोग उनके इस महत्व को भूल जाते है।

सुचनाएं, जो श्रीनिवास आयंगार, राजमहल विद्वान, रामनाद से प्राप्त करनी है :-

(१) क्या रत्नाकर या उसका कोई अंश आपने पढ़ा या समझ लिया हैं ?

(२)क्या आपने हिन्दू संगीत पर कोई दूसरा संस्कृत ग्रंथ मूलत: पढ़ा है ? यदि हां, तो कौन सा ?

(३)आप किस सम्प्रदाय से संबंद्ध है ?आपके गुरू कौन थे ? तथा पाठ्य पुस्तक के रुप में आधार ग्रंथ कौन सा था ?

(४)क्या आप किसी तेलगू या तमिल ग्रंथ पर निर्भर है ? कौन से ?

(५)आपने-अपने विषय पर कौन से संस्कृत तेलगू ग्रंथों का संग्रह किया है ?

(६)यहां इस प्रेसीडेंसी में कौन श्रेष्ठ शास्त्रीय संगीतज्ञ जीवित है ? आपका उनके विषय में अनुभव, धारणा क्या है ?

(७)क्या श्री दीक्षित द्वारा प्रकाशित "संगीत सम्प्रदाय प्रदर्शिनी" पढ़ी है ? उसके बारे में आपके विचार क्या है ?

(८)त्यागैया तथा दीक्षित की रचनाओं की अपनी-अपनी प्रमुख विशेषताएं क्या है ?

(९)इस अंचल में अत्यंत प्राचीन ग्रंथ किसे माना जाता है ? मेरा मतलब है, वह ग्रंथ जो ७२ मेलकर्ता को प्रतिपादन करता हो।

(१०)क्या आपने चतुर्दण्डिप्रकाशिका, जिसे कर्नाटक संगीत का आधार ग्रंथ समझा जाता है के विषय में पढ़ा अथवा सुना हैं ?

(११)क्या आप यह समझा सकते है कि "क्रोमेटिक स्केल" जो अपेक्षाकृत आधुनिक है, कर्नाटक पद्धति की नीव जैसा कैसे बना ?

(१२)आपके अनुसार संगीत का शुद्ध-स्वर-सप्तक कौन सा है ? आप अपने शुद्ध-स्वर-सप्तक से उसका (रत्नाकर स्वर सप्तक) मेल कैसे बैठायेंगे ?

(१३)क्या आपने हिन्दुस्तानी गायक-वादकों को सुना है ? यदि हां, तो आपको उस पद्धति में कौन से दोष दिखाई पड़ते है ; क्या वह यहां प्रशंसित या पसन्द की जाती है ?

(१४)लक्षणगीत किन्हें कहा जाता है ? क्या आप मुझे उनका पूरा संग्रह दे सकते हैं। संस्कृत में इन्हें किसने बनाया ? उनकी उपयोगिता समझाइये।

पल्लवी, अनुपल्लवी एवं चरण के निश्चित नियम क्या हैं ? क्या वे किसी संस्कृत ग्रन्थ पर आधारित हैं ? इनकी तुलना हमारे स्थायी आभोग इत्यादि से कीजिये।

(१६)आलाप गायन के आपके नियम क्या है ? आपने उन्हें किस ग्रंथ से लिया है ?

(१७)इस अंचल में गाये जाने वाले सभी गीत प्रकारों के नाम दीजिये। संक्षेप में उनकी रचना के रहस्य समझाइये। उनके हिन्दुस्तानी समकक्ष गीत प्रकार बताइये ?

(१८)रागांग,भाषांग,क्रियांग.उपांग रागिनी किन्हें कहा जाता है ?इनकी स्पष्ट परिभाषा दीजिये।

(१९)महावैद्यनाथ की "मेल राग मालिका" से कुछ नमूनों को पढ़िये (मैं प्रदान करता हूं)

(२०)यहां कितने गमक माने जाते है ? उनकी परिभाषाएं,आधार एवं प्रायोगिक उदाहरण-दीजिये।

(२१)क्या आप संस्कृत ग्रंथों के किन्ही अलंकारों को पढ़कर गा सकते है! इनको "तान" एवं "गमक" से पृथक करिये।

(२२)३५ में से कौन से ताल लोकप्रिय नहीं है ?

(२३)क्या इस अंचल मे ताल प्रस्तार सामान्यतः सभी को ज्ञात रहता है तथा उसका व्यवहार में उपयोग किया जाता हैं ?

(२४)"स्वर प्रस्तार" की आवश्यकता क्यों है ? इसे कौन से ग्रंथ समझाते है ।

(२५)"तालमेरू" के अक्षर एवं गणनाओं को समझाइये ।

ताल के १० प्राणों में से मार्ग, यति, क्रिया को उदाहरण सहित समझाइये ।

(२७)क्या आप किसी पुस्तक की अनुशंसा कर सकते हैं जिसमें सभी ३५ तालो की मृदंगगत दो हों तथा उनके लिए संस्कृत श्लोक भी हो ।

(२८)"देशी ताल" इस शीर्षक के अन्तर्गत कोई १०८ या १२० ताल है ऐसा सुनते है । क्या यहां के संगीतज्ञों को वे सभी ज्ञात है तथा क्या उन सबको वे गाते भी है ?

(२९)मुझे कुछ तेलगु पुस्तकों में रागनियों के आरोह एवं अवरोह दिये हुए मिले है?क्या इतना भर पर्याप्त है । यदि नहीं तो,किसी व्यक्ति को उन्हें गाने के लिए और क्या-क्या आवश्यक है ?

(३०)उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित को समझाइये तथा अपने स्वरों के साथ इनका उपयोग करिये । क्या आप समझा सकते है कि मूल ७ स्वर किस प्रकार निश्चित हुए ?

(३१)कौन से मेल यहां सर्वाधिक प्रचलित है ?

(३२) आप मुर्च्छना एवं ग्राम से क्या समझते है ?

(३३) सम, विषम, अतीत, अनागत से आप क्या समझते ?

विनायक या गणेश ताल

गगगा ललपागश्च ललपंतु समन्वितं ।
सर्व विघ्नोपशांत्यर्थं भवेत्तालो विनायकः ॥

(३४) क्या नृत्य को एक विज्ञान की भाँति स्वीकार किया जाता है ? क्या इसके लिए कोई पुस्तके पढ़ी जा सकती है ।

(३५)संगीत में काव्य की रचना करने में साहित्य का क्या महत्व है ?

रामनांद, १६ दिसम्बर, १९०४

यति

प्र. :- क्या "यति" की जानकारी देंगे ?

उ. :- हां । ८।।८ = पि पी लि का यति
८१० U = गोपुच्छ
८U१०३ = विषम
।।।। = स म [ठीक इसी प्रकार से कागज पर लिखकर उन्होंने मुझे दिया] **श्रीनिवास आयंगार का यति स्पष्टीकरण** – आयंगार ने कहा कि

"यति" का अर्थ यह है कि इसमें तालों की सर्व साधारण रचना किस प्रकार होती है यह दिखाया जाना है। जैसे 'पिपीलिका यति में आगे बड़ा भाग, मध्य में बारीक तथा फिर से बड़ा भाग होता है। इसी प्रकार, जिस ताल में आदि स्थान में "गुरु" मध्य, में लघु अथवा द्रुत इत्यादि डालकर फिर से "गुरु" रखते हैं तब इस कृत्य को [ताल] पिपीलिका यति कहते है। इसमें कोई बहुत बड़ा संगीत-रहस्य नहीं है। संगीतज्ञ कवि की कल्पनिक उडानभर है। केवल ताल दृश्य रुप प्रगट किया है। रचनाओं में प्रथम दीर्घ अक्षर रखने का अर्थ यह है कि अक्षरों में बड़े अन्तराल रखना है। मध्य में छोटा भाग का अर्थ यह है कि जरा जल्दी कहने का भाग यहां पर आवेगा तथा अंत में फिर से बड़ा भाग।

गोपुच्छ यति = गाय की पूंछ ऐसा ताल का आकार। अर्थात प्रथम मोटा तथा बाद में धीरे-धीरे बारीक होता हुआ।

सम = सभी अंग एक समान।

विषय = मिश्रण, जैसे लघु, गुरु, द्रुत, लघु आदि आदि। मार्ग संगीत में ध्रुव, चित्र, दक्षिण, वार्तिक इत्यादि बताये गये है। अक्षरों की समय गणना तथा उन अक्षरों को कैसे कैसे लेना है इस विषय की जानकारी इसमें रहती है। हम जब कुछ भी गाते बजाते है तब किसी न किसी प्रकार के मार्ग व यति इत्यादि सभी प्राण आते ही है। इसके विना गायन हो ही नहीं सकता। विद्वानों ने इन विभिन्न कृत्यों को उनके विशिष्ट नामों सहित पहिचानने के लिए तथा उनके अनुसार पुनः पुनः वैसी ही रचना कर सकने के उद्देश्य से यह शब्द प्रयुक्त किये है। मेरे पास ३५ तालों के ऐसे सभी अलंकार लिखे हुए तैयार हैं। उनकी नकल आपको दूंगा। आप बम्बई पहुंच कर मुझे लिखें। आप जो मांगेंगे वह मैं नागरी में लिखकर भेज दूंगा। अलंकार इत्यादि से गायन में विचित्रता आती है तथा पुनः स्वर ज्ञान भी होता है। एक बार स्वर ज्ञान अच्छा हो गया तो फिर अलंकारों की अधिक परवाह नहीं रहती। वह व्यक्ति अपनी कल्पना से नवीन अच्छे अलंकार बना सकता है। गायकों को यह अच्छी तरह ज्ञात रहता है कि श्रोताओं को क्या रूचिकर लगता है। बार-बार अभ्यास पूर्वक अलंकार तैयार करने से स्वर ज्ञान अच्छा हो जावेगा, यह सहज ही समझने योग्य है। अलंकार मुखस्त रहने पर गायन में बीच-बीच में उनका उपयोग होता रहता है। वे भी तान की भांति काम में आते है।

प्र. :- आपके यहाँ ३५ ताल बतायें गये है। क्या यह सब ताल प्रचार में है?

उ. :- जो अच्छे कसबी है उनको ये ताल आते है। परन्तु प्रचार में सभी तालों में पद्म नहीं है। मुख्य प्रचार के ताल अर्थात [१] चतुरस्त्र त्रिपुट [२] चतुरस्त्र रुपक [३] मिश्र जाति झंप [४] खंडजाति अठताल [५] चतुरस्त्र एकताल ये ही है।

प्र. :- आपके यहां सम को क्या कहते है? तथा वह किस ताली पर आती है?

उ. – उसे "पदगर्भ" कहते हैं तथा वह आपके यहां की तरह ही है।

प्र. – आपके यहां "ताल प्रस्तार" की बड़ी महिमा है। क्या इस प्रस्तार के अनुरोध से अधिकांश गायक ताल के विभिन्न प्रकार करते है ? क्या उन प्रस्तारों की जानकारी सभी के परिचय की साधारण स्वरुप की होती है ?

उ. – सभी गायक यह नहीं कर सकते। यह करना कठिन है। बहुत थोड़ी संख्या में परन्तु प्रसिद्ध व्यक्ति ही यह कर सकते हैं। प्रस्तारों की जानकारी हुन्नरवान लोगों को ही है।

प्र. – पुस्तकों में १०८ अथवा १२० ताल देखें जाते है। क्या अपका कहना यह है वे सभी केवल गायकों के ताल है ?

उ. – नहीं। वे सभी को आते भी नहीं है और इतने सारे गाना भी संभव नहीं है। उनमें से कोई कोई तो केवल पढंत के योग्य ही दिखते है। कोई, केवल मृदंग की विचित्रता दिखाने वाले है। ऐसे कुछ लम्बे चौड़े और बिकट तालों में कुछ-कुछ लोगों ने केवल अपने आनंद के लिये चीजें बांध रखी है। जैसे "सिहनंदन" यह बडा लम्बा व चमत्कारिक आधातों का ताल है। उसमें मुझे एक तराना आता है (सुनाकर) ऐसी चीजें इन तालों में रची हुई कुछ लोग गाते भी हैं। परन्तु इस पर यह नहीं कहा जा सकता कि ये एक दम सर्व साधारण गायन के उपयोग के ताल है। इस प्रकार के लम्बे चौड़े तालों में तान बाजी नहीं चल सकती। एक के बाद एक केवल बोल ही कहने पड़ेंगे। उन्हें छोड़कर तान जरा सी बाहर गई कि फिर से अपनी जगह पर आने में कठिनाई होगी। कुछ ताल पूजा–अर्चन करने के ही होते है तथा मृदंग पर बजाने के लिये ही होते है।

प्र. – इस बात में क्या तात्विक रहस्य है कि ३५ ताल तो पृथक रुप से जातियों में मानकर चलना और १०८ तालों को एकदम स्वतंत्र रुप से लिख रखना।

उ. – ३५ तालों में लघु की भिन्न–भिन्न मूल्य को मानकर उन्हें बनाया गया है। जैसे लघु चतुरस्त्र जाति का मतलब चार अक्षर जिसमें है ऐसा ताल। यह नियम उन १०८ तालों के लिये नहीं है। वे स्वतंत्र है।

प्र. – क्या आप एकआद पुस्तक का नाम मुझे बतावेंगे जिसमें उन तालों के मृदंग के वे बोल है।

उ. – मुझे ध्यान में नहीं आती, परन्तु तेलगू में लिखी हुई एक है। उसकी नकल मैं दूंगा। कुछ ताल दिशा–पूजन के हैं जैसे कुंभ, समताल, विषम पूर्णचन्द्र आदि। ये गायन में अधिक नहीं आते।

प्र. – क्या उदात्त, अनुदात्त जैसे शब्दों की आपको जानकारी है ?

उ. – नहीं। वह वैदिक विषय है।

प्र. – क्या आपने यह विचार किया है कि मूल–सप्तक कौन सा होगा ?

उ. – नहीं।

प्र. – क्या श्रुति, मूर्च्छना, ग्राम इत्यादि समझा लिया है ?

उ. – मेरे पास मूर्च्छना प्रस्तार नाम से एक छोटी सी तेलगू लिपि में लिखी हुई पुस्तक ही है। मैं उसकी नकल भेज दूंगा। आप खुशी से उन सब को छाप सकते हैं। ये समस्त बातें अब प्रसिद्ध हो ही जानी चाहिये।

इतने में समय समाप्त हो जाने के कारण श्री आयंगार जाने के लिये उठ खड़े हुए। एक आद दिन और रहिये। मुझे आपसे कुछ हिन्दुस्तानी रागों के स्वरुप सीखने है ऐसा कहने लगे। परन्तु दुर्भाग्य से मुझे एक दिन भी रह सकना संभव नहीं था। अतएव नहीं कहना पड़ा।

श्री निवास ने यह भी बताया था कि कुछ दुर्लभ हस्तलिखित ग्रंथ हैं, जैसे–
(१) राग ताल चूडामणि (२) सगीत सार संग्रह (३) मूर्च्छना प्रस्तार (५) ३३ तालों के श्लोक व शब्द (५) ताल प्रस्तार व स्वर प्रस्तार (६) मूर्च्छना प्रस्तार

श्री आयंगार ने कहा– इन ग्रन्थों की नकलें देवनागरी में लिखवा कर आपको भेजूंगा। ये सभी ग्रंथ तेलगू लिपि में लिखें हुए हैं तथा मैंने उन्हें बड़े प्रयासों से प्राप्त किया हैं। मेरे मन में यह आत्रा है कि, चूंकि आपकों इस विषय का बहुत लगाव है अतएव उन्हें आपकों देना चाहिये। आप बम्बई पहुंच कर मुझे लिखें तो मैं इनकी नकलें करवा दूंगा। इस प्रकार से उन ग्रन्थों का कुछ न कुछ उपयोग होगा। लोगों को भी उनका उपयोग ही होगा। मैंने उनका बहुत आभार माना तथा बम्बई से लिखना मान लिया। नकल कराने हेतु पेशगी राशि भी देने लगा परन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं की। वे बोले कि जब वे भेजेंगे तब यह मालूम पड़ेगा कि कितना खर्च होगा। अतएव पैसे नहीं दिये। वे अपने साथ केवल एक ही पांडुलिपि अर्थात "संगीत चूड़ामणि" लेकर आये थे। उसमें से उन्होंने कुछ श्लोक मेलकर्त्ता से संबंधित संस्कृत में पढ़कर बताये। मैंने तंजोर में जगन्नाथ गोस्वामी की पुस्तक से जो श्लोक लिये हैं उन्हीं के समान ये श्लोक लगे। अस्तु। पुस्तक मिलने पर देखूंगा कि उसमें और क्या–क्या है ?

यह बात स्पष्ट लगती है कि यहां देव नागरी लिपि का प्रचलन बहुत कम है। सभी संस्कृत ग्रन्थ प्रायः तेलगू लिपि में है। मद्रास इलाके में मुख्य भाषा तमिल है फिर भी संगीत ग्रन्थ तेलगू में क्यों है यह मैंने बहुतों से पूंछा। इस पर वे बोले कि तेलगू भाषा संगीत के लिये बहुत ही उचित है। उसके उच्चारण बहुत ही मृदु और मधुर है। तमिल के वैसे नहीं हैं। दूसरा कारण जो उन्होंने बताया वह यह कि यहां संगीत प्रथम तैलंगी प्रान्त से आया। तेलंगी प्रान्त अर्थात उत्तरी हिस्सा समझिये। उसकी राजधानी विजय नगर थी। वहां संगीत की वृद्धि एवं बड़ी चर्चा थी। ऐसी कीर्ति है कि विजयनगर के महाराज जो अभी–अभी स्वर्गवासी हुए हैं

वे संगीत में अत्यंत प्रवीण थे। यहां पर आज कल के संगीत ग्रन्थकार भी अपनी संगीत पुस्तकें तेलगू भाषा में लिखते है यह स्पष्ट दिखता है। श्री दीक्षित की "संगीत प्रदर्शनी" नामक बड़ी पुस्तक भी तेलगू भाषा में ही है। मुझे अभी तेलगू भाषा नहीं आती अतएव उस भाषा की संगीत के लिये योग्य योग्यता कहां तक है यह बता सकना मेरे लिये संभव नहीं है। परन्तु अब भाषा सीखना प्रारम्भ कर रहा हूं तथा जैसा लगेगा वैसा बाद में लिखूंगा। तथापि चूंकि बड़े-बड़े विद्वानों का ऐसा मत है अतः वह भाषा मधुर होनी चाहिए, इसमें संदेह करने की आवश्यकता नहीं। श्री श्रीनिवासराव स्वभाव से मधुर व्यक्ति लगे तथा केवल मेरे कहने पर अधिक टाल-मटोल न करते हुए नकलें देने के लिये तैयार हुए, यह थोड़ा विचार करने जैसा है। तथापि इसमें सच्चाई भी हो सकती है। अब इन्हें बम्बई से लिखने पर क्या होता है यह देखना है। नकलें मिली तो अच्छा उपयोग होगा, नहीं तो उन पर अपना कौन सा अधिकार है?

स्फुट-विचार — ८ बजे प्रातः, मदुरा छत्रम् वापसी यात्रा

एक मजे की बात यह दिखती है कि सिंध प्रदेश की सर्वसाधारण काफी (चीजें) यदि हमने गाई तो इन लोगों को ऐसा लगता है कि वह कोई कर्नाटक राग है। इसी प्रकार गुजरात का "मांडरांग" यदि स्वरों को कंपित करके कहा तो यह भी उन्हें अपने जैसा ही लगता है। अपने यहां घाटी लोग डफ के साथ जो लावणी गाते है उसे भी कंपित स्वर से गाने पर अपनत्व की भावना से स्वीकारने ये लोग तैयार होते है। इस बात से यह दिखता हैं कि हिन्दुस्तानी गायन की रीति का मतलब हुआ एक सुधारी हुई आगे की कलात्मक सीढ़ी। उसमें भी कुछ बाते वर्जित करने योग्य हैं। परन्तु कुल मिलाकर मेरे मत से उस गायन को अधिक मूल्यवान मानना होगा। वहां के गायक, अभ्यास से जिस स्तर तक अपने गले तैयार करते हैं, वहां तक यहां किसी को भी पहुँचते हुए नहीं देखते और यह कोई भी कह सकेगा। विलंबित लय का गायन यहां किसी को भी नहीं सधता तथा पसंद भी कम आता है। उन्हें स्वरकंप की आदत होने के कारण तथा उँगलियों पर लघु गुरू के अक्षर गिनते हुए गाने की आदत होने के कारण बड़े संकट में पड़ जाते हैं। ऐसा कहना पड़ेगा कि विलंबित लय का गायन अधिक कौशलपूर्ण, अधिक प्रौढ़ तथा अधिक कठिन है। "द्रुत, मध्य विलंब पद' यह क्रम उनके मूल्य के अनुसार ही किया गया है, यह कहें तो भी शोभा देगा। यह अनुभव है कि जन सामान्य को द्रुत गायन जल्दी पसन्द आता है। हम जो निचले स्तर का गायन सुनते हैं वह जल्द लय में ही रहता है। मैंने श्री आयंगार को अत्यंत विलंबित लय में कुछ गाने को कहा तो यद्यपि वे प्रयत्न कर रहे थे तथापि प्रत्येक "मांड" राग गाते समय गुजराती लोग जैसा स्वर कंप करते हैं, वैसे स्वर वे गा रहे थे। उनको वैसे गाने का अभ्यास नहीं है। मेरा कहना यह नहीं कि उनको अथवा यहां के लोगों को ऐसे गा सकना संभव ही नहीं है। उन्हें अभ्यास से वह कर सकना अवश्य सम्भव होगा। तथापि वे ऐसा न करते हुए उल्टा यह कहते हैं कि वह रूचिकर नहीं होता यह तो उनका अज्ञान है ऐसा मुझे कहना पड़ता है। हिन्दुस्तानी गमक, मींड, व विलंबित गायन, अवश्य ही लेने योग्य है। इन लोगों को हिन्दुस्तानी गायन पर्याप्त सुनना चाहिये, इससे वह अपने आप बन पड़ेगा। कर्नाटकी संगीत अल्प समय में आ जाने योग्य है। मुझे यहां के स्वर ज्ञान के विषय में बहुत समाधान हुआ। मैं यहां के गायन की निंदा करता हूँ, ऐसा नहीं है। मुझे वह भी पसंद आया, परन्तु हिन्दुस्तानी संगीत

मैं जीवन भर सुनता रहा हूँ, तथा मुझे उसकी जानकारी अधिक हुई है इस कारण मेरा मन स्वभावत: निष्पक्ष नहीं हो सकता होगा। यहां के लोगों को तान लेते समय (मूर्च्छित रे व ध) तानें गाने की जो विधि पसंद आती है, वह मेरे विचार से कुछ अविकसित व कभी-कभी उबा देने वाली होगी। हिन्दुस्तानी मींड, गमक व तान बिना प्रयास सहज साध्य नहीं है उसमें कला-का अंश ही अधिक है। यह निर्विवाद है कि यहां तानों में एवं रागों में लय का सहारा अधिक लिया जाता है। परन्तु मैं यह कहूँगा कि यह तो मेरे मत की पुष्टि करने वाली एक बात है। इस संगीत की सहायता से पूर्व के और अभी के संगीत की विलुप्त कड़ियां कहीं-कहीं प्रकट होगी इतना तो निर्विवाद है।

अस्तु। मेरा यह मत दक्षिण के पारंपरिक क्रिया कुशल व्यक्तियों को अच्छा नहीं लगेगा यह बात मान्य है तथा यह भी सच हैं कि मेरे उद्‌गारों पर उन लोगों ने नाराजी ही व्यक्त की। परन्तु हिन्दुस्तानी राग का एक टुकडा लेकर जब रे, ध का चमत्कार उन्हें दिखाया तब उन्हें भी हंसी आ गई और कहने लगे कि यह सच है कि यह दक्षिण की एक खासियत अवश्य है, परन्तु इतना सा कर देने से आपका संपूर्ण राग शुद्ध नहीं हुआ। मैंने कहा कि मैं आपको संगीत की केवल विशिष्टता दिखा रहा हूं शुद्धता नहीं। यह मेरा अपना व्यक्तिगत मत है। दूसरा एक चमत्कार जो ध्यान में रखने योग्य देखने में आया वह यह कि यहां "आरती" अर्थात तमिल भाषा में हरिकीर्तन करने वाले "हरिदास" मराठी पदों का उपयोग करते हैं तथा उसका सारांश श्रोताओं को समझाते है। श्रोता मन में यह समझते हें कि जैसे वह एक बड़ा संस्कृत श्लोक हो जिसे बुवा "आरवी" में समझा रहें है। ये मराठी श्लोक इत्यादि मराठी तर्जों में ही कहने का प्रयत्न करते हैं तथा अनजाने में एक ऐसा प्रयास बन पड़ता हैं कि लोगों को दोनों संगीतों का यह समिलन अच्छा लगे। एक हरिदास ने तो मुझसे कुछ स्वयंवरों के आख्यान वहां से भेजने की प्रार्थना भी की है। यहाँ कीर्तन बहुत लोकप्रिय है। यदि उसमें हिन्दुस्तानी तर्जे न हो तो लोग खुश नहीं होते। उनका प्रयोग करने वाले का बड़ा सम्मान किया जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि हिन्दुस्तानी संगीत यहां पर अपना असर करने लगा है। वह अधिक प्रिय होने से वह अधिक कलात्मक मानने में कोई बड़ा दोष न होगा। वहाँ के लोगों का जैसा-जैसा प्रवेश यहां होगा वैसे-वैसे इस सुधार का परिणाम यहां के संगीत पर होता रहेगा ऐसा मैं मानता हूं।

सुब्राम दीक्षित के दर्शन — १७ दिसम्बर १९०४, इट्टैय्यापुरम्

दक्षिण के इन तमाम नगरों में सुनता था कि, इस विषय की सभी महत्वपूर्ण जानकारी मुझे इट्टैय्यापुरम् में 'दीक्षित' के पास मिलेगी। इस संपूर्ण क्षेत्र में उनसे बड़ा विद्वान कोई जीवित नहीं है। उन्होंने "संगीत संप्रदाय प्रदर्शनी" नामक एक वृहद पुस्तक लिखी है। उन्हें सभी सँस्कृत ग्रन्थ अवगत है तथा वे सभी उनके पास हैं। वे दीक्षित संप्रदाय के बड़े अभिमानी है। वे अति वयोवृद्ध है उन्हें राजाश्रय होने के कारण सुखी है। आप उनसे अवश्य भेंट कीजिये और तभी आपकी यह संगीत यात्रा सफल समझी जावेगी।

चित्रक्रम–५

पहिली कड़ी :–

संगीतोद्धारक सुब्राम दीक्षितर
सन् 1839 - 1906

इस वजह से मैंने निश्चय किया था कि इस नगर में विशेष रूप से जाकर "दीक्षित" के दर्शन करूंगा तथा इस विषय पर उनसे थोड़ा संभाषण भी करूंगा। इस निश्चय के अनुसार आज दिनांक १७ दिसम्बर को इस नगर में रेलगाड़ी से आकर वहां से इट्टैय्यापुरम् स्थान तक ८ मील घोड़ागाड़ी करके आया। इस गांव के दीवान साहब के लिये उसे सिफारिश पत्र मुझे तंजौर तथा मदुरा में ही मिले थे उन्हें मैंने एक दिन पहिले ही भेज दिया था। गांव में आते ही सीधे दीवान साहब के बंगले पर गया। उनसे परिचय इत्यादि होने के बाद सरकारी गेस्ट हाऊस में हमें ठहरा दिया। घर सुन्दर था। परन्तु वहा जाने के पूर्व उनके बरामदे में बैठा ही था कि उन्होंने श्री सुब्राम दीक्षित को वहीं बुलवा लिया और कहा कि बम्बई के मिहमान जो संगीत की खोज के लिये आने वाले थे वे ये ही हैं। उनको जो जानकारी चाहिये हो वह आप दें। उस समय ५ बजे गये थे तथा मैं भी यात्रा के कष्ट के कारण थका हुआ था अतः रात्रि ८ बजे संभाषण करना निश्चित कर हम लोग गेस्ट हाऊस आ गये। श्री सुब्राम दीक्षित आयु से बहुत वृद्ध हैं तथा उनकी मूर्ति किसी वयोवृद्ध श्रेद्धय ऋषि के समान दिखी। यह ज्ञात हुआ कि उन्होंने आजन्म संगीत में अत्यंत परिश्रम किये है। तंजौर के नागोजीराव तथा यहां के दीक्षित में परस्पर बहुत ही आदर भाव है। प्रत्येक नगर में जिनसे भी भेंट हुई वे "दीक्षित" को बड़ा सम्मान देते है तथा वे है भी वैसे ही ऐसा कहा जा सकता है। उन्होंने बताया कि उन्हें एक उत्तम शिष्य श्री चिन्नास्वामी मुदलियार मिले थे। परन्तु दुर्भाग्य से उनका देहान्त हो गया। जिसके कारण इस विद्या की बड़ी हानि हुई, ऐसा कहने में कोई संकोच नहीं है। श्री मुदलियार को इस विषय से सच्चा लगाव था। वे बड़े बुद्धिमान व विद्वान होने के कारण उन्होंने इस विद्या का बड़े पैमाने पर प्रसार करना प्रारंभ किया था। परन्तु अब वह सब रह गया। मैंने भी कहा कि श्री मुदलियार के ग्रंथ की एक नकल मुझे मेरे एक मित्र ने दिखाई थी तथा उनकी विद्वत्ता के संबंध में मुझे भी आदर उत्पन्न हुआ था। उनकी पुस्तक की एक नकल प्राप्त करने का मैं प्रयास कर रहा हूं, परन्तु मुझे अभी तक वह प्राप्त नहीं हो सकी है।

रात में छुट-पुट पानी बरसने लगा इस कारण श्री दीक्षित नहीं आये। अतएव वह दिन व्यर्थ ही गया, ऐसा कहना चाहिये। अस्तु।

सोमवार

दिनांक १८ दिसम्बर, १९०४

सुबह पानी गिर ही रहा था अतः यह सोच कर कि श्री दीक्षित शायद न आवे, मैं ही उनके घर गया। सुबह के लगभग ८ बजे थे तथा दीक्षित घर में अकेले ही बैठे थे। नमस्कार, आगत-स्वागत हुआ। इसके उपरान्त उनके भतीजे व्यंकटराव (जो यहाँ के स्कूल में अध्यापक हैं) को बुला कर लाया। श्री दीक्षित को मराठी तथा अंग्रेजी एकदम नहीं आती। अतएव व्यंकटराव ने जो अंग्रेजी जानते है, दुभाषिया का काम किया। हमारा संवाद इस प्रकार हुआ:-

मैं. - श्री दीक्षित साहिब, संपूर्ण प्रदेश में हरएक के मुंह में आपका नाम है। यह आपको इसलिये बता रहा हूं कि आपकी प्रशंसा और अधिक करने की आवश्यकता नहीं।

मैं संगीत विद्यार्थी हूं तथा बम्बई से आकर इस क्षेत्र में इस विषय की जानकारी एकत्रित करने के लिये मैं भ्रमण कर रहा हूं।

दीक्षित.- जो मुझे ज्ञात है वह आपका ही है।

मैं. – आपका समय आवश्यकता से अधिक नष्ट न करने का निश्चय करके आपसे प्रश्न पूंछकर उनके उत्तर संक्षेप में लेने का मैंने सोच रखा है। तदनुसार कल रात्रि कागज पर लिखे हुए कुछ प्रश्न ले आया हूं।

दीक्षित.- यह विषय बहुत विशाल है। इस पर जानकारी देने में बहुत दिन लगेंगे। यदि आप कुछ दिनों यहां रहें तो मैं आपको सभी जानकारी प्रदान कर दूंगा।

मैं. – यहां मुझे अधिक रहना कैसे संभव है ? मैंने कांग्रेस के समय घर पहुंचने का निश्चय किया है। तथा बाद में कोर्ट में भी उपस्थित होना है। परन्तु इतना कहता हूं कि मैं नवसिखिया न होने के कारण, थोड़े समय में बहुत सीख सकूंगा। अतएव वह चिन्ता, आप मत कीजिये।

दीक्षित.- ठीक है। पूछिये।

प्र. – दीक्षित परिवार का इतिहास व तरीख कहां मिलेगी ? गोविन्द दीक्षित,व्यंकट भरवी दीक्षित आदि आपके कौन और क्या थे यह जानने की मेरी इच्छा है।

दीक्षित.- यह सब जानकारी मैंने "संगीत संप्रदाय प्रदर्शिनी" नाम से लिखी हुई पुस्तक में थोड़े में दी है। (पुस्तक लाकर) यह इस पुस्तक के पांचवें पृष्ठ पर है। यह पुस्तक दो भागों में है। उनमें से पहिले भाग के पांचवें पृष्ठ पर है। संक्षेप में यह कहूं कि हमारे पूर्वज गोविंद दीक्षित तंजौर के मुख्य मंत्री थे। उस समय "नाईक" घराने का राज्य था। गोविंद दीक्षित का काल १४९९-१५३० कहा जा सकता है। (टिप्पणी–अर्थात् लगभग राजा भान का समय)। व्यंकटभरवी उनका लड़का था। यह परिवार संगीत विद्या में अत्यंत प्रवीण था। व्यंकटभरवी का यह कहना है कि ७२ मेलकर्ता की कल्पना व रचना उनकी स्वतः की है।

प्र. – हम यह मानकर चलें कि मेलकर्ता की रचना व्यंकट भरवी ने की परन्तु उनके पिता गोविंद दीक्षित कौन सा संगीत गाते थे ? क्या उस समय कोई राग अथवा मेल अथवा कोई पद्धति थी ? यदि वह थी तो उस विषय में क्या व्यंकट भरवी कुछ लिखते है।

उ. – इस प्रश्न का उत्तर कठिन है। परन्तु व्यंकट भरवी अपनी "चतुर्दंडिप्रकाशिका" में कहीं–कहीं 'तल्लक्षणं तु संगीत सुधानिधौ प्रदृश्यते' ऐसा कहते हुए पाये जाते है। क्या इस से हम यह नहीं कह सकते हैं कि वे उस ग्रन्थ को आधार के लिये लेते थे ? कहीं कही रत्नाकर का भी उल्लेख है। (टिप्पणी = सु नि. एक नया ही नाम है, वस्तुतः वह शब्द "कला निधि" ऐसा होगा। वृद्ध वस्था में विस्मरण हो जाना संभव है।)

प्र. – क्या आपने 'संगीत सुधानिधि" यह ग्रन्थ कभी देखा है ? अथवा क्या आपने सुना है कि वह अमुक स्थान पर उपलब्ध है ? यदि हो तो मैं उसको प्राप्त करने के सारे प्रयत्न करूंगा ।

उ. – नहीं । वह तो नष्ट हो गया है ।

प्र. – क्या आपको संस्कृत आती है ?

उ. – यह नहीं कह सकता कि अच्छी आती है । मुझे अनुभव बहुत है तथा अनेक श्लोक इत्यादि मुझे मुखस्थ है । परन्तु मैं यह नहीं कहूंगा कि मैं नियमित रूप से संस्कृत भाषा का जानने वाला हूं, ।

प्र. – क्या आपने रत्नाकर पढ़ा है ? अथवा क्या वह समझ लिया है ?

उ. – मैंने प्रत्यक्ष नहीं पढ़ा । परन्तु मैंने उसमें वर्णित विषयों की जानकारी बहुत प्राप्त की है । मैंने मेरी पुस्तक में रत्नाकर" के वाक्यांश दिये है ।

प्र. – (क्रोमेटिक स्केल गले से गाकर) मैं समझता हूं कि आपकी संगीत पद्धति का आधार ये ही १२ स्वर हैं ? क्या इन्हीं पर सभी ७२ मेल स्थापित किये गये हैं ? इनके अतिरिक्त मेलकर्ता के आधार स्वरूप और कोई नाद अथवा स्वर है ?

उ. – यही हमारे १२ स्वर है तथा इन्हीं के ऊपर हमारे सभी मेल व राग रचे गये हैं ।

प्र. – यदि व्यंकट भरवी नामक दीक्षित ने इनकी रचना की तथा वे गोविंद दीक्षित के बाद के हैं तो मेलकर्ता का समय बहुत नजदीक का आ जाता है ।

उ. – वह काल १५३०–१५७२ तक होगा ।

प्र. – उस काल के पहिले का संगीत कैसा, क्या था यह जानने का क्या उपाय है ?

उ. – कुछ नहीं । परन्तु ऐसा लगता है कि रत्नाकर आदि ग्रन्थ के अनुसार संगीत रहा होगा ।

प्र. – आप संगीत विद्वान के रूप में प्रसिद्ध हैं । अतएव आपको किस संगीत संप्रदाय का आधार स्तंभ माना जाय ?

उ. – व्यंकटभरवी के संप्रदाय की । 'चतुर्दण्डित प्रकाशिका' इस ग्रन्थ में बताई हुई पद्धति का ।

प्र. – क्या ग्रंथकर्त्ता ने "चतुर्दण्डि प्रकाशिका" इस पुस्तक का निकट का संबंध रत्नाकर से स्थापित किया है ? अर्थात क्या व्यंकटभरवी यह लिखते हैं कि मैं ये मेल अमुक बातों के आधार पर करता हूं ?

उ. – नहीं। ऐसा उल्लेख किया हुआ दिखाया नहीं जा सकता। परन्तु मेरे सुनने में यह आया है कि व्यंकटभरवी के समय में १८ मेल थे तथा उनसे उसने १८ × ४ = ७२ उत्पन्न किये। मेरे पास तेलगू भाषा "चतुर्दण्डिप्रकाशिका" पर टीका है, उसमें ऐसा ज्ञात होता है।

प्र. – क्या आप यह बता सकेंगे कि यह १८ मेल कौन है ?

यह प्रश्न सुनकर ऐसा लगा कि दीक्षित बताने या न बताने की चिन्ता में पड गये है। यदि बताते हैं तो एक बड़ी गुर की बात जाती है। न बतावें तो एक सभ्य प्लीडर जो दीवान साहिब की सिफारिश लेकर चर्चा करने आया है उससे यह कहना शोभा नहीं देगा कि "नहीं बताते"। अतएव टालमटोल करने लगे कि उन्हें पुस्तक देखनी पड़ेगी। एकदम उत्तर देना कठिन है। आपको बहुत कम समय है।

मैंने कहा, दीक्षित साहिब ! आप अपने मन में मेरे विषय में एकदम शंका मत लाइये। मैं संगीत का एकदम सच्चा समर्पित सेवक हूं तथा आपके पास से मिली जानकारी आपके नाम से ही प्रसिद्ध करूंगा तथा उससे आपकी ही यश वृद्धि होगी। मुझमें स्वार्थ लेशमात्र नहीं है। यदि आपको सभी मेल ज्ञात न हो तो एक–दो कहने से भी चलेगा। अवश्य कहें।

उ. – इस पर अंदर जाकर हाथ से लिखी एक कापी ले आये एक नाम "गांधारोदीच्यवा", और एक "षड्जकैशिकी" ऐसा भी है। इस प्रकार के अठारह मेल पहिले थे। उनको लेकर उनकी सहायता से व्यंकटभरवी ने बहत्तर मेलों की रचना की है।

यह उत्तर सुनते ही मुझे जो आनंद हुआ वह कहते नहीं बनता। मैं आज कितने ही दिनों से यह शोध कर रहा हूं कि यह दक्षिणी पद्धति यदि प्राचीन ग्रन्थों से संबद्ध की जा सकी तो कितना लाभदायी हो सकता है। दीक्षित का उत्तर चाहे जितने प्रमाण में सच्चा सिद्ध हो परन्तु शोध को आगे बनाए रखने के लिये कम से कम एक दिशा तो मिली। उपर्युक्त नाम सुनते ही रत्नाकर में अठारह जाति (षाड्जी से नंदयन्ति) तक पढ़ी।

ये सभी नाम सुनते ही श्री दीक्षित की मुद्रा चमत्कारिक बन गई। वें कहने लगे कि यदि मेरे जैसा व्यक्ति उनके पास एक वर्ष तक रहा और उनके साथ रत्नाकर पढ़कर कुछ आवश्यक जानकारी दे तथा उनके अनुभव का उपयोग कर लें तो एक महत्व का कार्य हो सकता है। उन्हें संस्कृत भाषा का ज्ञान पर्याप्त नहीं है परन्तु केवल तर्क से बहुत कुछ सोचा है।

मैंने कहा, दीक्षित साहिब ! आपके केवल दिशा निर्देश पर ही मैं बहुत सोच–विचार कर सकूंगा। आज आपने मुझे एक बड़े महत्व की कुंजी दी है। यदि उसका उपयोग हुआ तो मैं करके देखूंगा। इस पर श्री दीक्षित ने कहा कि यह एक बड़ा गूढ़

रहस्य है तथा इसे प्राणो की भांति उन्होने संभाल कर रखा है ।

प्र. – रत्नाकर में तो बाईस श्रुतियां बताई हैं और उनमें से केवल बारह का उपयोग आपके यहां किया गया है ऐसा दिखता है । क्या आपके पढ़ने या सुनने में आया है कि शेष का उपयोग क्या, कैसा व कहां करना है ? "चतुर्दण्डिप्रकाशिका" में आपके इस आधार-भूत ग्रन्थ में, क्या इस विषय पर कुछ बताया गया है ?

उ. – यह बात सच है कि बाईस में से केवल बारह श्रुति ही हमारे यहां संगीतोपयोगी मुख्य मानी गई है । अन्य का क्या किया जाय इस संबंध में व्यंकटभरवी ने कहीं बताया हुआ मुझे ज्ञात नहीं ।

मैं – मेरे मन में आपकी "चतुर्दण्डिप्रकाशिका" की नकल प्राप्त करना है । क्या आप कृपाकर उसकी नकल मेरे खर्चे पर मुझे देंगे ? आप कहते हैं कि आपका संस्कृत ज्ञान साधारण है । अतएव मुझे लगता है कि यदि मेरे समान व्यक्ति के हाथ में वह पुस्तक रही तो उसका मैं अच्छा उपयोग करूंगा ।

ऐसा लगा कि उनको मेरी यह प्रार्थना पहिले तो अच्छी नहीं लगी । तथा वे कहने लगे कि मेरे ग्रन्थ में कुछ भाग नष्ट हो गया है । कुछ पृष्ठ फट गये हैं । मैं उन्हें आपको पढ़कर सुनाऊंगा । परन्तु मैंने नकल देने के लिये बहुत अनुनय करने के कारण उनको 'हां' या 'ना' दोनों ही करते नहीं बना ।

मैं – दीक्षित साहिब, आपको उत्तर देने में थोड़ा संकोच हो रहा है । इस विषय पर हम लोग बाद में बात करेंगे । रत्नाकर में राग प्रकरण में रागों को दशविध कहा गया है । अर्थात्, ग्रामराग, उपराग, राग, भाषा, विभाषा इत्यादि । परन्तु आपके यहां केवल

रागांग, भाषांग, क्रियांग और उपांग ऐसे मात्र चार शब्द ही सुनता हूं, ऐसा क्यों ?

दीक्षित– व्यंकटभरवी कहता है पहिले छः प्रचार में नहीं होने से छोड़ दिये हैं ।

प्र. – "राग विवेक" में जो पांच प्रकार की 'रीति' बताई हैं (पुस्तक निकाल कर, उसे पढ़ कर एवं समझ कर) उसके विषय में क्या आप कोई जानकारी देंगे ?

उ. – आश्चर्यचकित हो कर ये नाम मैंने सुने हैं,परन्तु यह विषय कठिन है तथा उसकी जान-कारी मुझे नहीं है ।

प्र. – जाति के लक्षण तेरह बताए गये है । (उन्हें पढकर) आपके व्यंकटभरवी उनमें से कितनों का उपयोग करते हैं और शेष को क्यों छोड़ते हैं ?

उ. – आप इस विषय में इतनी गहराई में पहुंच गये हैं यह देखकर मुझे अत्यंत आश्चर्य एवं आनंद हो रहा है । इस प्रकार के प्रश्न मुझे किसी ने और कभी भी नहीं किये थे । मेरी बहुत इच्छा है कि आपका एवं मेरा कुछ दिन सहवास हो । मैं एक वृद्ध व्यक्ति

हूं। मेरी जरूरतें नितांत सीमित हैं। आपके साथ मुझे रहने दीजिये। कम से कम एक वर्ष तक ऐसा करें फिर उसके बाद मैं काशी यात्रा करके वापस घर आऊंगा। रत्नाकर के वे रहस्य जो आप मुझे पढ़कर सुना रहे हैं, उनमें के कुछ मैंने अपने गुरूमुख से सुने हैं। कुछ शंकाओं का समाधान मैंने स्वयं खोज निकाले है। परन्तु इस प्रकार के गुप्त विषयों पर किसी के साथ मैंने कभी भी वार्तालाप तक नहीं किया। कारण, हमारे यहाँ के संगीत विद्वान ऐसे लोग है कि मेरी बातें सुनकर मुझसे ही उल्टा कहेंगे कि उनके गुरुजी ने यह सारी जानकारी उन्हें पहिले से ही समझा दी थी। आपका ज्ञान देखकर मुझे बहुत आनंद हुआ है। मुझे ऐसा लगता है कि आप मेरे अनुभव का सही-सही उपयोग करेंगे। मुझे बहुत सी बातें परम्परा से अवगत हैं। परन्तु उन रहस्यों को प्रकट करने के लिये मुझे सुयोग्य पात्र नहीं मिला। आप रत्नाकर से जानकारी देते हैं। उस पुस्तकीय ज्ञान की अनुभवसिद्ध जानकारी मेरे पास देखने को मिलेगी। मुझे पैसे का कोई लोभ नहीं है। मेरी अब यह तीव्र इच्छा है कि मेरी कीर्ति योग्य व्यक्तियों द्वारा हो। मेरी वृद्धावस्था हैं। अब प्रत्यक्ष गायन-वादन मैं क्या करूं ? परन्तु मुझे लगता है कि शास्त्र मैं आपको बताऊंगा वह अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा। मैं आपको अपने पुत्रवत् मानकर सब कुछ बताऊंगा तथा यह समझूंगा कि अब मैं देहत्याग के लिये तैयार हो गया हूं।

ये शब्द सुनकर मेरा सचमुच गला भर आया। दीक्षित की वह पूज्य मूर्ति हूबहू रावजी बुवा के समान – मुंह में एक भी दांत नहीं, सर पर बाल नहीं के बराबर, शरीर पर फलालेन की ऊबदार बंडी, कान में कुंडल, आदि सब देखकर विलक्षण प्रकार की वृत्ति हुई। स्नेह सहानुभूति एवं सम्मान इन सबका मिश्रित भाव मन में उत्पन्न हुआ। अस्तु। उन्होंने कहा, आपके पास रहकर रत्नाकर सुनूंगा, तथा जहां-जहां मुझे अपनी जानकारी का आभास देने वाले प्रकार दिखेंगे वहां, उन्हें आपको समझाऊंगा। मेरी भी ज्ञान वृद्धि होगी, और अपनी शंकाओं के कुछ उत्तर भी मिलेंगे। हम दोनों मिलकर कुछ महत्वपूर्ण बातों पर शोध करें।

मैं. – दीक्षित साहब। आपके विषय में, मेरे मन में अत्यंत पूज्य भाव एवं प्रेम उत्पन्न हुआ है। मेरे सांनिध्य में आपके रहने में मुझे कोई आपत्ति नहीं। पांच वर्ष भी रहें तो कोई चिंता नहीं। मुझे भी ऐसा लगता है कि ऐसा हो। मुझे भी कुछ अड़चने आई हैं जिनके समाधानार्थ मैं चतुर्दिक घूम रहा हूं। तथापि मुझे शास्त्र का ज्ञाता तथा विज्ञान का भक्त अभी भी कोई नहीं मिला। आपको देखकर मुझे परम संतोष हुआ। घर जाकर, मैं आपको वहां ले जाने का विचार अवश्य करूंगा। केवल एक-दो अड़चनें मुझे दिख रही हैं और वे ऐसी है :-

(१) आप एकदम वयोवृद्ध, शरीर जीर्ण (२) वहां एकदम अकेले (३) वहां की आवहवा भिन्न (४) मुझे तेलगू भाषा नहीं आती और आपको दूसरी भाषा नहीं आती।

दीक्षित– आप इन किसी भी कठिनाईयों को मन में न लाते हुए मुझे बुला लीजिए। मेरी अब आंतरिक इच्छा है कि कुछ पर्यटन करूं और मुझे जो आता है उसे प्रकाशित करूं। मुझे चिन्नास्वामी मुदलियर मिले थे। उन्हें मैं सुपात्र, अत्यंत बुद्धिमान समझकर कुछ बताने लगा था कि उस बीच उनका देहांत हो गया। इससे मैं निराश हो गया। परंतु मैं यह मानता हूं कि दैववशात् ईश्वर ने उनकी अपेक्षा अधिक बुद्धिमान मित्र से मेरी भेंट कराई है। श्री मुदलियर अभी भी इस विषय की इतनी गहराई में नहीं गये थे। जो भी ग्रंथ मेरे पास हैं वे सब आपके ही है। मेरे पास तालपत्र पर बहुत सी पुस्तकें है। वे तेलगू में हैं। वे भी मैं आपको दूंगा तथा समझाऊंगा।

अस्तु। इस प्रकार पारस्परिक गुणगान के उपरांत मैंने उन्हें बम्बई ले जाना स्वीकार किया। ऐसा सोच रहा हूं कि संगीत के शोध हेतु आगामी वर्ष में उत्तर की ओर जाऊं। उस समय इनकी तीर्थ यात्रा भी हो सकेगी। इन्हें पैसे का लोभ एकदम नहीं है। केवल मुझे ज्ञान प्राप्ति करा देने की सद्बुद्धि इनमें जागने का यह ईश्वरीय चमत्कार मुझे आश्चर्यकारक लगा। (संभाषण पुन: प्रारम्भ)

प्र. – दीक्षित साहिब। आपने मुझे एक बात अत्यन्त महत्व की, बहुत ही सयुक्तिक और सत्य ठहरने पर बड़ी गुर की कुंजी कहने योग्य बताई है। मैं यह स्वीकार करता हूं कि वह मुझे मेरी इतनी मिहनत के उपरांत सूझना ही चाहिए थी परन्तु नहीं सूझी। अब मैं उसके आधार पर विचार करने वाला हूं। यदि इससे समाधानकारक परिणाम् निकला तो मैं यह मानूंगा कि भारत के संगीत को इतिहास दिलाने वाला तथा उसकी एकीकरण करने वाला एक बड़ा मार्ग ही अब प्रशस्त हो गया है। इसका संपूर्ण श्रेय आपको होगा ऐसा मैं मानता हूं।

दीक्षित– देखें जरा बताइये तो वह कौन सी बात मैंने कही।

मैं – आपने मुझे ऐसा बताया कि व्यँकटभरवी ने अपने मेल पूर्ववर्ती १८ मेलों से तैयार किये तथा उन १८ मेलों के नाम है गांधारोदीच्यवा, षड्जमध्यमा, षाड्जी इत्यादि। अब तक रत्नाकर पढ़कर इन १८ मेलों तक तो मैंने समझ लिया था। परन्तु "जाति" यानी "मेल की एक कुंजी" तथा उससे व्यंकटभरवी ने अपने ७२ अन्य किसी युक्ति से किये, यह दूसरी कुंजी मुझे नहीं मिली थी। इसका अधिक स्पष्टीकरण उस पुस्तक मे देखूंगा।

दीक्षित– मैं सविनय कहता हूं कि अभी आप मुझे इतनी उच्च श्रेणी में स्थापित मत कीजिये। व्यंकटभरवी स्पष्ट रुप से ऐसा कहीं भी नहीं कहते है। (कैसा घुमा दिया विषय को) उन्होंने १८ से ७२ किये यह मेरा अपना कथन हैं। उनके नाम एवं लक्षण मैंने ही दिये है। उनके वर्णन इस संगीत "रत्नाकर" की जातियों के समान मुझे लगे और मैंने यह निश्चय किया कि ये ही वे १८ मेल है। इस विषय पर मैंने कैसे विचार किया है, उसमें मुझे क्या–क्या कठिनाइयां आती है, रत्नाकर के जाति प्रकरण की सहायता

लेने में मुझे आपकी किस प्रकार की मदद हो सकती है यह सब फुरसत से जब हम दोनों एकत्रित रहेंगे तब मैं आपको समझाऊंगा यह स्पष्ट है, कि मेरे पास व्यंकटभरवी की विद्या नहीं है। परन्तु मैं सदा यह तर्क करता आ रहा हूं कि प्राचीन व अर्वाचीन संगीत का संयोग किसी न किसी प्रकार से कहीं न कहीं कराया जाना चाहिये। आज आप भी इसी बात के शोध में व्यस्त है यह देखकर अपने किसी आप्तजन की प्रत्यक्ष भेंट होने जैसा आनंद मुझे हुआ है।

प्र. – आपसे "चर्तुदण्डिप्रकाशिका" की नकल मैं जिस उद्देश्य से मांग रहा हूं वह आपको बताता हूं। मुझे यह देखना है कि व्यंकटभरवी ने उनके अपने मेलों के पूर्व की वास्तविकता संस्कृत में किन शब्दों में क्या दी है, तथा वह रत्नाकर के किस भाग से जोड़ी जा सकती है ? आपके संस्कृत भाषा के अल्पज्ञान के कारण, किन्हीं बातों का सुस्पष्ट खुलासा न हुआ होगा। रत्नाकर में "जाति" तो दी हुई ही हैं, परन्तु एक-एक जाति अमुक राग की ऐसा यत्र-तत्र उल्लेख है। ऐसे में व्यंकटभरवी अपने पूर्व के प्राचीन १८ राग कौन से मानते हैं, यह देखना अत्यन्त आवश्यक है।

दीक्षित– यह बात तो सही है। इसका शोध लगाने के लिये मैं भी बहुत आतुर हुआ हूं। तथा इसी लिये तो चाहता हूं कि हम दोनों एकत्र रहकर इस पर विचार करें। रत्नाकर की "जाति" को स्पष्ट सिलसिलेवार स्वरूप मुझे भी समझ लेना है। यदि आप इस बार कम से कम आठ दिन मेरे पास रह सकते तो परस्पर बड़ा उपयोग होता। यह मैं आपको दिखाने वाला था कि मेरी पुस्तक में, जातिलक्षण जो मैंने परंपरा से सीखे हैं, उनका उपयोग कैसे किया गया है। परन्तु मैं यह दुर्भाग्य समझता हूं कि आपको अवकाश नहीं है। अब मेरी यह निश्चित धारणा है कि आप 'चर्तुदण्डिप्रकाशिका' पुस्तक का उपयोग सचमुच अच्छा ही करेंगे। अतएव उसकी नकल मैं आपको दूंगा। परन्तु यदि आप उसे दीवान साहिब से मांगेंगे तो वे नागरीलिपि लिखने वाले किसी व्यक्ति से कहकर वह काम करवा लेंगे। तथापि एक बात और कहता हूं कि केवल उस पुस्तक की नकल से काम नहीं चलेगा। उसके साथ व्यंकटभरवी की और एक पुस्तक "राग प्रकरण" भी होनी चाहिए। यह दोनों एक साथ होने पर बड़े महत्व के विषयों का स्पष्टीकरण हो सकेगा। हल्के से इशारे से इतना ही सूचित करता हूं कि मेरी संगीत संप्रदाय पुस्तक में 'रागप्रकरण' पुस्तक का बहुतांश भाग श्लोक-लक्षणों सहित दिया हुआ है, तथापि "चर्तुदण्डिपुस्तक" का भाग नहीं डाला है। इसमें आप थोड़ा कपट भाव भी कह सकते हैं। परन्तु दीवान साहिब ने पुस्तक की बहुत जल्दी मचाई इस कारण वैसा नहीं किया जा सका, ऐसा एक कारण भी मैं दे सकूंगा। यह पते की बात मैंने आपको, मेरे सच्चे मित्र होने के कारण बताई है।

मैं – मुझे "चर्तुदण्डिप्रकाशिका" पुस्तक मिलने पर, आपकी पुस्तक से श्लोकों में दी गई जानकारी का मिलान करने से कैसा लगता है, यह देखूंगा। परन्तु "राग प्रकरण" के प्रारंभ की प्रस्तावना के श्लोक भी मुझे चाहिये।

दीक्षित– मैं उन्हें लिखवाकर भेजूंगा। "राग प्रकरण" में रागांग, भाषांग इत्यादि के श्लोक भी उपयुक्त है, वे भी भेजूंगा। परन्तु उन्हें पढ़कर उनका उपयोग करते समय मेरी उपस्थिति भी वहां हो ऐसी मेरी तीव्र इच्छा है।

मैं – बहुत अच्छा है। इश्वर की इच्छा से वह भी हो सकेगा। घर जाने पर मैं तेलगू सीखूंगा तथा एक दुभाषिया मिलने पर आपको बुलाऊंगा, तब आप आवें। लगता है कि यह दो–तीन माह में हो सकेगा।

दीक्षित– मेरे राजा ने यदि मुझे स्वीकृति न दी तो भी मैं ऐसे ही आऊंगा। कारण यह मेरी अत्यन्त तीव्र इच्छा है कि इस प्रकार के महत्व के विषय का स्पष्टीकरण मेरे हाथ से और मेरी मदद से हो।

प्र. – आपकी पुस्तक से तंजौर के नागोजीराव ने श्रुति सप्तक चित्रों में निकाले हुए मुझे दिखाये। उसमें रत्नाकर के च्युतमध्यम, व च्युत षड्ज इन स्वरों पर अंतर, काकली, लिखा हुआ है। उन्हें देखकर मैंने नोट किया था कि इनका कारण आपसे पूछूंगा।

दीक्षित– हां। यह सच है। परन्तु व्यंकटभरवी ने यह जानबूझकर किया हुआ दिखता है। प्रचलित संगीत में, इस तरह का रिवाज प्रतीत होने से ऐसा किया होगा। मैंने अपनी पुस्तक में उनका श्लोक रखा है। "च्युत मध्यम गांधार च्युत षड्ज निषाद कौक्रमात् अतर काकल्यौं". इत्यादि। रामामात्य के स्वर मेल कला निधि से यह श्लोक 'भरवी" ने लिया हैं।

प्र. – क्या श्री "भरवी" रामामात्य के ग्रंथ "कलानिधि" को आधार मानते हैं ?

दीक्षित– नहीं। कहीं-कहीं तो उसका खंडन करते हैं।

मैं – इस ग्रंथ को मैंने मद्रास की ओरियन्टल लाइब्रेरी से मंगवाया है, तथा वह मुझे शीघ्र ही मिलने वाला है। वह मिला कि मैं इन दोनों पुस्तकों के मतों का ताल–मेल स्थापित करने का प्रयास प्रयत्न करूंगा।

दी– खंडन का एक उदाहरण यह है कि रामामात्य अपने समय में कुल २५ मेल मानते है तथा उनसे सभी राग–रागिणी उत्पन्न हुए कहते है। श्री "मरवी" ऐसा दिखाना चाहते है कि इन २५ में से ७ मेल पृथक रुप से भिन्न नहीं है। वे १८ में ही समाविष्ट होंगे और फिर स्वयं १८ ही मानते हैं। (यह तो बहुत ही महत्वपूर्ण संकेत है)

प्र. – संगीत रत्नाकर में जाति या मेल के विभिन्न "अंश" बताए गये हैं। एकाद 'जाति" को ७ अंश बताये हैं। इस प्रकार अनेक स्वर "अंश" हो सकते हैं क्या ? और फिर एक ही जाति को ? इससे क्या समझा जाय ?

दीक्षित– अंश को यदि "जीव" स्वर कहा तो एकाद मेल को चार एकाद को पांच आदि–आदि

दिये हुए भी हमारे यहां मानते है। कभी–कभी विस्तार करते समय एक मुख्य स्वर की कल्पना करते हुए उस पर बार–बार आते हुए विभिन्न स्थानों पर विश्रांति करते है तथा उस स्वर को महत्व दिया जाता है। इस प्रकार का कृत्य मेरी पुस्तक में भैरवी राग में आपको दिखेगा। रत्नाकर का गूढ़ रहस्य मुझे नहीं मालूम (यह तर्क महत्वपूर्ण है)

प्र. – क्या व्यंकटभरवी ने अपनी पुस्तक में कहीं यह लिखा है कि उन्होंने अपने स्वरों की संज्ञायें किस आधार पर निर्धारित की ? देखिये नं. ! उनका शुद्ध "रे" यानि पाश्चात्य फ्लेट "रे" हुआ और वही हमारा कोमल "रे" होता है। संस्कृत ग्रन्थों में शुद्ध "रे" अर्थात जो आपका चतुः–श्रुतिक "रे" है वह हुआ। (परिजात देखिये) यह एक बड़ी गड़बड़ हुई है। इसकी जोड़–तोड़ उन्होंने कैसी की है, यह समझने की मेरी इच्छा है। अथवा क्या ये संज्ञाएं केवल एकदम नवीन एवं मननानी है ? (मेरी भाषा यहां पर कुछ असंतुलित सी हो गई)

उत्तर – इस पर कुछ कहना कठिन है। मैं इसे ठीक तरह से नहीं समझ सका हूं। अतएव उसे मनमानी ही कहनी पड़ेगी। परन्तु इसका शोध समाधान यदि आपको कुछ न कुछ मिला तो मुझे भी सूचित कीजिये। मुझे उसका उपयोग होगा।

प्र. – ग्रामों के संबंध में श्री 'भरवी' क्या कहते है ?

उत्तर – वे कहते हैं कि उनको अब एक ही षड्ज–ग्राम दिखता है। यह जानकारी मेरी पुस्तक में पृष्ठ १२ पर मिलेगी।

प्र. – क्या आपने "रागविवोध" पढ़ा है ?

उत्तर – नहीं पढ़ा। यह सुनता हूं कि वह अच्छा ग्रन्थ है। परन्तु उसके संबंध में आप क्यों पूंछते हैं ?

उत्तर – उसमें 'मेल' लिखे हुए है। उनमें २३ प्रसिद्ध होने के कारण स्वीकृत किये है। यह ग्रन्थ श्री भरवी के समीपवर्ती काल का है। उसमें १७० प्रकार १५ विकृत स्वरों से व २ शुद्ध स्वरों से करने बाबत कहा गया है। आपके यहां भी लगभग १७० जन्य राग इत्यादि बताए हुए पाये जाते है। इस कारण यह मन में आया कि इनमें कोई दूर का या नजदीक का संबंध स्थापित करने योग्य है कि नहीं ?

दीक्षित– उसमें इस तरह की बातों का होना सचमुच विचारणीय है। वह ग्रन्थ मेरे देखने में आया। परन्तु उसे समझने की इच्छा अब बहुत है। उसमें के २३ मेल कौन से है? (मैंने वे सब पढ़कर सुनाये, उन्हें सुनकर) मेरी समझ के अनुसार इस ग्रन्थकार ने रामामात्य के "स्वर मेल कला निधि" के अनुसार अपने राग लिखे होंगे। वे व्यंकट-भरवी के मेल नहीं हैं। वह जो १८ मानता है वे ये है।

(१) मुखारी = शुद्ध मेल
(२) सामवराली = काकली नी + शुद्ध स्वर
(३) भूपाल = साधारण गांधार + तोड़ी मेल
(४) हिजेज = अन्तर गान्धार + शेष शुद्ध
(५) वसंतभैरवी = अन्तर गान्धार + कैशिक निषाद
(६) गौरी = अंतर गान्धार + काकली निषाद
(७) अहीरी = पंच श्रुतिक रे + कैशिक निषाद
(८) श्री = पंच श्रुतिक रे + साधारण ग + पंच श्रुतिक ध + कैशिक निषाद
(९) कांबोजी = पंच श्रुतिक रे, अन्तर ग। पंच . ध + कैशिक नी
(१०) सामंत = पूर्वांग शंकराभरणं + ध षट् श्रुतिक + काकली "नी"
(११) देशाक्षी = षट् रि + अंत. गन्धार + पंच. ध + काकली निषद
(१२) नाट = षट्रि" + "अंतर ग" + षट्. ध + काकली नि
(१३) वराली = शु. रे + शु. ग. + च्युत म या प्रति "म"। शु. ध + का. नी
(१४) पंतुवराली + शु. रि + साधा. ग। शुद्ध धैवत + काक. नी (गलती से किंतु अब वे अत. गन्धार है)
(१५) शुद्ध रामक्रिया = माया मालव के साथ शु. रि + अं. ग + शु. ध. का. नी
(१६) सिंहरव = (नया मेल, जिसकी रचना उसने स्वयं की ऐसा वो कहता है) + साधा. ग + वराली म + पंच. ध + कै. नि
(१७) कल्याणी = शंकराभरण पंच. रे + साध. ग. + प्रति म.
(१८) भैरवी = पंचरे + साधा. गां. + शुद्ध धै. + कै. नि. चूंकि यह अट्ठारह मेल व्यंकटभरवी के पूर्व में भी थे अतः उन्होंने उन्ही मूल मेलो से १८×४ = ७२ तैयार कर लिये तथा उपर्युक्त २० मेल सर्वसंमत जन्य रागों के लिये स्वीकार कर लिये। मेरी समझ से वे ऐसा ही कहते भी हैं। आप उनकी पुस्तक जब देखेंगे तब यह ध्यान में आवेगी।

मैं. – अब चूंकि आपने यह कल्पना मुझे बताई है मैं उस दृष्टिकोण से इसे पुनः पुनः देखूंगा। परन्तु मेलों के यह स्वर कहां से लिये गये हैं ?

उ. – व्यंकटभरवी की "राग प्रकरण" पुस्तक से। उस पुस्तक में रागांग, भाषांग इत्यादि के अच्छे वर्णन दिये है तथा उनके श्लोक भी है। वह मैं आपको दूंगा।

प्र. – क्या आपने सोमनाथ की लिखी हुई पुस्तक अथवा "परिजात" ये ग्रन्थ देखे अथवा सुनें है ?

उ. – सुने है, परन्तु देखे नहीं। मैं दीक्षित संप्रदाय का प्रतिनिधि हूं। दूसरा कोई भी मत मैं नहीं मानता।

प्र. – व्यंकटभरवी ने रागवर्गीकरण किस आधार पर किया है ?

उ. – एक वर्गीकरण रागांग, भाषांग, उपांग,। दूसरा धनराग, रक्तिराग, देशीराग। उनके सभी नाम व संख्या भी स्पष्ट समझाई है। व्यंकटभरवी को अच्छी तरह समझने हेतु "चतुर्दण्डि" और 'राग प्रकारण" उन दो पुस्तकों को पढ़ कर उपयोग करना चाहिये।

प्र. – क्या आप समझेंगे कि आपकी उस बड़ी पुस्तक में कैसी रचना की है ?

उ. – हां, यह देखिये । (पुस्तक हाथ में लेकर) प्रारंभ में इन छह चक्रों में से यह कौन सा चक्र हैं यह बताया हैं तथा उसके नीचे की पंक्ति में मेलों की सख्या किन्ही सयुक्तिक शब्दों में बताई है । इसके बाद में रागांग, भाषांग आदि राग कैसे क्यों हुए यह बताया गया है । इसके उपरान्त रागों के नाम । बाद में 'राग प्रकरण" पुस्तक से रागों के श्लोक, उनकी मूर्च्छना, आरोह अवरोह, तीव्र कोमल के संकेतों सह दिये है ।

टीप:– वस्तुत: प्रश्न यह है कि वे १८ कौन–कौन से थे जिनसे उन्होंने ७२ की उत्पत्ति की । क्या वे रत्नाकर की १८ जातियाँ ही १८ मेल थी? किस प्रकार? यहां बीच की कोई न कोई महत्वपूर्ण कड़ी छूट रही है । क्या सुब्राम अपने अनुमान में सही है ? (संभाषण आगे जारी)

इतना सब लिख देने के बाद उपर्युक्त अति संक्षिप्त संकेतात्मक जानकारी का स्पष्टीकरण मैंने स्वत: किया है । उनका नाम, विवरण दिया है । इसके उपरान्त दीक्षित के प्रसिद्ध 'लक्षण गीत' सम्मिलित किये हैं इनके चरण इस तरकीब से रखे हैं कि आद्याक्षर स्वर कौन सा लेना है इसका संकेत देता है । इतनी जानकारी से राग अच्छी तरह समझ में आता है । मैंने बाद में तान तथा उनका विस्तार कैसे करें यह "तान वर्ण" डाल कर दिखाया है । इतनी जानकारी प्रत्येक राग के लिये पर्याप्त होगी ऐसा लगता है । श्लोकों की सहायता से जो सूचित किया जाता वह प्रत्यक्ष स्वरों से लिखकर नमूनें के साथ दिये है । सभी स्वर कौन-कौन से लगते है यह एक बार समझ लेने पर यथेष्ट कार्य सिद्ध हो जाता है । इसके बाद हमारे घराने के तेलगू में रचे हुए सुन्दर कीर्तन स्वरलिपि सहित लिखे है ।

प्र. – क्या आप मद्रास के मेरे मित्र श्री तिरुमल्लय नायडू को जानते है ?

उ. – हां ! उनको जानता हूं । उनको इस विषय में अधिक कुछ नहीं आता । फिर भी मेरा मूल्य न समझ कर, मेरी टीका करने को तैयार रहते हैं । उनका ज्ञान एकदम ऊपर–ऊपर का है ।

प्र. – क्या आपके यहां वादी-संवादी का कोई विधि निषेध माना हैं ?

उ. – हां । माना है । इस विषय पर व्यंकटभरवी ने रत्नाकर कथन के विपरीत कुछ परिवर्तन सूचित किये हैं । यह परिवर्तन उनके अपने समय के प्रचलित संगीत के अनुरुप किये होंगें । गायकों को सदा प्रचलित लोकरुचि देखनी पड़ती है यह अनुभव जन्य है । संगीत चाहे कितना भी पुराना हो, देश काल परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन होते ही रहता है । इसी कारण व्यंकटभरवी ने एकदम नई पद्धति मान कर नये ढंग से यह सब रचना कर दी ।

प्र. – यदि ऐसी ही परिपाटी है तो श्री दीक्षित आप भी अपने मत में थोड़ा बहुत फेर बदल करने के के लिए सहमत क्यों नहीं होते ? मनमानी करते हैं ऐसी फरियाद जो आप करते हैं उसमें आपको भी थोड़ी सी ढील नहीं देनी चाहिये क्या ?

उ. – मुझे लगता है कि हमारी पद्धति एकदम उत्तम तथा संपूर्ण है उसमें सुधार अनावश्यक है।

प्र. – आपके दक्षिण के अन्य संगीतज्ञ व स्वयं आपके विचारों में किन–किन बातों में मतभेद किस स्थान पर चूक हो प्रतीत होते है ? क्या वे "चतुर्दण्डि को नहीं मानते क्या ? क्या ऐसा भी है कि वे किसी दूसरे ही ग्रन्थ को आधार मानते है ?

उ. – अब ग्रन्थों का आधार बता सकने वाले एक दो को भी मुझे दिखाइये। केवल परंपरा से सीखनोट वाले क्रिया कुशल लोग भर मिलेंगे। "चतुर्दण्डि" देखा हुआ एक भी व्यक्ति नहीं मिलेगा। तो फिर, उनसे मतभेद करने की बात ही कहाँ उठती है। मेरी पुस्तक प्रकाशित हो जाने से कम से कम "रागप्रकरण" तो लोगों के सम्मुख आया है। "चतुर्दण्डि" के तो दर्शन ही नहीं है। अभी भी मुझे अपनी पुस्तक में ठीक जानकारी दे सकना संभव नहीं हुआ, कारण दीवान साहिब ने पुस्तक छापने की बड़ी जल्दी की और वह भाग छपने से रह गया। मैं यदि मर गया तो यह जानकारी दे सकने वाला दूसरा कोई नहीं होगा। इसलिए आपसे कहता हूं कि आप मुझे अपने साथ ले जावें। आपके साथ मैं कोई बात छुपाना नहीं चाहता तथा बिना किसी लाभ लोभ के केवल कीर्ति–यश के लिये आपको भक्तिभाव और आत्मीयता से बताऊंगा।

मैं – मैं आपका बड़ा आभार मानता हूं। तेलगू दुभाषिया मिलते ही मैं आपको बुलाऊंगा।

प्र. – क्या आप "स्वरमेलकलानिधि" पुस्तक को महत्व देते है ?

उ. – जब स्वयं व्यंकटभरवी ही उसको मानते हैं तो फिर मुझे तो मानना ही चाहिये। मेलों के सम्बन्ध में उनसे व्यंकटभरवी का मतभेद है। परन्तु ग्रंथकार की विद्या के संबंध में नहीं है। वह ग्रन्थ व्यंकटभरवी के पूर्व का है। मैंने वह नहीं पढ़ा। परन्तु उसे समझ लेने की मेरी बड़ी इच्छा है। कदाचित् उसमें से कोई उपयोगी बात निकल आये। उन्होंने अपने २६ अथवा २५ मेल रत्नाकर से कैसे मिलाये है, यह मुझे देखना है।

मैं. – वह ग्रंथ मद्रास पुस्तकालय में है तथा उसकी नकल मुझे शीघ्र ही मिलने वाली है। वह मिलने पर उसमें क्या है यह देखकर आपको सूचित करूंगा।

प्र. – "क्रियांग राग" यह संज्ञा आप किसे देते हैं ?

उ. – व्यंकटभरवी "क्रियांग" राग मानते ही नहीं वे तीन ही मानते है। भाषांग, रागांग, उपांग।

प्र. – मुझे इन शब्दों के आपके अर्थ चाहिये।

उ. – रत्नाकर के "दशविध" रागों में से केवल यह तीन भेंट ही व्यंकटभरवी के समय प्रचलित थे, ऐसा दिखता है। प्रथम छट्ट अर्थात राग, उपराग, ग्रामराग इत्यादि पीछे हट गये थे।

रागांग राग = अर्थात अति शुद्ध, शास्त्रोक्त, आरोह–अवरोह के, समग्र नियमों से युक्त राग इन्हें मातृराग कहें तो भी चलेगा। बहत्तर मेलकर्ताओं का मूलराग कहना ही अधिक युक्तिसंगत होगा।

उपांग = ऊपर के रागों की वैध संतान। संपूर्णता रखते हुए थोड़ा वक्र आरोह अवरोह करना, परन्तु स्वर वही रखना।

भाषांग = एकदम बाहिरी तत्वों का मिश्रण अथवा विकल्प करते हुए शुद्धता नष्ट होने देना। ये जनरूचि के आधार पर बनते है।

प्र. – श्री दीक्षित, आपने अपनी पुस्तक में "गमक" की जानकारी बहुत अच्छी दी है। ऐसा कहते है। इस विषय पर मैंने अभी तक किसी से पूछताछ नहीं की है। कारण आपकी पुस्तक मेरे पास नहीं थी। इसके संबंध की वास्तविकता थोड़ी मुझे बताइये।

उ. – (महत्वपूर्ण) मेरी पुस्तक में तो मैंने लिखा ही है और आप वह देखेंगे ही। तथापि मैंने यह "भैरवी" राग जो ४६२ पृष्ठ पर लिखा है उसे ही लेकर सभी गमकों सहित आपको सुनाता हूं जिससे "गमक" आपके ध्यान में आ जावेंगे। चाहे जैसा और कितना भी लिखें फिर भी "गमक" लिखना अभी भी कठिन ही है ऐसा कहना पड़ेगा। उसकी योग्य पहिचान करा देने वाले स्वर चिन्ह अभी तक सर्व परिचित नहीं है। गायन में प्रायः विचित्रता देने वाली गमक कहें तो वह "स्फुरित" व "उल्लसित" यह होती है। आरोही, अवरोही, मूर्च्छना इत्यादि तो है ही और उन्हें समझाना कुछ भी कठिन नहीं है।

बाद में दीक्षित ने स्फुरित व उल्लसित यह गमक गले से गाकर दिखाई। उसे "म म्मा" अर्थात दूसरा बल देकर एवं उच्छ्वास से गाना, "पप्पा" इस प्रकार (कुछ हुंकार मिश्रित) दिखाया। "स्फुरित" तीन प्रकार का बताया। (१) पहिला अक्षर बल देकर (२) दूसरा अक्षर बल देकर (३) तीन-तीन स्वर उच्छ्वास रहित। उल्लिसित" गमक अर्थात अवरोह में तार सां से नीचे कुछ मींड सरीखा व कुछ उच्छ्वास की तरह का करके दिखाया यह प्रकार मैंने समझ लिये है तथा कदाचित् प्रत्यक्ष करके दिखा सकूंगा। (न भूला तो) यहां लिखकर समझा सकना कठिन है। "प्रत्याहत" गमक वाद्योपयोगी है। उन्होंने यह भी कहा कि वह गायन में नहीं है।

प्र. – आपके यहां मेल एवं जन्य के वर्णन जिन श्लोकों में देखता हूं, उनमें ऐसे अनेक राग (लगभग एक तिहाई राग) ऐसे दिखते हैं कि जिनके सामने "सन्यास साँशकं ग्रहं" इस प्रकार का वाक्य मिलता है, ऐसा क्यों ? ये सभी राग सांश, सग्रह, सन्यास क्यों

माने है ? सभी रागों के लिये ये स्वर भले ही भिन्न-भिन्न न माने जाय, फिर भी अधिकांश में ऐसा ही क्यों है ?

उ. – (स्पष्टीकरण पर ध्यान दीजिये) हां यह सच है। परन्तु एक षड्ज ग्राम ही स्वीकृत है उसमें षड्ज सभी स्वरों में मुख्य माना है। इसी कारण, उसके ऊपर इन सभी प्रकारों का निर्धारण करने की प्रथा लोगों को अच्छी लगी। फिर भी कहीं-कहीं 'ध' ग्रह धांशक इत्यादि ऐसा अथवा अन्य कोई दूसरा स्वर लेकर लिखा हुआ भी मिलेगा। जहां ऐसा दिखेगा वहा ऐसा भावार्थ है कि उस स्वर को आधार स्वर (की नोट) मानना है। जैसे "ध" ग्रह का अर्थ यह हुआ "ध" को "सा मानकर गावें। मेरी पुस्तक में ऐसी समझाइश मैंने कहीं-कहीं लिख रखी है।

सूचना:- पृष्ठ ४६२ तेलगू पुस्तक

रीति गौळ = मातृ राग-भैरवी भाषांग
वेद श्री – मूर्च्छना – आरोह अवरोह – लगने वाले स्वरों सहित
लक्षण विवरण – भाषांग राग
सपूर्ण, धैवत ग्रह, अर्थात "सा" को "धैवत" स्वर पर मानना है। सप्त स्वर "जीव" इसका अर्थ हुआ चाहे जिस स्वर को जीव स्वर करिये। उसी प्रकार चाहे जिस स्वर को न्यास स्वर करिये।

इस राग में "रिगम" ये स्वर बहुत ही आनंददायी है। आरोह के प्रत्येक स्वर समूह के अंत में जीव स्वर रखने से अधिक विचित्रता निर्मित होती है। यह स्वर कृत्य मैंने पुस्तक में उदाहरणों से दर्शाया है। प्रारम्भ में कुछ स्वर समूहों में "री" अंत, बाद में कुछ में "ग" अंत, फिर "म" अंत इस प्रकार से दिये हुए है। उस राग में सभी स्वरों का ऐसा उपयोग होता है अतएव उसकी बड़ी प्रशंसा की जाती है। इसे संध्या समय में गाना चाहिये।

प्र. – हमारे यहां उसे प्रातः गाते है।

उ. – 'संध्याकाले' का अर्थ ऐसा भी होता कि जिस समय प्रकाश एवं अधंकार की संधि हो उस समय गाना। अतएव प्रातः भी गाया जा सकता है। कुछ राग ऐसे है कि वे गमक युक्त किये बिना अथवा शीघ्र लय में गाये बिना शुद्ध नहीं रहते। जैसे भैरवी यदि धीमी गति से गायी गई तो शायद राग ही नष्ट हो जावेगा।

प्र. – आपने मदुरा के कृष्णा आयंगार को देखा होगा। उन्होंने मुझे एक प्रश्न पूंछने के लिये कहा है। वह यह है कि "प्रकृतराग और विकृतराग" इनमें क्या अंतर है ? मुझे तो प्रकृत राग का अर्थ ही नहीं समझा है।

उ. – प्रकृत व विकृत राग एकदम नहीं बताए गये है। ये शब्द स्वरों के लिये है। अर्थात = प्रकृत स्वर व विकृत स्वर। इनका जो अर्थ है वह तो आप जानते ही है। अब प्रकृत

राग अर्थात जिसमें शुद्ध स्वर हों तथा विकृत राग अर्थात जिसमें एक अथवा अधिक विकृत स्वर हों ऐसा कहने से कुछ मतलब निकलेगा। परन्तु इसमें कोई बड़ा शास्त्र रहस्य मुझे तो नहीं दिखता।

प्र. – आपके यहां आदि सप्तक मानते है वह कौन सा है ?

उ. – यह मैं नहीं बता सकता। परन्तु ऐसा अनुभव है कि यहाँ विद्यार्थी प्रथम "मायामाल–वगौळ" सीखते है।

प्र. – यदि "मायामलवगौळ" यह १५ वां है तो प्रारंभ के 'कनकांगी' को त्याग कर क्रमबाह्य ऐसे किसी दूसरे को ही प्रधान सप्तक क्यों मान लिया है इसका सयुक्तिक कारण देंगे?

उ. – इस विषय की एक और खूबी बताता हूं जो मैं केवल आपको ही बता रहा हूं। व्यंकट मरवी ने बहत्तर मेल बनाये ऐसा मानते हैं तथा उनका भी ऐसा आग्रह और दावा है। परन्तु इस पर मैंने एक अनुमान लगाया है। मूलतः अठारह मेल थे उनसे ही मैंने बहत्तर किये ऐसा वे भी कहते है। इन अठारह मेलों के नाम ठौर–ठिकाने मैंने दिये ही है। व्यंकटमरवी ने यह देखा कि इन पुराने अठारह मेलों को उन्हें अपनी पध्दति में रखने तो पड़ेंगे ही। परन्तु उनकी "कटपयादि" संज्ञाए उनके नियमबद्ध नामों से मेल नहीं खाते थे। अतएव उन पुराने मेलों के प्रारम्भ में उन्होंने उपसर्ग जोड़ दिये जैसे, माया + मालव गौड; हरि + कांबोजी; शुभ + पंतुवराली; मेच + कल्याणी; गेय + हिजाज; वारी + वसंत इत्यादि। ऐसे उपसर्ग जिनके पहिले हैं वे पूर्व प्रसिध्द प्राचीन मेल थे ऐसा मेरा अनुमान है। (?) यह उपसर्ग उनकी पध्दति की कोष्टक पूर्ति के लिये अर्थात "कटपयादि" गणित के लिये थे। यद्यपि क्रम संचय के नियम के आधार पर उन्होंने ये ७२ मेल रचे तथा "रारिरू, गागिगू" इस क्रम से सुन्दर मलिका एवं चक्र में गूंथे फिर भी वादी–संवादी के नियम ईश्वरप्रदत्त होने के कारण उनको उसमें उलट फेर कर सकना संभव नहीं था। यह उनको भी विदित था कि केवल स्वर नाम बदलने से उनका नाद नहीं बदल सकता। "कनकांगी जैसे चक्र के मेल प्रथमारम्भ में अथवा बाद में भी, प्रिय एवं रंजक नहीं हो पायेंगे। वस्तुतः वे हुए भी नहीं है। जन-समाज के प्रचार मे 'मालवगौड" अतिप्रिय व शीघ्र आत्मसात किया जाने वाला स्वर सप्तक विद्यामान था वह ठीक वैसा ही कायम रहा। यदि गणित के कारण 'रारिरू, गागिगु" के नामों में उसका क्रम१५ वां बना, फिर भी यह प्राकृतिक क्रमांक नहीं था। हार्मनी के नियम प्राकृतिक नियमों से जुड़े हैं। उनके विरूध्द व्यंकटमरवी भी कैसे जा सकते है ? शुध्द री व शुध्द ग यह एक के बाद एक आने से सुखद सांगीतिक परिणाम् नहीं हो सकता यह सृष्टिनियम सुनिश्चित है। फिर आप उसे चाहे चतु.श्रुतिक 'रे' कहें अथवा शुध्द ग कहें हैं तो वह एक ही। अतएव पहिले से प्रचलित "मायामालव गौल" ही प्रारम्भ में सीखने–सिखाने के लिये बना है।

सूचनाः– यहां सुब्राम की विचारधारा समाधान कारक नहीं है। तथापि उनके तर्क पर भी विचार करना होगा। श्री नायडू ने कहा था कि इस स्वर सप्तक का मूल

वैदिक सप्तक में है जिसमें "रे" कोमल है। इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार करना होगा।

प्र. – श्री दीक्षित साहिब। कोमल "रे" का शुध्द "रे" यह नाम क्यों पसंद किया? इसका शास्त्रीय कारण ज्ञात होता तो उपयोगी रहता। (स्वरमाधुरी की दिशा में नामों की पृथकता दर्शाने वाली एवं ऐसी प्रथम प्रतीत होती है यह)

उ. – मुझे लगता है यह मन गढंत ही है कुछ न कुछ कारण, ढूंढना ही है तो कहा जा सकता है कि चतु:श्रुतिक रिषभ किसी अन्य प्रसंग में दूसरे नाम से जैसे "शुध्द गंधार के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। परन्तु कोमल "रे" के वास्तविक नाम की विकृती कभी नहीं होती। अत: उसे शुध्द कहा गया है। परन्तु नामों के कारण आपको क्या कठिनाई आ रही है! (शुध्द "ग" के विषय में क्या कहेंगे। उसके भी तो दो-दो नाम हैं।)

प्र. – जो थोड़ी सी अड़चन आती है वह यह है कि "रागविबोध" पुस्तक में प्रकृत एवं विकृत स्वरों के नाम बताये गये है। परन्तु उसमें दिये हुए वर्णन के अनुसार सप्तक बनाकर देखने से तो आपके यहाँ के शुद्ध "रे ध" के स्थान (कोमल 'रे ध") रिक्त रहते है। अर्थात उन स्वरों में ये कहीं भी उपयोग में नहीं आते। उसमें भी २३ मेल है तथा जन्य राग भी बताये है। मेल इत्यादि के नाम आपके इधर के ही है। जन्य भी उसी प्रकार के हैं। परन्तु उपर्युक्त इन दोनों स्वरों में गड़बड़ हुई है। शुद्ध "रे" एवं "ध" को आपके कोमल "रे" व "ध" मानकर चलें तो "मुखारी" "श्री" इत्यादि रागों में शुध्द "रे" एवं शुध्द "ध" कहे गये है। आप कोमल रे, ध, से ये राग नहीं गाते। अतएव शुध्द रे यह कोमल "रे" नहीं है यह अनुभव से सिध्द होता है। इस कारण, मुझे लगता है कि यह प्रश्न महत्व का है। उस पुस्तक में इसकी कुंजी कहीं न कहीं अवश्य है ऐसा मुझे लगता है। परन्तु मुझे वह अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी है। (वस्तुत: मेरा यह प्रश्न ही उचित नहीं था। सुब्राम से इसके उत्तर की अपेक्षा करना ही अनुचित था जबकि उन्होंने स्वयं कहा ही था कि उन्होंने "राग विबोध नहीं देखा है)

उ. – इस प्रश्न का उत्तर मैं नहीं दे सकता। वह ग्रंथ मैंने नहीं देखा। (ठीक ही है) "रागांग" की व्याख्या दुभाषिए ने इस प्रकार दी। 'यह एक ऐसा राग है जो मूल राग का अनुकरण उसके सभी कठिन नियमों के साथ करता है तथा वह सम्पूर्ण होता है। आप उसके स्वरों को वादी, संवादी विषादी की आवश्यकतानुसार जमा ले सकते है। परन्तु आप को सातों स्वर प्रयोग में लाना है। (अतएव मुझे लगता है कि ७२ मेल यूं ही कह सकना संभव नहीं है।)

उपांग :– यह राग मातृ–राग का यथासंभव अनुगामी होता है परन्तु, उसमें "वक्रत्व लंघन' और एतद्सम कुछ परिवर्तन संभव है। उदाहरणार्थ श्री राग उपांग राग है।

भाषांग :– अपने मातृ स्वर सप्तक के स्वरों के साथ ही, विवादी या कृत्रिम स्वरों को आरोह में प्रविष्ट किया जाता है। गायक श्रोताओं के मनोरंजन हेतु नियमित स्वरों में कुछ स्वर अपनी ओर से जोड़ देता है और इस प्रकार भाषांग राग उत्पन्न करता है।

क्रियांग :– व्यंकटमखी इसका केवल नामोल्लेख कर आगे बढ़ जाते है। वे इसका परिवर्तित रुप रखते हैं। दर्पणकार की परिभाषा में जहां तक मुझे ज्ञात है, इसका व्यवहार युद्धवर्णनों में ईश्वर प्रार्थना या दुःख व्यक्त करने हेतु किया जाता है।

प्र. – आपने कहा था कि रत्नाकर के सारांश आपकी पुस्तक में है ?

उ. – हाँ, वे ८ से २५ राग तक के पृष्ठों पर हैं। उन्हें आप पढ़िये तथा अपना मत मुझे भी बताइये। (खेद है, मुझे अभी तेलगू नहीं आती)

प्र. – व्यंकटमखी रत्नाकर के रागों के विषय में क्या कहते है ?

उ. – रत्नाकर के सभी २६४ राग प्रचार में नहीं है। उसमें से बहुत से रुपान्तरित हो चुके हैं, ऐसा कहते है।

प्र. – क्या अमुक राग का अमुक रुप हो चुका है ऐसा दिखाने का उन्होंने प्रयत्न किया है !

उ. – वह मुझे ज्ञात नहीं, परन्तु ऐसा किया हुआ मैंने सुना नहीं।

प्र. – यह आपको किन कारणों से लगता है कि रत्नाकर की जाति–मेल से सब आदिमेल ही होने चाहिये ?

उ. – अमुक कारण से ऐसा कहना कठिन है। परन्तु एक मजे की बात बताता हूं। हमारे यहां स्मार्त एवं वैष्णवों के मठ बहुत प्राचीन काल से हैं। उनके मंदिरों में पुजारी लोग परम्परा से त्रुटिपूर्ण हो चुके कुछ श्लोक टेढ़े-मेढ़े गाते है। उनमें केवल भक्ति एवं स्तुति रहती है। वह गायन आप ने सुना तो क्षण भर भी अच्छा नहीं लगेगा। परन्तु उनके पद्य संग्रह की पुस्तकों में (पांडुलिपि में) रागों के स्थान को देखें तो 'गांधारोदीच्यवा' "षड्ज कौशिकी" "गांधरी" इत्यादि नाम दिखाई पड़ते है, तथा उन्हें ऐसा ही समझ कर गाते हे। मुझे यह बड़ा आश्चर्यकारी लगा तथा मैंने यह अनुमान लगाया कि ये ही मूल के १८ मेल मानते हैं। जाति भी १८ है। इन भजनों में रागों के स्थान पर जाति के नाम डाले हुए है। जो अति प्राचीन काल से चले आते हुए दिखने के कारण मुझे उन दोनों में कुछ संबंध होगा ऐसा प्रतीत हुआ। (महत्वपूर्ण और छानबीन करने योग्य है)

मैं – आपकी पुष्टि हेतु यह और बताता हूं कि रत्नाकर के एक टीकाकार ने यह कहा भी है कि "षाड्जी" का अर्थ "श्री राग मेल" है। अर्थात् अमुक जाति का सीधा अर्थ हुआ अमुक राग का उत्पादक मेल। यह प्रकार भी कुछ ऐसा ही दिखता है।

टिप्पणी :- यहां पूछताछ करने से प्रतीत हुआ है कि सभी संगीत शास्त्री एक मत से यह कहते हैं कि दक्षिण में एकदम प्रारंभिक, शुभ माना हुआ तथा सदा शिक्षण में प्रयुक्त स्वर सप्तक "मायामालवगौल" ही है। मैंने इट्टैय्यापुरम् के दीक्षित से पूछा कि यह स्वर सप्तक अग्रिम क्यों माना गया। उनका दिया हुआ उत्तर मैंने ऊपर लिखा ही है। दूसरा एक तर्क मेरे मन में उठ रहा है और वह यह कि यदि व्यंकटमरवी अपनी पुस्तक में यह कहता हो कि उसने १८ मूल मेलों से ७२ रचे हैं तो उसके प्रथम मेल कौन सा था यह देखना मनोरंजक होगा। दीक्षित ने एक संकेत यह दिया था कि रत्नाकर के जाति प्रकरण में १८ जातियां बताई गई हैं। वे ही वें १८ मेल है जिनसे उत्पन्न रागों के नामों से वें प्रसिद्ध हुए होंगे। इस सूचना में कुछ तथ्य है, यह मानकर चलने से "षाड्जी" जाति यह प्रथम मेल के रूप में रत्नाकर में दिखती है। कारण, १८ जातियों में उसे प्रथम माना है। साथ ही "षाड्जी" जाति की जो परिभाषा दी हुई है उसमें "धैवत मूर्च्छना" ऐसा लिखा हुआ है। धैवत मूर्च्छना सप्तक में ठीक कोमल "रे" आती है। इस जाति में काकली निषाद है, यह भी मान्य है। तब यह जाति बिना अंतर गंधार के शेष स्वरों से क्या "मायामालवगौळ" का सप्तक हुआ ऐसा कहा जा सकता है ? रागों की कुटुम्ब व्यवस्था मानने वाले ग्रंथों (हनुमत मतादि) ने भी "भैरवीराग" आदिराग माना है। इस राग का स्वर सप्तक भी "मायामालवगौळ" है। ये बातें प्रथम दर्शन में ही मन में उठती है। मैं उस पर योग्य विचार घर जाने पर करने वाला हूं। इससे यह भी निश्चित होता है कि यहां पर व्यंकटभरवी एक अलौकिक बुध्दि का तथा गर्व करने योग्य व्यक्ति हो गया। उत्तर हिन्दुस्तान में तानसेन इत्यादि हुए। उनकी कृतियां (गीत) परंपरा से हम तक आई है। यदि वे वास्तविक हों तो भी यह कहने के लिये गुंजाइश होगी कि तानसेन व्यंकटभरवी की विद्वत्ता को भी प्राप्त नहीं कर सकता। मनुष्य का केवल गुणगान करने की अपेक्षा समझ-बूझ कर मत व्यक्त करना अधिक अच्छा होता है। तानसेन के रचे हुए राग बहुत उत्तम एवं मधुर हुए हों। वे उत्तम गायक भी हुए हों। परन्तु वे कैसे थे इसके संबंध में यदि कोई हमसे पूछे तो हम क्या उत्तर दे सकेंगे ? तानसेन के नाम से खपने वाली पद्य रचना एकदम कम मूल्य की ठहरेगी तानसेन को संस्कृत उत्तम आती थी और उसको ग्रंथ अच्छे समझे थे, यह मानने के लिये उनकी कृतियों का आधार कहां और कैसे मिलेगा ? आधुनिक मुसलमान गायक क्रिया कुशल हैं वैसे ही तानसेन भी थे। हो सके तो उनकी अपेक्षा सौ गुना अधिक तैयार भी समझ लीजिये। परन्तु वे बड़े वाग्गेयकार या पंडित थे इसके संबंध का प्रमाण मुझे बम्बई में अभी भी नहीं मिला है। तानसेन यह मूलतः तन्नामिश्र नाम का एक ब्राम्हण होने के कारण कदाचित् थोड़ी-बहुत संस्कृत जानता भी होगा, परन्तु इस प्रकार की विद्या से ग्रंथकर्तृत्व संभव नहीं होता। कोई कहेंगे और कहते भी है कि कुछ ध्रुवपद ऐसे है कि जिनमें संगीत के गूढ़ तत्व हैं। मेरे पढ़ने अथवा सुनने में अभी तक ऐसा एक भी ध्रुवपद नहीं आया। उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ वादी, विवादी, अनुवादी, संवादी, श्रुति, मूर्च्छना, ग्राम जैसी शब्दावली, पुस्तक के प्रारंभ में दिये गये पदार्थ संग्रह के यह नाम, केवल चीजों के बीच में व्यर्थ में डालने

से न तो वे समझ में आ गये हैं ऐसा सिद्ध होता है और ना ही इससे कोई बड़ा विद्वान ठहरता है। व्यंकटमखी का ऐसा नहीं है। उनके पद्य एक संगीत पद्धति ही है। उन्होंने १८ मेलों को गणितीय रीति से ७२ किये, उनकी अत्यंत सुलभ परिभाषायें की, उन्हें स्मरण करने हेतु लाक्षणिक सूत्र तैयार किये, "कटपयादि" संज्ञारुपी कुंजी बनाकर रखी। जन्य रागों की ऐसी उत्तम रचना की जिससे वें एक-दूसरे में मिलने पायें। उत्कृष्ट नमूने के रूप से उतम गीत रचे इत्यादि-इत्यादि। ऐसा व्यक्ति विश्वव्यापी प्रसिद्धि के योग्य ठहरेगा। उन्होंने संगीत का ऐसा एकीकरण किया कि संपूर्ण मद्रास क्षेत्र में आज भी किसी को दूसरी पध्दति ज्ञात नहीं है। ऐसे व्यक्ति की धन्यता कौन नहीं स्वीकारेगा! यह तो मैंने लिखा ही है कि अब इस पध्दति का अच्छा प्रतिनिधि केवल सुब्राम दीक्षित ही है। यह बात सच है कि मैं उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत का अभिमानी एवं प्रशंसक हूं। परन्तु दोनों पद्धतियों का मेल-मिलाप करते हुए व्यंकट-भरवी को हिन्दुस्तानी पोषाख पहिनाने की भी मेरी इच्छा है। 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका" यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रंथ है, ऐसा मैं मानने लगा हूं। दीक्षित वह मुझे प्रदान करने वाले है। मुझे यह विश्वास है कि वह मिलने पर मुझे बड़ा आनंद होगा।

अपने प्रचार के हिन्दुस्तानी रागों में ऐसी ही गीत रचना तैयार करने का मेरा विचार है। परन्तु मैं कोई कवि नहीं हूं अतः शब्द रचना कैसी सधेगी यह एक अड़चन है। रागों के थाट, वर्ज्यावर्ज्य, वादी, विवादी तथा बन सका तो एकाद प्रत्यक्ष नमूना कम से कम इतनी बातें तो प्रत्येक गीत में आनी ही चाहिए। ऐसे गीत राग विषयक लेखा-जोखा प्रदान करने में अधिक उपयोगी होंगें तथा इन्हें बच्चे भी खुशी-खुशी से सीखेंगे।

स्फुट विचार-इट्टैय्यापुरम्

यहां श्री सुब्राम दीक्षित एक ऐसे व्यक्ति हैं कि जिनका नाम सुनते ही इस क्षेत्र का प्रत्येक संगीत विद्वान नतमस्तक होता है। इनकी सुकीर्ति सभी बड़े नगरों में है। उनके नाम को सभी लोग, मुख्य रूप से वे जिन्हें संगीत में अभिरूचि है, सदैव बड़ा सम्मान देते हैं। मेरा जो संभाषण हुआ, उससे मुझे भी ऐसा लगा कि यह सम्मान एक सुपात्र को ही मिल रहा है। ये दीक्षित मुझसे एकदम खुले मन से बोले और संगीत के गूढ़ रहस्यों के विषय में भी बात की यह सुनकर यहां के दीवान रा. अ. जगन्नाथ चेटी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने बताया कि स्व. चिन्ना स्वामी मुद्लियार को प्रारंभिक दिनों में दीक्षित की कितनी खुशामद करनी पड़ी थी, वे बहुत पुराने विचार के और कुछ संकीर्ण भी थे। तो फिर यह परिवर्तन कैसे हुआ इस पर मैंने स्वस्थ मन से बैठ कर विचार किया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि सुब्राम दीक्षित को कुछ अंश तक द्रविड़ संगीत का प्रोफेसर कहा जा सकता है। तथापि रत्नाकरादि ग्रन्थों के मर्म भली प्रकार से समझकर उसके उपयोग को जानने वाले व्यक्ति वे नहीं है रत्नाकर आदि ग्रन्थ उन्होंने प्रत्यक्ष पढ़े हुए है ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। कारण उन्हें संस्कृत अच्छी तरह नहीं आती। केवल परम्परा से श्लोकों को मुखस्थ कर लिया है तथा उनका अर्थ दूसरों से समझ लिया है। रत्ना-

कर का जो अंश समझने में कठिन है वह इनके लिये भी वैसा ही कठिन है। उन्होंने डरते-डरते षाड्जी इत्यादि जातियों के मेल सूचित करते ही मैंने अठारह जातियों के नाम पुस्तक से पढ़कर दिखा दिये तथा कहीं-कहीं उनके लक्षण भी समझाये। मुझे ऐसा लगा कि उन्होने ये बातें कभी सुनी ही नहीं थी कारण मेरे बताने पर वें बड़े विस्मित हुए। व्यंकटमखी के पूर्व प्रसिद्ध अठारह मेल ये ही वस्तुतः जातियां हो सकती है। यह अनुमान उन्होंने मुझसे इसी कारण से बताया था। इन जातियों का सम्बन्ध उन अठारह मेलों से कैसे स्थापित किया जाय यह उनको भी नहीं समझा। जातियों के सही स्वरुप भी बता सकना उन्हें संभव नहीं होगा। मुझे तेलगू भाषा नहीं समझती। इसलिये उनकी पुस्तक में इन जातियों के संबंध में और क्या-क्या लिखा हैं यह देखना संभव नहीं है। परन्तु चर्चा के दौरान ऐसा नहीं लगा कि इस विषय में उन्हें विशेष गति है। मुझे यह विश्वास हो गया है कि अच्छे विद्यार्थी जिस स्थान पर पहुंच कर प्रायः अटक जाते हैं श्री दीक्षित भी वहीं अटक गये हैं, और उसमें से उत्सुकता से रास्ता ढूंढ रहे हैं। पूना के अण्णा धारपुरे की उड़ान भी इसी मंजिल तक गई है। यदि पाठक मेरी गर्वोक्ति पर क्षमा करें तो मैं यह कहना चाहता हूं कि कुछ हद तक तथा कुछ बातों में इस विषय का विचार मैंने अधिक किया है, तथा मुझे इन कठिनाइयों से बाहर निकलने का मार्ग भी दिख रहा है। परन्तु कुछ और प्रमुख-चिह्न मिलने के पूर्व अपूर्ण स्थिति में अपने विचार लोगों के सम्मुख रखकर अपनी हंसी कराना बुद्धिमानी न समझकर मैं मौन हूं। यद्यपि श्री दीक्षित ने श्रुतिस्वर का सप्तक अपनी पुस्तक में चित्रों के रुप में दिखाया है फिर भी किसी संस्कृत ग्रन्थ का "करहरप्रिया" मेल का वह शुद्ध स्वरों का सप्तक नहीं लगता। उनके प्रदेश में भिन्न प्रकार के शुद्ध स्वरों का प्रचार होने के कारण उनको वह शुद्ध सप्तक समझ में नहीं आया अतएव जिसको प्राचीन सप्तक (शुद्ध स्वरों का) ही ठीक से ज्ञात नहीं है वह ग्रन्थों के रागों के पीछे नहीं पड़ेगा यह स्पष्ट ही है। उन रागों के विषय में उनका अज्ञान स्पष्ट दिखा। अस्तु। दीक्षित को मुझसे चर्चा करना अच्छा लगा। उन्होंने ऐसा सोचा कि उनका अनुभव और मेरा ग्रंथज्ञान इन दोनों का संयोग हुआ तो अनेक संदिग्ध और महत्वपूर्ण विषयों का विश्वस्त निर्णय होगा तथा कुछ नई खोज भी होगी। दीक्षित की पुस्तक मैंने अभी भी भली-भांति नहीं पढ़ी है। परन्तु मैं यह समझ गया हूं कि उसमें किन-किन विषयों पर जानकारी दी है। मैं भी यह सोच रहा हूं कि दीक्षित को अपने पास छः महीने सालभर तक रख लिया जाय। यह सच कि है अड़चन भाषा की है। स्पष्ट है कि दीक्षित के भाषणों में से कुछ बातें नहीं लिखी जा सकीं। परन्तु जितना भी संभव हुआ उनसे हुए संभाषण को प्रश्नोंत्तर रूप में अच्छी तरह लिख रखा है। दीक्षित का प्रेम मुझ पर यहां तक दिखा कि मेरे साथ आने में किसी भी प्रकार की कठिनाई पर वे एकदम विचार नहीं कर रहे है। यह मैंने बताया ही है कि वे आयु में ६० से ऊपर के हैं। फिर भी आज किसी तरूण की भांति नई बात की खोज करने में अत्यंत उत्सुक है। उन्होंने मुझे यहां तक स्पष्ट कहा है कि यदि उनके राजा ने उन्हें स्वीकृति नहीं दी तो भी वे मेरे द्वारा बुलाये जाने पर रूकने वाले नहीं है। हम दोनों को साल छः महीना इकट्ठा रहना ही चाहिये। मुझे आपके रूपये-पैसे की भी कोई परवाह नहीं है। ये शब्द ऐसे एक वृद्ध व्यक्ति से सुनकर किसका गला नहीं भर आवेगा। विद्याभिरुचि इसे कहते हैं।

जब मैं दीक्षित की पुस्तक पलट रहा था तब मैंने यह देखा कि उन्होंने रत्नाकर में से भिन्न-भिन्न अंश जैसे- श्रुति, मूर्च्छना, ग्राम इत्यादि को उनके अर्थ सहित स्पष्ट लिखा जरुर है। परन्तु उन्होंने ठीक संगतवार लिखा हुआ नहीं दिखता। यह सच है कि श्रुति व्यवस्था चित्र बनाकर दिखाई है परन्तु रत्नाकर का मूल सप्तक "करहरप्रिया" शुद्ध स्वरों का था अथवा कोई अन्य था यह तत्वतः उन्हें समझा हुआ प्रतीत नहीं होता। उनके उन चित्रों से भी यही प्रतीत हुआ। परन्तु मैंने जानबूझकर इसकी पड़ताल की। वे बिचारे "रारिरू, गागिगू" में ही फंसे हुए दिखे। इसी कारण ये चित्र व उनके अर्थ म्यूजियम में रखे हुए चित्रों के सदृश्य दिखे। "प्राचीन पद्धति" इस शीर्षक के नीचे उन्होंने यह सब लिख रखा है। उनका उपयोग स्वयं पढ़ने वाला ही जाने। मैं जब उनसे इस संबंध में मुक्तद्दोर चर्चा करने लगा और वह उनकी पुस्तक देखे बिना एवं स्वयं अपने हाथ में रत्नाकर रखते हुए तब उन्हें सहज ही यह लगा कि ऐसे व्यक्ति से मुक्त हृदय से चर्चा करना आवश्यक है परन्तु देखता यह हूं कि महत्वपूर्ण मुद्दों पर श्री दीक्षित भी संदेहग्रस्त स्थिति में ही है। उन्हें यह बता सकना सभव न हुआ कि व्यंकटभरवी ने पूर्व के अठारह मेलों से कैसे एवं किन तत्वों पर अपने कल्पना-महल की रचना की। मुझे उन्होंने मूल के अठारह मेल लिखाये, परन्तु अठारह जातियों से उनका मिलान कैसे स्थापित करना यह एक बड़ा रहस्य ही है। इस बात पर प्रकाश प्राप्त करने की आवश्यकता है। उन्हें यह ठीक से नहीं मालूम कि "स्वरमेलकलानिधि" ने जो छब्बीस मेल माने वे कौन से थे? मैंने दीक्षित को यह आशा बंधाई है कि यदि वे अपनी "चतुर्दण्डि" पुस्तक मुझे देखने के लिये देंगे तो उनके अनुभव की सहायता से मैं व्यंकटभरवी की विचार शृखला को समझ सकूंगा। इसी उद्देश्य से उन्होंने भी मुझे वह देना स्वीकार किया है। विभिन्न मेलों के 'जाति लक्षण" उन्होंने अपनी पुस्तक में कुछ कुछ अन्तर सहित देते हुए उनके अर्थ तेलगू भाषा में बताये हैं। परन्तु उसके उपरान्त आगे यह सब क्या हो गया? उसके आगे देखेंगे तो वही "द्रविड़ पद्धति" का वर्णन। यानि की यह पुस्तक भी अपने यहां की पुस्तकों के समान ही समझनी चाहिये। पुराने श्लोकों का भाषांतर करते रहना और अंत में उन श्लोकों से असंबद्ध ऐसा संगीत लिखना? यह बताना चाहिये था कि "जाति-प्रकरण" का द्रविड़-पद्धति में कितना व कैसा उपयोग करना है। रत्नाकर में "दशविध" राग बताये हैं, तथापि उनमें से केवल चार अंग अब यहां बचे है। परन्तु यह तो स्वीकार करना ही होगा कि अच्छा बुरा जैसा भी हो, गायन रूचिकर लगे अथवा न लगे तथापि इस प्रदेश में निश्चित रूप से एक पद्धति है तथा उसके शास्त्र की पुस्तक लिखी जा सकती है तथा श्री दीक्षित ने तो उसे लिखा भी है। मूर्च्छनाओं के उपयोग, ग्रामों के उपयोग, जातियों के उपयोग इत्यादि दीक्षित को भली-भांति समझे हुए है ऐसा नहीं लगा। फिर भी इस वृध्द व्यक्ति ने इस विषय पर बड़ा चिंतन किया है। उन श्लोकों का अर्थ समझ लिया है उन्हें अपनी पुस्तक में सम्मिलित किया है. यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है। इस प्रदेश में इतनी गहराई में पहुंचा हुआ दूसरा व्यक्ति मुझे नहीं दिखा। कुछ लोगों को तो ये नाम तक ज्ञात नहीं है। दीक्षित ने अपनी पुस्तक में इस पुरानी पध्दति की धूमधाम से बड़ी चर्चा की है तथा वह यहां के विद्वानों को एकदम ज्ञात न होने के कारण वे आश्चर्यचकित हो गये है। अंततः श्री दीक्षित भी व्यंकटमरवी के "रारिरू-गागिगू" की पद्धति पर आकर टिक गये और इसी में उनका महल बरकरार भी है। उन्होंने प्राचीन पध्दति का थोड़ा बहुत अध्ययन किया है। परन्तु इस कारण व्यंकटभरवी की पद्धति में उनका

वर्चस्व स्थापित रहना ही चाहिये, यह मानना भूल होगी । इस प्रकार का विधान सयुक्तिक भी नही होगा । यदि कोई व्यक्ति यह कहने लगे कि उसने रत्नाकर का अध्ययन किया है अतएव हिन्दुस्तानी आधुनिक संगीत के सभी नियम वह निश्चत करे वैसे ही होने चाहिये ठीक ऐसी ही यह बात होगी । मैंने संभाषण में यह पूंछा था कि यहां अन्य गायक जो गाते हैं उसके विषय में उनका क्या मत है ? उस पर उन्होंने कहा कि वे रागों के आरोह-अवरोह ठीक से नहीं गाते । गायकों की स्वेच्छाचारिता बहुत बढ़ रही है जिस राग में जो स्वर 'चतुर्दण्डि" में जिस प्रकार ग्रहण करने के लिये लिखा है वैसा ये लोग नहीं लेते और इसीलिये वे उन्हें मान्यता भी नहीं देते । गमक के प्रकारों में भी मैं अपनी विशिष्टता रखता हूँ इत्यादि इत्यादि । मैं कहना चाहूंगा कि किसी भी विषय की अंतर्वस्तुओं का यह फेरबदल देशकाल वर्तमान के अनुसार होते ही रहता है ।

जो राग जिन स्वरों में व्यंकटमखी को रूचिकर लगे ठीक उन्हीं स्वरों में आज तीन सौ वर्ष उपरान्त भी संगीत के शौकीनों को रूचिकर होने ही चाहिये ऐसा कहना बड़ा जुल्म होगा । रूचि के अनुसार योग्य परिवर्तन भाषा में हुए, पोषाख में हुए, सुख साधनों में हुए तो फिर संगीत में भी वे क्यों न हो ? मैंने दीक्षित से एक प्रश्न पूछा कि उनकी पुस्तक में "प्राचीन पद्धति" के अन्तर्गत दी हुई जानकारी अर्वाचीन द्रविड़ पद्धति के लिये कितनी उपयोगी है ? इसका सहज उत्तर दे सकना उन्हें सुविधाजनक न हुआ । ठीक भी तो है । यदि वे प्रकार आज की नवीन पद्धति में नहीं है तो प्राचीन पद्धति का क्रियात्मक व्यवहार क्या बताया जा सकता है। मैंने अण्णा धारपुरे से भी पूछा था कि रत्नाकर के कम से कम पांच ही ग्राम राग जाति लक्षणों की सहायता से गाकर मुझे दिखाइये ? परन्तु उसको एक भी गाना संभव नहीं हुआ था । इस दृष्टि से देखने पर जैसा कि नागोजीराव ने कहा था, आंशिक रुप से ऐतिहासिक पुरातात्विक सांगीतिक "खंडहर" ठहरते है । परन्तु मेरा प्रयास इस प्रकार का नहीं है । मैं क्या करना चाहता हूं यह मैंने स्पष्ट लिख ही रखा है। उसे यहां दुबारा नहीं लिखता । सुब्राम दीक्षित की पुस्तक को मैंने स्थान-स्थान के लोगों को पढ़ने व उसकी भाषा समझाने के लिये कहा । परन्तु वह किसी को कर सकना संभव नहीं हुआ । मद्रास इलाके में तेलगू भाषा लोगों को इतनी कठिन पड़ती है, इसका मुझे आश्चर्य लगा । अपने यहां भी तो लगभग ऐसी ही स्थिति है । लोगों को ग्रन्थों की एकदम परवाह नहीं है । इसका कारण यह है कि प्रचलित संगीत ग्रन्थों को छोड़ कर आगे बढ़ गया है । उसमें नवीन अंचलों के नये प्रकार प्रविष्ट कर गये हैं। सुब्राम दीक्षित का उपयोग मैं इस प्रकार करूंगा कि उन्हें जो अनेक गीत व लक्षण गीत याद हैं उन्हें मैं सीख कर लिख रखूंगा । उनको जो-जो प्रकार याद है उन्हें उनसे ही गवाकर उनके अर्थों सहित फोनोग्राफ की सहायता से सुरक्षित करूंगा । "चतुर्दण्डिप्रकाशिका" एवं "रागप्रकरण" ये पुस्तकें उनसे समझ लेनी है । जहां पर भी उन्हें मदद करना संभव होगा वह तो मैं करूंगा ही तथा जो कुछ भी नवीन मिलेगा वह सभी लिख रखूंगा ।

यह तो एकदम स्पष्ट है कि मैं यहां पर एक-एक नगर में मात्र एक-एक दो-दो दिन ठहरूंगा अतः यहां की विशिष्टता के गीत सीखकर भलीभांति तैयार नहीं कर सकता । मुझे अब यहां की संगीत रचना का रहस्य समझ में आ ही गया है । यहां की "वाणी" की विशेषता भी

समझ आ गई है। अतएव अब प्रचुर संख्या में "चीजे" सीखने का महत्व घट गया है। ईश्वर कृपा से सुब्राम दीक्षित यहां आये, तो अच्छा ही होगा। ये गीत मैं उनके पास स्वयं सीख कर लोगों को सिखाने के लिये उनसे कहूंगा।

सुब्राम दीक्षित की पुस्तक देखकर ऐसा लगता है कि उसमें शास्त्रीय जानकारी का प्रारंभिक हिस्सा थोड़ा ही है। यद्यपि पुस्तक के दो खण्ड हैं उनमें अधिकांश गीत स्वर लिपि में दिये हैं। ये गीत अच्छे हैं। कुछ अंश में द्रविड़ पद्धति के लक्षणगीतों की रचना भी व्यक्त करते हैं। परन्तु शास्त्रीय जानकारी का हिस्सा पहिले भाग के प्रारंभ में ही बताया है। उसी भाग में प्रथम पचास पृष्ठों में यहां के संगीतज्ञों के जीवन चरित्र दिये हैं। यह भाग इतिहास की दृष्टि से अच्छा है तथा मैं उसका भाषांतर कर रखने वाला हूं। इसके उपरान्त संगीत की "प्राचीन पद्धति" पर के ७–८ पृष्ठ दिये हैं। उनमें कुछ संस्कृत श्लोक लेकर उनके अर्थ समझाये है। उसका कोई विशेष मूल्य नहीं है। पृष्ठ तीन पर चित्र के रुप में सोमनाथ (रागविबोध) तथा शार्ङ्गदेव इनकी स्वर रचना दिखाई है। परन्तु मुख्य मुद्दा है– जिस पर मेरी अपनी धारणा सुस्पष्ट नहीं थी– शार्ङ्गदेव के कोमल "रे ध ग नी" इनके क्या नाम दिये हैं अथवा अपने ग्रंथ में इसका उपयोग कैसे समझाया है। इस संबंध में दीक्षित ने कुछ नहीं कहा है। मैंने इस संबंध में उनसे प्रश्न भी पूछा परन्तु वे उसका उत्तर नहीं दे सके। दीक्षित के पुस्तकों की समीक्षा श्री सुन्दरम् ऐय्यर ने "हिन्दू" दैनिक पत्र में की है। उन्होंने भी सोमनाथ व उसके स्वरों का संक्षिप्त सा उल्लेख किया है। परंतु इस मुद्दे पर तो उन्होंने कतई कुछ भी नहीं लिखा। केवल सोमनाथ के स्वरों के नाम भर दिये हैं। मैं घर पहुंचने पर उनसे इस संबंध में पूछूंगा। हो सका तो तिरूमलय नायडू की मध्यस्तता से पूछूंगा जिससे उन दोनों को ही इस विषय पर बोलने का अवसर मिलेगा। अस्तु। मुझे तो यह देखना है कि रत्नाकर तथा रागबोध के स्वर प्रकरणों में परस्पर क्या संबंध है) पुस्तक के सातवे पृष्ठ पर वाग्गेयकार के लक्षण बताए है वे रत्नाकर के प्रकीर्ण अध्याय से लिये हैं। मैंने दीक्षित से कहा कि प्रकीर्ण अध्याय में विभिन्न "स्थाय" आदि बताए हैं उसके संबंध में आपने कोई विचार किया है क्या? उन्होंने कहा नहीं। अगला अध्याय है "संगीत लक्षण संग्रह संगीत प्रकरण"। इसमें मुख्यतः रत्नाकर मे श्रुति, मूर्च्छना, ग्राम, अलंकार इनके संबंध के श्लोक लेकर उनके अर्थ समझाए हैं। परन्तु उनके क्रियात्मक उपयोग के संबंध में दीक्षित मौन है। मैं इस प्रकार की पुस्तकों में यह दोष निकालता हूं कि ग्रंथकार सच्चे उपयोग की जानकारी देने से पीछे हटता है तथा प्रमाणिक रुप से यह भी नहीं कहता कि उसे ज्ञात नहीं है। वर्तमान संगीत का ग्राम, मूर्च्छना से भले ही संबंध न हो, परन्तु प्राचीन संगीत में उनका क्या उपयोग था, इतना भर समझाना भी क्या उनका कर्तव्य नहीं है केवल भाषांतर करते बैठे रहने वाले ग्रन्थकार की मैं प्रशंसा नहीं कर सकता। उस प्राचीन काल में संगीत कैसे गाते थे व उसके नियम कैसे थे, यह ग्रन्थ से स्पष्ट दिखना चाहिये। परन्तु वह जानकारी जब स्वयं दीक्षित को ही नहीं है तो फिर वे अपने ग्रन्थ में क्या लिखेंगे भला? श्लोकों के आधार से बाईस श्रुतियां लिखि जा सकती हैं तथा उन पर स्वरों की स्थापना भी की जा सकती है, परन्तु इतना पर्याप्त नहीं है। उन स्वरों का मूर्च्छना, ग्राम, राग, जाति के साथ संबंध स्थापित करना चाहिये तथा बाद में वे ही मेल आधुनिक संगीत में कौन से हैं, कैसे है तथा क्यों हैं यह दिखाने का यत्न करना चाहिये। तभी तो उसे उसे इस शताब्दि का उत्तम ग्रन्थकार कहना

शोभा देगा। अस्तु। दीक्षित ने ही उतनी जानकारी भी तो आज तक किसी ने नहीं दी थी। इस दृष्टि से इस पुस्तक को देखने पर दीक्षित की कीर्ति में वृद्धि वाली सिद्ध होगी। मुझे अभी भी तेलगू नहीं समझती। समझने पर पुस्तक के संबंध में अधिक अधिकार पूर्वक लिख सकूंगा। मेरे मित्र तिरूमलय नायडू ने बताया है कि दीक्षित ने "गमक" प्रकरण अच्छा लिखा है। वे मेरे लिये इस प्रकरण का भाषान्तर भी करने वाले है। वह प्राप्त होने पर देखूंगा।

स्फुट-विचार :- 'शार्ङ्गदेव की वंशावली-दक्षिणोत्तर संगम का स्वप्न'

सूचना :- सुब्राम दीक्षित स्वयं को व्यंकटमरवी का अनुयायी मानते है इतना ही नहीं वरन् वे अपने को उनका वंशज भी समझते है। व्यंकटमरवी के नाती ने उन्हें सिखाया ऐसा भी वे कहते है। व्यंकटभरवी के पिता गोविंद दीक्षित प्रसिद्ध तानाप्पाचार्य के शिष्य थे। तानाप्पाचार्य के गुरु शाङ्गदेव थे,ऐसी यह परंपरा दीक्षित बताते है। कदाचित् ऐसा होगा भी। यदि हिन्दुस्तानी संगीत सुव्यवस्थित करने में चतुर्दण्डि प्रकाशिका का उपयोग हुआ तो हमें एक बड़ी सम्माननीय परंपरा का आधार मिल सकेगा। परन्तु रत्नाकर का सम्बन्ध "चतुर्दण्डि" के साथ सुबोध रीति मे स्थापित हो जाना चाहिये। अभी भी संपूर्ण देश भर प्रवास करना है तथा विभिन्न विद्वानों के दर्शन करना है। क्या मालूम मेरी क्या-क्या सेवाएं ईश्वर को ग्रहण करनी है। मेरे हांथ से उत्तर का संगीत व्यवस्थित रुप धारण करें यह बड़ी दृढ़ इच्छा है। यदि संपूर्ण देश में प्रमुख बारह स्वर एक समान ही हैं, तो दक्षिण के शास्त्रीय संगीत के सिद्धान्त विशेष कर व्यंकटमरवी की विचारसारणी का उपयोग अवश्य किया जा सकेगा। यहां के राग भले ही भिन्न हो, गाने की रीति भले ही भिन्न हो, परन्तु सर्वत्र एक समान मूलतत्व स्वीकार करने में क्या कठिनाई है? उत्तर में भी यदि इससे अधिक शास्त्रीयता प्रतीत हुई तो उस पर भी विचार करूंगा, परन्तु यदि ऐसी प्रतीत न हुई तो व्यंकटमरवी को अपना गुरु स्वीकार करने में मुझे संकोच न होगा। फलस्वरूप संपूर्ण देश में एक पद्धति स्थापित करने का वह एक प्रयत्न होगा। मेरे कार्य का आरंभ में विरोध भी होगा। परन्तु कुछ समय बाद, मेरे द्वारा स्वीकार किया हुआ मार्ग आने वाली पीढ़ियों को मुख्यत: सुशिक्षित समाज को उचित लगेगा, ऐसी मुझे आशा है। राजा टैगोर ने भी प्रयत्न किया है। परन्तु मैं यह नहीं समझता कि उन्होंने उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत को योग्य पद्धति प्रदान की है। मुझे ऐसा लगता है उन्होंने प्राचीन संस्कृत ग्रन्थकारों की पद्धति पुनः स्थापित करने की शैली भर आत्मसात कर ली है। मेरे पास अभी भी पर्याप्त साधन सामग्री नहीं है। परंतु किन-किन बातों की आवश्यकता है इसका अन्दाज मुझे होने लगा है। यह सदैव ध्यान में रखना है कि यह कार्य उपयोगी तो है ही परन्तु बड़ी जिम्मेदारी का भी है। ईश्वर ने मुझे संसार के बंधनों से मुक्त किया है, यह एक अर्थ में उसका प्रसाद ही सिद्ध होने की संभावना है। बंगाल और उत्तर हिन्दुस्तान में शास्त्र दृष्टि से क्या-क्या मिलने की उम्मीद है यह देखे बिना कुछ भी निश्चित कर सकना संभव नहीं यह तो स्पष्ट ही है। जिस प्रभु ने मुझे यहां लाया, उसे बची हुई अन्य दिशाओं में ले जाने में क्या अड़चन आवेगी? आगे का कार्य उसको ही सौंपने ठीक होगा। किन्तु दक्षिण का स्वर सप्तक उत्तर की पद्धति में लगना मात्र कदापि उचित नहीं है। यहां जैसे "मायामालव" आदिसप्तक है वैसे ही अपने यहां बिलावल है यह कभी भी भूलना नहीं चाहिये। अपने यहां की पद्धति उसी शुद्ध-स्वर सप्तक के आधार पर खड़ी करनी चाहिये। सर्व

प्रथम यहां जैसे राग नियम निश्चित हुए है, वैसे अपने यहां करने का प्रयत्न करना चाहिये। उसे निश्चित करने के लिये उत्तर के उत्तमोत्तम सांप्रदायिक गीत प्राप्त कर उन पर विचार पूर्वक चितन मनन करना चाहिये। ये गीत योग्य अधिकारी व्यक्तियों से प्राप्त करने चाहिये। इन गीतों की सहायता से नियम निश्चित कर पद्धति बनानी चाहिये तथा वह प्रकाशित होने पर उसे लोकप्रिय करने एवं तथा चिर स्थायी करने के लिये सभी संग्रहित सांप्रदायिक गीतों को प्रकाशित करना चाहिये। ऐसा होने पर पद्धति व प्रचार अर्थात् लक्ष्य व लक्षण इनकी एक वाक्यता होकर उसे आदर प्राप्त होगा। रत्नाकर आदि प्राचीन ग्रन्थों से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न परंपरा का उत्तम निर्वाह करने के लिये है। ऐसा संबंध स्थापित होने पर हजार वर्षों का इतिहास तैयार होगा। क्या आर्य एवं द्रविड़ पद्धतियाँ एकदम भिन्न-भिन्न थी? उनका एक सदृश्य भाग कितना व कैसा था? तथा संपूर्ण देश में बारह स्वर एक समान कब तथा कैसे हुए ये प्रश्न भी विचार करने योग्य हैं। द्रविड सभ्यता उत्तर में पहुंची थी यह हम सबने पढ़ा ही है। उसका उत्तर की पद्धति पर कुछ परिणाम हुआ कि नहीं? कब और कैसे? यह भी देखा गया तो अच्छा होगा।

मंगलवार

तिन्नवेली **दिनांक २० दिसम्बर**

हम लोग इटैय्यापुरम् से चलकर इस स्थान पर सायंकाल ५ बजे आ पहुंचे। ठहरने का प्रबन्ध अच्छा हो इस हेतु इटैय्यापुरम् के दीवान् साहिब अर्थात जगन्नाथ चेटी ने तिन्नवेली के अपने बंगले के गुमास्ता को पत्र दिया था। मदुरा के हमारे मित्र रामस्वामी पिल्लेजी ने भी मुझे शिरस्तेदार व्यंकट स्वामी के लिये पत्र दिया था। हम लोग इटैय्यापुरम् बंगले में ही ठहरे। बाद में सायंकाल में कुछ समय खाली होने से "ताम्रवर्णी" नदी पर टहलने गया था। इटैय्यापुरम् के सुब्राम दीक्षित ने बताया था कि "चतुर्दण्डिप्रकाशिका" की नकल प्राप्त करनी है तो आप तिन्नवेली के कृष्ण स्वामी अय्यर से भेंट करें। वे, नागरी लिपि लिखने वाले लोगों को बुलाकर नकल करवा कर आपको भेज देगें। उनकी सूचना के अनुसार आज ही ए. कृष्णास्वामी का पता लगाने हेतु आदमी भेजा है। ये बड़े धार्मिक व्यक्ति हैं। पचास वर्ष से अधिक आयु के बड़े श्रीमंत व प्रसिद्ध वकील है। उनका उत्तर आया कि वे कल सुबह आठ बजे बंगले पर आवेंगे। सायंकाल कुछ और कर सकना संभव नहीं हुआ। मुझे यह सूचना मिली थी कि तिन्नवेली में संगीतज्ञों में मुत्तैया भागवत नामक एक है। उनके संबंध में एक सज्जन ने बताया कि वे यहां से कुछ दूर एक कसबे में रहते है। परन्तु उनकी प्रसिद्धी शास्त्रज्ञाता के रुप में नहीं है। वहां पहुचने के लिये रेल सुविधा न होने के कारण जाने का विचार छोड़ दिया। मैं तंजोर में था तब मुतैया भागवत नामक एक दूसरे सज्जन से भेंट हुई थी। उन्होंने मुझे गाकर सुनाया था तथा 'अतीत अनागत" विषय की समझायस भी दी थी। वे भी इसी स्थान के है ऐसा उन्होंने मुझे बताया था। उन्होंने मुझे चिन्नास्वामी मुद्लियर की "ओरियन्टल म्यूजिक" पुस्तक देना स्वीकार किया था अतएव उनके यहां कल जाने का निश्चय किया।

बुधवार

दिनांक २१ दिसम्बर

आज प्रातः श्री कृष्णस्वामी अय्यर आये। उनके साथ बड़ा लम्बा चौड़ा भाषण हुआ। मैंने उन्हें अपना उद्देश्य इत्यादि बताया यह व्यक्ति अत्यन्त सभ्य है। ये सुब्राम दीक्षित के बड़े प्रशंसक है। इन्होंने तेलगू भाषा में कविता इत्यादि भी की है। उन्हें संगीत का ज्ञान न होने के कारण उनसे हुए संभाषण का सारांश यहां पर लिखने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने यह बताया कि त्रिवेन्द्रम नगर में रामचन्द्र भागवत एक अति प्रसिद्ध वैणिक है उन्हें अवश्य सुन लीजिये वहां पुराने ग्रन्थों का पुस्तकालय भी है अतएव वहाँ आपके उपयोग की कुछ पांडुलिपियां मिल सकना संभव है। उन्होंने त्रिवेन्द्रम के दीवान के लिये तथा श्री केरल वर्मा एवं गणपत-शास्त्री के लिये परिचय पत्र भी दिये है। मैं उनका उपयोग करने वाला हूं।

सायंकाल में तंजौर में मिले मुतैय्या भागवत् का घर खोज निकाला। तथा उनसे पुस्तक के संबंध में पूँछा। वे बोले कि कल पुस्तक मंगवाकर आपके पास त्रिवेन्द्रम् भेज दूंगा। मेरे लिये गायन की बैठक करने वाले थे परन्तु मुझे फुरसत न होने के कारण मैंने आग्रह टाल दिया।

सरस्वती महल पुस्तकालय, त्रिवेन्द्रम् त्रिवांकुर, त्रिवेन्द्रम, राज छत्रम.

शुक्रवार २३ दिसंबर १९०४

हम लोग नावों में सवार होकर किलन के रास्ते से नहर से गुजरते हुए आज प्रातः ४ बजे ४० मील का मार्ग तैकर त्रिवेन्द्रम् आ पहुचे। यहां आने के पूर्व ही गोपालराव, तंजौर के वकील, का पत्र यहां व्यंकटराव के पास आया हुआ था। उन्होंने हमारे लिये राज छत्रम् में घर का अच्छा प्रबंध कर रखा था। ठहरने की व्यवस्था अच्छी हुई। भोजनोपरांत दो बजे यहां के महाराजा केवल वर्मा, के पहिली रानी के यजमान जो बड़े विद्वान है, उनसे भेंट करने गया। इनके लिये तिन्नवेली के श्री कृष्ण स्वामी अय्यर ने परिचयपत्र दिया था। पत्र व कार्ड भीतर भेजा, जिस पर तुरत बुलावा आया। संभाषण करते समय आने का कारण यह बताया कि मुझे संगीत ग्रन्थ एकत्रित करने की इच्छा है। मैं जब तंजौर एवं मद्रास में था तो मुझे सुनने में यह आया कि यहाँ का पैलेस पुस्तकालय प्रसिद्ध है तथा उसमें मुझे कुछ ग्रन्थ प्राप्त हो सकते है। दूसरा उद्देश्य यह है कि आपके नगर में रामचन्द्र एवं महादेव भागवत नामक दो संगीत विद्वान रहते है। उनका गायन सुनकर इस विषय पर योग्य जानकारी प्राप्त करना। उन्होंने मुझे कहा कि रामचन्द्र भागवत बाहर गांव गये हैं। उनके पास दूसरे एक गणपतशास्त्री नाम के बड़े संस्कृत विद्वान है। परन्तु छुट्टी हो जाने के कारण रात को ही वे तिन्नवेली चले गये। वे रहते तो पैलेस पुस्तकालय के ग्रन्थों की जानकारी ज्यादा अच्छी प्रदान कर सकते। अस्तु। इसके उपरान्त उन्होंने अपने लेखक को बुलाते हुए पैलेस पुस्तकालय का केटेलाग मंगवा कर मुझे दिया और कहा कि उसमें पुस्तकें देखें तथा जो हों उन्हें चिन्हित करें। मैंने, उसके अनुसार नोट किया तथा

उन्हें प्रत्यक्ष देखने कल दोपहर २ बजे जाना निश्चित किया है। इसके उपरान्त उनकी नकलें मांगूंगा। नकलें मुझे मेरे खर्चे पर खुशी से देने को वें तैयार है। श्री केरल वर्मा यह बड़े भाषा-विद् होने के कारण प्रसिद्ध हैं। वे बड़े प्रतिभावान् है। लोग कहते हैं कि उन्हें वीणा वादन भी आता है। परन्तु उन्होंने मुझे बजाकर नहीं दिखाया। उन्होंने कहा कि संगीत के शास्त्र का ज्ञान उन्हें बहुत अल्प है। इसके उपरान्त उन्होंने सुब्राम दीक्षित की पुस्तक प्रकाशित होने के संबंध में बताया। वह पुस्तक मुझे इटैय्यापुरम् के महाराज की ओर से मिली ही थी और यही मैंने उन्हें बताया भी। मैंने उन्हें यह भी कहा कि उस पुस्तक के विषय में उनका मत क्या है यह जानने की श्री दीक्षित की इच्छा है। श्री केवल वर्मा बोले कि वह पुस्तक मुझे किसी को दिखानी पड़ेगी। उसके बाद मैं उन्हें लिखूंगा। पुस्तक बहुत बड़ी है। इसके उपरान्त अन्य नगरों की तथा जलवायु की बात निकालकर संभाषण समाप्त हुआ। उनके दिये हुए केटेलाग में, मैंने निम्नलिखित पुस्तकों पर चिन्ह लगाये है। (१) संगीत चूडामणि (२) संगीत चिंतामणि (३) संगीत सुधा (४) संगीत सुधाकर (५) सप्तस्वर लक्षण (६) स्वरतालादिलक्षणम् (७) स्वर चिंतामणि (८) संगीत सर्वार्थ सार संग्रह (९) सभारंजन।

शनिवार ३ बजे अपरान्हः—

जैसा कि निश्चित हुआ था आज सरस्वती महल पुस्तकालय देखने गया। वहां जो एक चमत्कारिक रिवाज देखा वह ऐसा है। पुस्तकालय का लेखक हरिराय नामक एक महाराष्ट्र ब्राम्हण है जो बुलाने पर आया हुआ था। उसने बताया कि पुस्तकालय यह सरस्वती का निवास होने के कारण एकदम आवश्यक उतने ही वस्त्र पहन कर अधखुली पहनी हुई धोती और शरीर ढांकने का दुपट्टा इन दो वस्त्रों को ही धारण करना है आप वही करें। राजा के महल में इस प्रकार उघारे बदन जाना जरा अटपटा लगा। परन्तु कोई उपाय नहीं था। पैर में जूता नहीं पहिनना था। केवल दो वस्त्रों सहित अंदर गया। वहां हिज हाई-नेस केवल वर्मा ने अपने लिपिकों को पहिले से ही भेज दिया था। उन्होंने मेरे लिये कुछ पांडूलिपियां पहिले से ही मेज पर रख छोड़ी थीं यह सहज ही प्रतीत हुआ कि तंजौर की तुलना में यह पुस्तकालय बहुत बड़ा नहीं है। वहां की पुस्तकों का केटेलाग भी मेरे पास है। इसकी अपेक्षा तंजोर का ग्रंथालय पच्चीस गुना बड़ा है। संगीत पर जो ग्रन्थ मैंने नोट कर रखे थे उनमें से संगीत चिंतामणि बहुत उपयोगी नहीं है। उसमें स्वर-राग आदि पर जानकारी नहीं है तथा जो थोड़ी सी दिखी वह अधिकतर उपयोगी नहीं है। नृत्य पर अधिक जोर दिया है।

(२) संगीत चूड़ामणि— यह छोटी सी पुस्तक ताड़ पत्र पर है। इसकी संपूर्ण प्रतिलिपि मांगी है।

(३) संगीत सुधाकरः— इसमें जहां से दूसरा तालाध्याय, जाति लक्षण व राग लक्षण है ऐसे १० पृष्ठ मांगे है।

(४) संगीतसुधाः— इस ग्रन्थ से ६६ से ८२ तक के १६ पृष्ठ मांगे है।

[५] स्वर-तालादिलक्षणः— इसमें से केवल संस्कृत श्लोक मांगे है।

इसके अतिरिक्त "संगीत सर्वार्थ सार संग्रह" नामक पुस्तक पुस्तकालय के दूसरे भवन में है। उसे देखने कल जाने वाला हूं। बस, फिलहाल इतना पर्याप्त है। यद्यपि त्रावणकोर यह

बहुत पुराना संस्थान है फिर भी यहां इस विषय पर शास्त्रीय जानकारी मिलने की संभावना नहीं लगती। यहां के प्रसिद्ध संगीतज्ञ अर्थात भागवत और वें दोनों नगर में नहीं है यह दुर्भाग्य की बात है। उनके शीघ्र वापस आने की बात न होने के कारण उनको सुन सकना अब संभव नहीं है। यहां कोई दूसरा व्यक्ति इस विषय पर चर्चा करने में समर्थ हो तो मैं अवश्य बातचीत करता। क्या जानकारी मिलती है वह देखूंगा।

उपर्युक्त पुस्तकें मलयालम् लिपि में लिखी होने के कारण महाराजा केवल वर्मा ने अपना लिपिक उन्हें पढ़ने के लिये दिया था। उसके पढ़ने से ऐसा लगा कि उनमें बहुत सी विषय वस्तु हू ब हू रत्नाकर से ली हुई थी। कहीं-कहीं रचना भी ठीक नही। जाति प्रकरण के उपरान्त ग्राम राग इत्यादि। प्रकीर्णकाध्याय और वाद्याध्याय में भिन्न-भिन्न प्रकार की उन्ही वीणाओं का उसी के अनुसार वर्णन। इससे ऐसा दिखा कि ये सभी ग्रन्थ रत्नाकर के उपरान्त के है। कौन जाने पहिले के भी हों। परन्तु रत्नाकर के समान जानकारी उसमें नहीं थी इसीलिये ऐसा कहा। तालाध्याय, वाद्याध्याय, नृत्याध्याय इत्यादि विषय मेरी वर्तमान आवश्यकता के नहीं हैं। वाद्याध्याय तथा नृत्याध्याय तो एकदम नहीं है अतएव वे भाग पढ़े भी नहीं। स्वर राग एवं ताल के भाग कहीं-कहीं पसंद किये है। यहां सुबोध, स्वच्छ लिखने वाले अधिक नहीं है। पुस्तकालय के लेखक हरिपंत को सस्कृत अच्छी तरह नहीं आती, यह दुर्भाग्य की बात है इस वजह से क्या-क्या हाथ में लग सकता है यह देखना है अपने यहां रत्नाकर अब प्रसिद्ध हुआ ही है अतएव इन अन्य ग्रन्थों का विशेष महत्व नहीं रहा। इतना ही लाभ हुआ कि एक ग्रन्थ में मुख्य पंद्रह मेल बताए हुए दिखे। वह ग्रन्थ "संगीतसुधा" है। इसमें राग प्रकरण, जातिप्रकरण इत्यादि है तथा १५ मेल बताए है उनके नाम इस प्रकार है:-

[१] वराटी [२] गुर्जरी [३] वराली (४) श्री (५) भैरवी [६] शंकराभरण (७) हरिकाँभोजी (८) वसंतभैरवी [९] सामंत [१०] काँबोदी (११) मुखारी (१२) शुद्धरामक्रिया [१३] केदार गौळ (१४) हिजेज (१५) देशाक्षी

रत्नाकर में इस प्रकार की स्पष्ट रचना नहीं है अतएव मैं कहता हूं कि इस ग्रन्थ का समय बाद का है ऐसा समझ कर चलें। मेल प्रकरण तो बहुत महत्व का है ही क्योंकि हमें व्यंकट भरवी की रचना से संबंध स्थापित करना है। यह भी निर्विवाद है कि व्यंकट की रचना नवीन है। श्री सुब्राम दीक्षित ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ छह पर उनका चरित्र लिख रखा है। जाति तथा मेल का आपसी संबंध स्थापित करने का काम बहुत उपयोगी है। जाति से मेल प्राप्त हुए कि आगे का ढांचा हम व्यंकटमरवी का स्वीकार करेंगे, कारण वह पद्धति जीवंत एवं परिपूर्ण है शेष बची रहती है उदात्त, अनुदात्त की खटपट। कहां-कहां से और कैसा-कैसा शोध किया जा सकता है इसका दिशा ज्ञान अब अच्छी तरह से मेरे ध्यान में आ गया है। परन्तु यश देने वाला परमेश्वर है "संगीत चिंतामणि" नामक ग्रन्थ के लगभग १०० तालपत्र देखने में आये। वहुश: संपूर्ण ग्रन्थ अनुदात्त, स्वरित इन शब्दों के प्रयोग पर दिखा। विभिन्न पृष्ठों का मजमून मैंने पढ़वा कर देख लिया। विभिन्न वाक्य उदाहरणों के लिये लिखे हैं। अमुक व्यक्ति आदेश करता है तब स्वर ऊंचा होने पर अमुक प्रकार का स्वर बन जाता है, अमुक व्यक्ति धीरे बोलता है तब अमुक स्वर निकलता है, इस प्रकार की बातें उसमें है। मुझे वह अच्छा लगा। परन्तु

नकल का खर्च बढ़ जाने के भय से उसे आज ही नहीं मांगा। लगता है कि आगे पीछे उसे प्राप्त करना पड़ेगा। वहां एक संस्कृत शास्त्री बैठे हुए थे, वे बोले कि पुस्तक का यह अंश वैयाकरणी लोगों का है। आपके यहाँ भी मिलेगा। कुछ भी हो, मैंने उसे नहीं लिया पुस्तक का नाम "संगीत चिंतामणि" ऐसा है और वहां पर उसे भरत ग्रन्थ की सूचि में रखा है, यह विचारणीय है। कदाचित उदात्त, अनुदात्त के स्पष्टीकरण में अपने सप्तस्वरों का सप्तक किस प्रकार बना, इसकी जानकारी उसमें से निकल सकेगी। वह मिल जाने पर वैदिक-संगीत एवं रत्नाकर-संगीत के बीच की खण्डित कड़ी मिल जाने जैसा होगा।

रत्नाकर के जाति प्रकरण में प्रथम आठ जातियों को समझाते समय "वराटी दृश्यते" ऐसे उल्लेख है उससे यह संकेत मिलता है कि उस समय के राग कौन से व कैसे थे। (संगीत सुधा ग्रंथ में पहला मेल वराटी है) परन्तु इतने भर से संतोष नहीं होता। सुब्राम दीक्षित के कहने से यह लगा कि व्यंकटमखी ने उनके पूर्वप्रचलित मेल स्पष्ट नामों से लिखकर उनसे अपनी पद्धति की रचना दर्शायी है। अभी भी जाति के उपरान्त "कपालों" की रचना क्यों हुई इस विषय की अच्छी कल्पना देने वाला कोई विद्वान यहां नहीं मिला। यहां रत्नाकर देखा हुआ व्यक्ति ही कोई नहीं मिलता, तो फिर इस विषय का ज्ञान कहां से आवेगा ? मुझे ऐसी आशा है कि मैं रामामात्य व व्यंकटमखी की पुस्तकों से अठारह जातियो से मुख्य मेल निकाल सकूंगा। ऐसा हो सका तो मैं समझूंगा कि एक बड़ा काम हो गया। "वराटी" यह नाम हमारे यहां सुनने मिलता है। जब रामपुर के नवाब आये थे तब उनके गायक अब्दुल्ला खां ने मुझे "बराड़ी" सायंकाल के पूर्वी मेल से सुनायी थी। सुब्राम दीक्षित ने पुरातन अठारह मेलों के नाम दिये हैं। उन्हे मैं ऊपर लिख ही चुका हूं। परन्तु उनके स्वर किस आधार से लिखे हैं यह सब मैं "चतुर्दण्डि-प्रकाशिका" देखूंगा तब समझ में आवेगा। रत्नाकर के मेल एवं रागों में से बहुत से नाम यहां प्रचार में है। अब यहां ग्रन्थ भी पर्याप्त मिल रहे हैं। तथा उनसे खोज कैसे की जाय यह भी मेरे समझ में आ गया है। अतएव घर पहुंच कर इस काम में लगूंगा।

रामस्वामी भागवत से वार्ता — सोमवार, दिनांक २५-१२-०४

एक बात यह हुई कि मैं यहां "क्रिसमस" की पूर्व संध्या पर आया हूं जिसके कारण यहां जो दो-तीन निष्णात गायक है वे नगर में नहीं है। भागवत और कृष्ण स्वामी अय्यर वकील इत्यादि संगीत के क्रिया कुशल एवं शौकीन दोनों ही बाहर गये हैं। इस कारण उन लोगों से मुलाकात नहीं हो सकती। तथापि मेरे मित्र हरिराव जी, पुस्तकालय के लिपिक, तथा गोपाल राव (तंजौर के मामा) के दोपहर में समाचार दिया कि राजमहल के संगीतज्ञों में तीसरे स्थान के "रामस्वामी भागवत" नगर में है और इन्हे भी यहां बड़े संगीत विद्वानों में मानते हैं। अतएव चार बजे उनके घर गया। परिचय इत्यादि होने पर उन्होंने अपने बेटे की मधुर आवाज से यहां के विभिन्न रागों में गीत सुनवाये। उन्होंने परवावज की संगीत में अच्छा गाया। कर्नाटकी शैली से ही गाया। परतु एक मजे की बात ऐसी देखी कि इस लड़के के गायन में बीच-बीच में हिन्दुस्तानी ठुमरी की तानें भी आती रही। मैंने भागवत से पूछा कि आपके देश के गायन में यह विशिष्ट भाग इधर कुछ ही वर्षों में समाविष्ट हुआ होगा। इस पर स्पष्टीकरण मिला कि यह लड़का

हरिदास का काम सीख रहा है। अतः उसमें दिंडी, साकी जैसी चीजों का थोड़ा सा अभ्यास किया था। मेरे कहने पर उसने वह गाकर दिखाया। उसमें कर्नाटकीय ढंग आने लगा। तब मैंने उसे दुरुस्त करते हुए हिन्दुस्तानी ढंग दिखाया। वह उसे पसंद आया। बाद में मैंने उन्हें बताया कि मुझे शास्त्र पर संभाषण करने की इच्छा है। उन्होंने स्वीकृति देने पर इनके साथ भाषण इस प्रकार प्रारंभ हुआ :–

प्र. – शिष्य वर्ग को प्रारंभ में कौन सा स्वर सप्तक सिखाते है ?

उ. – "मायामालव" का।

प्र. – चूंकि यह पंद्रहवां हैं तो फिर प्रथम चौदह छोड़ने का क्या कारण है ?

उ. – ठीक कारण बता सकना मुझे संभव नहीं है। परन्तु वह "कनकांगी" बच्चों को बहुत कठिन पड़ता है यह तो सभी का अनुभव है। "मायामालव" प्रारंभ करते ही जमता है तथा प्रिय लगता है यह भी एक चमत्कार ही है।

प्र. – मेलों की यह रचना किसकी है और कब हुई ?

उ. – मालुम नहीं।

प्र. – क्या आप अपने संगीत के लिये कोई आधार ग्रन्थ मानते हैं ? और क्या उसके अनुसार गाते हैं ?

उ. – रत्नाकर को आधार ग्रन्थ कहते हैं। परन्तु मैंने वह देखा नहीं। नाम भर सुना है।

प्र. – तो फिर श्रुति, मूर्च्छना, ग्राम, अलंकार इत्यादि शब्द आपकी जानकारी में नहीं होंगे ?

उ. – नहीं ! मैं इस विवाद ग्रस्त मुकदमें में जानबूझ कर नहीं पड़ा। इससे व्यर्थ का टकराव होता है और इस प्रकार की खींचतान में गले से गाना भी नहीं बन पड़ता है।

मैं – इन खींचतानों से गायन का कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। गायन का तो जो अभ्यास करेगा उसे वह आना ही चाहिये। दोनों भी हो सकते है। मैं स्वयं गाने वाला नहीं हूँ परन्तु मुझे गायन आ सकता है। यदि आप मुझे कुछ राग गाकर सुनाएंगे तो मैं उन्हें वैसा ही गा सकूंगा। (लड़के के हाथ से तानपूरा लेकर मैंने धनाश्री, मुलतानी, पूर्वी इत्यादि थोड़ा गाकर दिखाया) राग के शास्त्र में, जिसे आप खींचतान कहते है, वह भी कर सकूंगा।

भागवत– आप ने जो राग गाये वे हमारे यहां भी है तथा आपने उन्हें ठीक ही गाया। मैं अल्पस्वल्प से गाकर अपनी गुजर करता हूं। सरकार से वेतन पाता हूँ, उससे हमारा निर्वाह होता है। हमको शास्त्र कौन बताएगा ?

मैं – यहां महादेव भागवत तथा रामचन्द्र भागवत की प्रसिद्धि सुनता हूँ।

भागवत– हां ! रामचन्द्र वीणा अच्छी बजाते है उनका वादन यहां की शैली का है। आप जो कह रहे है वह शास्त्र उन्हें आता है यह मैं नहीं कह सकता। अभी वे यहां है भी नहीं। अन्यथा आपको प्रत्यक्ष अनुभव आ जाता। वे फिलहाल "पालघाट" गये हुए हैं। यहाँ होते तो वे आपके प्रश्नों के क्या–क्या उत्तर देते यह मैं भी देख पाता।

श्री भागवत हरिराव के माध्यम से बोल रहे थे। उनका कहना ऐसा था कि यद्यपि उन्हें ग्रन्थ इत्यादि की जानकारी नहीं है फिर भी यहां से ४० मील पर पद्मनाम-पुर में उनके घर पर कुछ ग्रन्थ ताल पत्रों पर लिखे हुए है। मेरे अनुनय पर वे उन ग्रन्थों को यहां लाने वाले है तथा हरिराव नागरी लिपि में लिखकर मेरे पास भेजने वाले है। देखें उनमें क्या लिखा है ?

प्र. – "चतुर्दण्डि" अथवा व्यंकटमखी के नाम सुने है ?

उ. – नहीं।

प्र. – शुद्ध छायालग संकीर्ण राग का क्या अर्थ है ?

उ. – मालूम नहीं।

प्र. – धनराग क्या होता है ?

उ. – पता नहीं।

प्र. – गीत लक्षण अथवा लक्षण गीत क्या आपको आते है ?

उ. – मुझे नहीं आते। कोई–कोई लोग उन्हें थोड़ा गाते है।

प्र. – क्या आपने यहां किसी को गोविन्द की अष्टपदियाँ गाते सुना है ?

उ. – पुरानी शैली में किसी को भी नहीं आती। केवल कल्पना से जैसे–तैसे कोई दो चार गा लेते है।

प्र. – क्या आपको ताल लक्षण के श्लोक आते है ?

उ. – नहीं।

प्र. – यहां ऐसे कौन से ताल हैं जो बहुत प्रचलित है ?

उ. – आदि, झंपा, रूपक और त्रिपुट।

प्र. – इनकी जो दूसरी अनेक जातियां हैं वे ?

उ. – गायन में बहुत अधिक नहीं आती । परन्तु गायक को उनमें से कुछ-कुछ बैठाकर रखते है ।

प्र. – आलाप के क्या नियम है ?

उ. – वह मैं नहीं बता सकता ।

प्र. – क्या लघु, गुरू, मेरू, सुने है ?

उ. – नहीं !

मंगलवार

त्रिवेन्द्रम्, त्रिवांकुर दिनांक २६ दिसम्बर ०४

– महाराजा केवल वर्मा का संगीत प्रेम –

आज प्रातः हिज् हाईनेस केवल वर्मा को चपरासी के हाथ पत्र भेजा है तथा मुझे जो ग्रन्थ अच्छे लगे हैं उन्हें मांगा है। ऐसा सुना है कि केवल वर्मा ने हरीराव लेखक को नकलें शीघ्र तैयार करने तथा वे हो जाने पर मेरे पास पहुँचा देने का आदेश दिया है । केवल वर्मा के व्यक्तिगत लिपिक कूप स्वामी आयंगार स्वयं मेरे पास आज आये थे । उन्होंने यह सूचना मुझे दी । हरिराव भी आकर कहने लगे कि उनके यजमान ने नकल का कार्य एकदम तुरन्त करने का आदेश दिया है । सचमुच यह सब बहुत अच्छा जम गया । श्री कृष्णस्वामी वर्कील के उपकार मानने चाहिये । उन्हें उस आशय का पत्र लिखा भी है । दीवान श्री माधवराव भी बड़े विनम्र व्यक्ति है । उन्होंने भी मुझे बताया कि उनका स्वयं का मुद्रणालय है । अतएव जो पांडुलिपियां आपको बहुत महत्व की लगेंगी उन्हें लिखकर दें तो उन्हें प्राथमिकता से छापने का आदेश वे दे देंगे । आपके प्रयास बहुत अच्छे है । ऐसे प्रयत्न होना ही चाहिये तथा आपके कार्य को यश मिले ऐसी मेरी कामना है । यह सुनकर मुझे सतोष हुआ । ग्रन्थों को एक बार पढ़ लेने के बाद उनके विषय में मैं उन्हें बताने वाला हूँ । जीर्ण पांडुलिपियों को शासकीय मुद्रणालय में छपवाकर प्रसिद्ध करने का निर्णय उन्होंने पहले से ही ले रखा है । जिसके अनुसार "भक्तिमंजरी" पुस्तक छप कर तैयार हुई मैंने पुस्तकालय में देखी । मुझे चिन्नास्वामी मुदलियर की "ओरियन्टल म्यूजिक" पुस्तक की एक प्रति चाहिये थी जो नहीं मिल रही है । माधवराव को यह बताते ही उन्होंने एक लिपिक को पूछताछ करके मुझे वह दिलवा देने के लिये कहा । उनको इस विषय में रूचि है । उन्होंने घर पर स्वयं फोनोग्राफ रखा है । तथा उस पर उतारे हुए कुछ हिन्दुस्तानी गीत, जो उन्होंने टी. रामन्द्रराव एण्ड कंपनी से प्राप्त किये हैं उनके निजी सचिव ने मुझे सुनाये । वे अब बड़े अस्पष्ट हो गये है । गीतों का टंकण घर में ही और स्वयं किया था जिससे स्पष्ट होता है कि दीवान साहिब को हिन्दुस्तानी गीत अधिक पसंद है । श्री सचिव ने भी कुछ ऐसा ही बताया । मैंने अपना फोनोग्राफ साथ में नही लाया यह एक प्रकार से गलती की । यहां के गीतों के नमूने मुझे सहज में ले जाना संभव होता । अस्तु । सुब्राम दीक्षित व श्री निवास अयंगार वहां आने वाले हैं, उस समय यह काम करूंगा ।

श्री हरिराव ने दबी आवाज़ में यह भी बताया कि केवल वर्मा ने मेरे बारे में और भी पूछ ताॅछ की तथा हरिराव ने भागवत के यहां हुई चर्चा जब उन्हें बतायी तो उस पर उन्होंने कहा कि महादेव तथा रामचंद्र भागवत भी शास्त्र में रामस्वामी जैसे बन सकते थे । पर वे नीरे क्रिया कुशल है ऐसा उनका मत है ।

पालघाट (जिस शहर में भागवत गये हैं) इरोड–कोचीन रेल लाइन पर है । मुझे मैसूर जाना है । यदि संभव हुआ तो कोचीन की ओर से जाकर भागवत से मिलकर फिर मैसूर जाऊँगा । पर वह आज ही निश्चित करना संभव नहीं है ।

क्विलोन बुधवार २८

आज यहां आ पहुंचा । पूंछ ताछ करने पर ज्ञात हुआ कि यहां अच्छे जानकार संगीतज्ञ कोई भी नहीं है। यहां के नागरिकों में मुसलमान और धर्म परिवर्तित ईसाई अधिक है । सुशिक्षित और उच्च श्रेणी के व्यक्तियों का प्रमाण कम है । संगीत की जानकारी रखने वाले लोग एकदम कम है । कुछ-कुछ नौसिखिया शौक से गाते हैं परन्तु उल्लेख करने योग्य उन्हें कुछ नहीं आता । यह भी सच है कि क्विलोन की संगीत संबंधी प्रशंसा मैंने कहीं नहीं सुनी थी । हमारी संगीत प्रेमी मंडली के कुछ सदस्य प्रवास के कारण थोड़े अस्वस्थ हो गये है । अतः कोचीन के रास्ते से जाना स्थगित कर त्रिचनापल्ली जाना निश्चित किया है । स्वयं भागवत पालघाट में न होकर कुछ दूरी पर एक देहात में रहते हैं, ऐसा विदित हुआ । वहां जाने के लिये रेल नहीं । अतः वह निश्चिय रद्द किया । भागवत से भेंट–साक्षात्कार नहीं हो सका इससे मन विषण्ण हुआ परन्तु कोई उपाय नहीं है ।

भीमाचार्य– एक नमूनेदार वार्ता त्रिचनापल्ली, शक्रवार २९ दिसम्बर' ०४

आज सायंकाल हम लोग यहां आ पहुंचे । यहाँ आने के दो उद्देश्य है । पहिला यह कि यहां "श्रीरंग" नामक एक बड़ा तीर्थ स्थान है जहां की यात्रा साथ के व्यक्तियों को कराना । दूसरे यह कि यहां संगीत विद्वानों से भेंट कर उनसे जानकारी प्राप्त करना । तंजौर में रहते हुए मुझे वहां के मित्रों ने बताया था कि यहां "गोविन्द स्वामी" फिडिल बजाने वाले सुनने लायक अच्छे हैं। दूसरे एक भीमाचार्य नामक वृद्ध गायक हैं। श्री गोपाल राव वकील ने यहां श्री संजीव राव वकील के लिये पत्र दिया था । परन्तु यहां आने पर ज्ञात हुआ कि श्री संजीवराव त्रिपति स्थान पर छुट्टियां बिताने गये हैं । अतः "श्रीरंग" में छत्रम् (यात्री गृह) में ठहरा ।

शनिवार दिनांक ३०-१२'-०४

मैं यहां रात को ९ बजे आया था । दिनांक ३० को उठते ही फिडिल वादक गोविन्द स्वामी की खोज करने निकला तब यह पता चला कि वे मद्रास गये हुए है । इसके उपरान्त भीमाचार्य का पता लगाया । यह भीमाचार्य पुरोहित ब्राम्हण है । आयु ७५ वर्ष की होगी । उनके

सुपुत्र हमारे पुरोहित बने थे। उन्होंने अपने पिता जी को "सिंगिंग ऐसासियेशन, बंगलौर द्वारा प्राप्त फ्रेम में मदाये हुए एक प्रमाण-पत्र को दिखाया। इस कारण आशा थी कि उनसे कुछ महत्व की जानकारी प्राप्त हो सकेगी। परन्तु दुर्भाग्य से वह आशा भी व्यर्थ गई। भीमाचार्य बुलाने पर आये। उनसे इस प्रकार संभाषण हुआ :-

प्र. – आपको संगीत शास्त्र का कितने वर्ष का अनुभव है ?

उ. – ६० वर्ष का।

प्र. – आपने गुरू कौन है ?

उ. – मेरे नियमित गुरू नहीं है। म ही बहुतों का गुरू हूं। परन्तु सुब्बाराव नामक एक गायक थे, उन्हें गुरू मान लिया था। वे यहां एक देहात में रहते थे। मुझे बड़े-बड़े नगरों में (जैसे बंगलौर, मैसूर आदि) पदक मिले है।

प्र. – आप क्रिया कुशल है अथवा संगीत विद्वान भी हैं ?

उ. – मैं सब कुछ हूं और सब कुछ जानता हूं।

इतने में ही उनके सुपुत्र सामने आकर बोले कि आज हमारे मिता जी के सामान गायक तथा इस विषय के अधिकारी ससार में दूसरा मिलना संभव नहीं है।

प्र. – भीमाचार्च। मुझे आपसे जानकारी प्राप्त करना है।

उ. – तुम्हें देने को यह नारियल लाया है इसे लो। गुरू का सच्चा अनुग्रह हुए बिना विद्या नहीं आती। और यदि आई तो फलीभूत नहीं होती, यह तत्व सदा ध्यान में रखिये। मैं तुम पर प्रसन्न होकर यह श्रीफल दे रहा हूं, तथा संगीत उपदेश देता हूं।

ये शब्द सुनकर मुझे कैसा लगा उसकी कल्पना की ही जा सकती है। मैंने नारियल हाथ में लेकर तथा नमस्कार कर उसे एक तरफ रख दिया। इस पर उन्होंने ईश्वर स्तुति के एक-दो श्लोक पढ़े। मैं तब तक चुपचाप बैठा रहा। इसके बाद प्रश्न पूछे :-

प्र. – वर्तमान में आपके मद्रास क्षेत्र में आपके सुनने में प्रसिद्ध ऐसा संगीत विद्वान कौन है ?

उ. – मेरे अतिरिक्त कोई नहीं। संसार में तंजौर से अधिक संगीत प्रसिद्ध नगर दूसरा नहीं है। वहां अब कोई नहीं है। "त्यागय्या" हुए थे। उनके बाद सब कुछ समाप्त हो गया।

प्र. – क्या किसी एक आद संगीत ग्रन्थ का नाम लेंगे ?

उ. – समस्त संगीत का आधारभूत ग्रन्थ "संगीतसवार्थ सार है"।

प्र. – क्या उसे आपने देखा है ?

उ. – नहीं केवल नाम सुना है।

प्र. – आपने और कोई ग्रन्थ पढ़ा या सुना है ?

उ. – नहीं। मैं ग्रन्थों को एकदम मानता ही नहीं।

प्र. – क्या "कटपयादि संज्ञा" यह शब्द सुने हैं ?

उ. – नहीं।

प्र. – आपके यहां संगीत का आदिकर्त्ता कौन है ?

उ. – त्यागय्या। उन्होंने हजारों राग उत्पन्न किये। सभी राग उन्होंने ही उत्पन्न किये।

प्र. – उसके पहिले संगीत की स्थिति कैसी थी ?

उ. – उनके पहिले राग इत्यादि एकदम नहीं थे। "त्यागय्या" ईश्वर के अवतार थे। उन्हें स्वप्न में दिखाई पड़ता था और उसके अनुसार वे एक-एक राग रचते थे।

प्र. – क्या रागों के कोई नियम आपको ज्ञात है ?

उ. – वह खटपट मैंने एकदम नहीं रखी।

प्र. – स्वर प्रस्तार, ताल प्रस्तार इसके विषय में कुछ ?

उ. – यह सब मैं कुछ नहीं मानता। मैंने यह निश्चय किया है कि इस थोथी उठापटक में एकदम नहीं पड़ना। मैंने गायन पकड़ा। उसमें भी प्रथम अग्र स्थान मेरा है। मैं कीर्तन गाता हूं, वह सुनों। दूसरी बकझक मत करों और प्रश्न तो एकदम पूछों मत।

ऐसा कह कर सीधा कीर्तन गाने लगे। गायन एकदम सुनने योग्य नहीं था। आवाज बुढ़ापे की– झटके और कंपन की थरथराहट वाली। ऊंगलियों से बीच-बीच में मेरी जांघ पर जोर से हाँध मार कर मात्राएं गिनते तथा ताल के स्थान पर धमाके से थाप भी मार देते थे।

प्र. – जरा सुनिये तो भीमाचार्य जी ! पल्लवी, अनुपल्लवी तथा चरण का स्वर नियम कैसे होते हैं ?

उ. – इन सब में स्वर एक ही रहना चाहिये, नहीं तो राग कैसे रहेगा।

प्र. – परन्तु "पल्लवी, अनुपल्लवी" यह स्वरों से कैसे पहिचानी जाती है ?

उ. – अकल से। (वहां बैठे हुए जो व्यक्ति थे उन्होंने बीच में ही कहा कि स्वरों की ऊंचाई निचाई से) हां, यही ठीक है।

प्र. – ताल तथा उसकी जाति ज्ञात है क्या ?

उ. – सात ताल है, वे ही असली हैं। ताल जाति का निर्माण तो व्यर्थ की झंझट बढ़ाने के लिये किसी ने कर रखी है। मैं उसमें नहीं पड़ा।

अतः ऐसे व्यक्ति को कष्ट देना उचित न समझ कर उनको गाने दिया और भाषण वहीं पर समाप्त किया।

ऐसा लगता है कि इस शहर में संगीत की चर्चा कम है। गोविन्द स्वामी के संबंध में भीमाचार्य ने कहा कि वह भी फिडिल बजाने वाला है। मैं जितना गाऊंगा उतना ही वह बजावेगा। अधिक शास्त्र उनको भी क्या मालूम ? परन्तु तंजौर के लोगों ने प्रशंसा की है अतएव वह अच्छा होना चाहिये ऐसा समझ लिया जा सकता है।

जाति प्रकरण (एक स्फुट विचार)

त्रिचनापल्ली दि. ३१–१२–१९०४

अनेक प्रसंगों पर यह कहा ही है कि जाति प्रकरण बहुत महत्व का है। इनसे ही मेल उत्पन्न करना है तथा इन मेलों से भिन्न–भिन्न राग उत्पन्न करना है। रत्नाकर में ग्राम रागों की व्याख्या करते समय प्रत्येक व्याख्या में जाति का संबंध बताया हुआ देखता हूँ अर्थात्, व्यवहारिक रुप में,मेलों से यह राग उत्पन्न करना है, ऐसा कहा हुआ सा है वस्तुतः मूर्च्छना द्वारा स्वर–सप्तक का बोध होता है तथा इन स्वरों को प्राप्त कर जाति के स्वरों की रचना होती है। ग्राम द्वारा मूल सप्त स्वरों की "श्रुतिरचना" ज्ञात होती है। जाति के लिये तेरह लक्षण संभालने पड़ते हैं। मूर्च्छना से स्वर सप्तक बताए गये हैं। इनके स्वरों में यदि विशिष्ट परिवर्तन करना हो तो जाति की व्याख्या में इसका उल्लेख किया होता है। जैसे काकली, 'गान्धार अन्तर' इत्यादि। उसी प्रकार वादी, संवादी, संगति, ताल इत्यादि बाते भी "जाति" बताती है। इससे श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना व जाति की सुन्दर शृंखला बनती है। इन जातियों के भेद इस प्रकार बताये है। मुख्य भेद दो किये है :– अर्थात (१) शुद्ध (२) विकृत। इन प्रत्येक भेद को इस प्रकार समझाया है :–

'शुद्धाः स्युर्जातयः सप्तः' इत्यादि।

सात शुद्ध जाति मानी गई है। उनके नाम सात शुद्ध स्वरों से निश्चित किये गये है। जैसे षाड्जी, आर्षभी, गांधारी, मध्यमा, पंचमी, धैवत, नैषादी।

इस प्रकार के नाम देने का कारण यह है कि इन शुद्ध जातियों में "नाम स्वर" (जिस

स्वर पर वह जाति होगी वही) ही "न्यास, अपन्यास" "ग्रह" व "अंश" इन चार स्थानों पर रहता है। (यह सभी शब्द आगे समझाये है) तथा उनमें (जातियों में) न्यास तार सप्तक के स्वरों पर नहीं होता।

सूचना :– "तार न्यास विहीना" यह नियम ठीक लगता है कारण ऐसे ऊंचे स्थान पर कंठ ले जाकर वहां गायन छोड़ देना अच्छा नहीं दिखता। अतएव शुद्ध जाति के संबंध में हमें पांच लक्षण ध्यान में रखने है :–

(१) ग्रह = नाम स्वर (२) अंश = नाम स्वर (३) व न्यास = नाम स्वर (४) अपन्यास = नाम स्वर (५) संपूर्ण त्व = प्रत्येक जाति सात स्वरों की संपूर्ण होती है। (६) न्यास तार स्थान में नहीं करना चाहिये।

इन लक्षणों में कुछ भी परिवर्तन करने से विकृत जाति होती है। वे शुद्ध रूपों से ही उत्पन्न होती हैं जिसके कारण उनको भी वही नाम देते है। जैसे विकृत षाड्जी इत्यादि। रत्नाकर में अठारह जातियां बताई हुई दिखती है। इनमें ये विकृत जाति समाविष्ट नहीं है। वे शुद्ध जातियों के अंतर्गत ही आती हैं इन अठारह में सात शुद्ध उदाहरणार्थ षाड्जी, आर्षभी नैषादी इत्यादि है। बाकी जो ग्यारह बची है वे उपर्युक्त शुद्ध में से दो अथवा तीन चार जाति मिलकर बनी है जो आगामी पंक्तियों में दर्शाया है।

शुद्ध जाति को विकृत कैसे करना यह इस प्रकार बताया है। उपर्युक्त जो पांच लक्षण बताये है (अर्थात न्यास, अपन्यास, ग्रह, अंश एवं संपूर्ण) इनमें से प्रथम लक्षण को यथावत् रहने दीजिये तथा शेष चार लक्षणों के नियम का उल्लंघन कीजिये। इस प्रकार वे विकृत हो गई। जैसे :– नियम में कहा गया है कि "नामस्वर" ग्रह रहता है, इस नियम का उल्लंघन कर किसी अन्य स्वर को "ग्रह" करने पर विकृत जाति हो जावेगी। केवल "न्यास" के लक्षण को परिवर्तित नहीं करना है। इसके दो कारण बनाए जा सकते है। एक तो यह कि तार स्थान में समापन करना अच्छा नहीं लगता और दूसरा यह कि वह लक्षण यथावत् रखने से अपनी शुद्ध जाति से जुड़ा हुआ। यह कोई विकृत प्रकार है, ऐसा दिखने के लिये गुंजांइश रहती है।

ग्रंथकार ने यह समझाया है कि इस प्रकार से शेष चार लक्षणों के नियमों को भंगकर कितने विकृत प्रकार बन सकते है :–

संपूर्णत्व ग्रहांशापन्यासेष्वेकैक वर्जनात्।
भवन्ति भेदाश्चत्वारो ट्योस्त्यागे तु षण्मताः ॥४॥
त्यागे त्र्याणां चत्वार एकस्त्यक्ते चतुष्टये।
भेदाः पंचदशैवंते षाड्ज्याः सम्भिर्निरूपिताः ॥५॥

[सं. र. जातिप्रकरण]

वह कहता है–– उदाहरणार्थ "षाड्जी" जाति लीजिये। इसके चार लक्षणों में से (अर्थात ग्रह, अंश, अपन्यास, संपूर्णत्व) हर बार एक एक ही छोड़ दिया तो चार प्रकार होंगें।

एक लक्षण का उल्लंघन :-

१.	संपूर्णत्व का	उल्लंघन	और	शेष	तीनों	यथावत	रखकर	= एक भेद
२.	ग्रह नाम स्वर	"	"	"	"	"	"	= दूसरा भेद
३.	अँश (")	"	"	"	"	"	"	= तीसरा भेद
४.	अपन्यास (")	"	"	"	"	"	"	= चौथा भेद

कुल चार भेद

प्रत्येक बार दो लक्षण बदलने से ६ भेद होते हैं जैसे :-

दो लक्षणों का उल्लंघन :-

१.	संपूर्णत्व और ग्रह का	उल्लंघन	–	शेष	दो	यथावत	= एक भेद
२.	संपूर्णत्व और अंश का	"	–	"	"	"	= दूसरा भेद
३.	संपूर्णत्व और अपन्यास का	"	–	"	"	"	= तीसरा भेद
४.	ग्रह और अंश का	"	–	"	"	"	= चौथा भेद
५.	ग्रह और अपन्यास का	"	–	"	"	"	= पांचवा भेद
६.	अंश और अपन्यास का	"	–	"	"	"	= छठा भेद

इस प्रकार दो लक्षण परिवर्तित करने से ६ भेद हुए। ३ लक्षण प्रत्येक बार बदलने से ४ भेद होते है।

तीन लक्षणों का उल्लंघन :-

१.	संपूर्णत्व, ग्रह और अंश का	उल्लंघन	– अपन्यास	यथावत	= पहला भेद
२.	" ग्रह और अपन्यास का	"	– अंश	"	= दूसरा भेद
३.	" अंश और "	"	– ग्रह	"	= तीसरा भेद
४.	ग्रह " "	"	– संपूर्णत्व	"	= चौथा भेद

कुल चार भेद

चारों लक्षणों का उल्लंघन करने से एक ही प्रकार होगा।

१. संपूर्णत्व, ग्रह, अंश और अपन्यास का उल्लंघन – शेष यथावत = केवल एक भेद
(सारांश = ४ + ६ + ४ + १ = १५ भेद हुए)

अत: स्पष्ट है कि एक शुद्ध षाड्जी जाति से ऊपर लिखे हुए विभिन्न १५ प्रकार निकल सकते हैं। किन्तु प्रत्येक में "तार, न्यास, विहीनत्व" यह शर्त कायम रखनी है। जिससे यह संबंध दिखता रहेगा कि ये शुद्ध जाति से उत्पन्न हुई है।

उपर्युक्त पंद्रह प्रकार भंली-भांति परख कर देखने से स्पष्ट होगा कि जिन प्रकारों

में "संपूर्णत्व" भ्रष्ट किया है ऐसे आठ प्रकार पाये जाते हैं। शेष सात प्रकारों में अन्य लक्षणों को परिवर्तित किया गया है जो सहज ही समझ में आ सकता है। अब हम जानते ही हैं कि "सपूर्णत्व" भंग करने का अर्थ है एक या दो स्वर कम करना। (संगीत शास्त्री दो से अधिक स्वर कम करना स्वीकार नहीं करते कारण औडुव, षाडव, संपूर्ण ऐसे केवल तीन प्रकार के राग ही माने हैं।) अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि शुद्ध जाति का संपूर्णत्व भंग करने का अर्थ है उसे "औडुव" अथवा "षाडव" बनाना। ऐसे प्रकार तो एक जाति से आठ उत्पन्न होते हैं। अतएव एक बार "औडुव" तथा एक बार "षाडव" से उन आठों के सोलह प्रकार होंगे। इस गणित से एक षाड्जी से ही तेईस प्रकार हुए यह समझा जा सकता है। यहीं गणित अन्य छह जातियों में लगाने पर २३ × ७ = १६१ प्रकार होंगे। परन्तु एक बात ध्यान रखनी चाहिये कि **षाड्जी जाति को केवल 'षाडव" ही करना है, "औडुव" नहीं करना।** अतएव उसके औडुव प्रकार इस ऊपर की संख्या से घटाना है।

आर्षभी – २३ (औडुव-षाडव १६ + ७ अन्य)

गांधारी – २३ (,, ,, ,,)

मध्यमा – २३ (,, ,, ,,)

पंचमी – २३ (,, ,, ,,)

धैवती – २३ (,, ,, ,,)

नैषादी – $\frac{२३}{१३८}$ (,, ,, ,,)

षाड्जी – $\frac{१५}{१५३}$ (षाडव ८ + ७ अन्य, औडुव घटाना है)

रत्नाकर में सात मुख्य जाति तथा अन्य ग्यारह जाति ऐसी अठारह बताई है। उनमें से अंतिम ग्यारह को नित्य विकृत कहते हैं। उपर्युक्त जो १५३ प्रकार बताए हैं वे प्रथम सात जातियों के ही हैं। निश्यविकृत जातियां मिश्रण से होती हैं। नित्य विकृत कैसे–कैसे बनती है, यह बताता हूं :–

(१) षाड्जी + गांधारी = षड्कैशिकी

(२) षाड्जी + मध्यमा = षड्जमध्यमा

(३) गांधारी + पंचमी = गांधार पंचमी

(४) गांधारी + आर्षभी = आंध्री

(५) षाड्जी + गांधारी + धैवती = षड्जोदीच्यवा

(६) नैषादी + पंचमी + आर्षभी = कार्मारवी

(७) गांधारी + पंचमी + आर्षभी = नंदयन्ती

(८) गांधारी + धैवती + षड्जो = गांधारौदीच्यवा

(९) गांधारी + धैवती + मध्यमा + पंचमी = मध्यमोदीच्यवा

(१०) गांधारी + नैषादी + मध्यमा + पंचमी = रक्तगांधारी

(११) षाड्जी + गांधारी + मध्यमा + पंचमी + नैषादी + कैशिकी

इन अठारह जातियों में से षड्ज कैशिकी, षड्जमध्यमा, षड्योदीच्यवा, षाड्जी, आर्षभी, नैषादी एवं धैवती ये सात षड्जग्राम की है। अर्थात् उस ग्राम के करहरप्रिय = काफी अथवा मुखारी = कनंकागी थाट के स्वर मूल में स्थापित करना है। (ये स्वर वस्तुतः क्या है यह प्रथम निश्चित करना है) शेष ग्यारह जातियों के लिये मूल थाट मध्यम ग्राम का करना चाहिये। (मैं इस स्वर सप्तक की खोज कर रहा हूं। यहां क्रियात्मक रुप से लिखकर नहीं रखता। वह निर्विवाद प्रमाणित होने पर लिखूंगा।)

अठारह जातियों के लिये 'पूर्णत्वापुर्णत्व" नियम बताया गया है। कर्मारवी, गांधार पंचमी, षड्जकैशिकी तथा मध्यमोदीच्यवये सदैव संपूर्ण ही रहेगी। इनको षाड्व या औडुव नहीं करना है। षाड्जी, नदयन्ती, आंध्री, गान्धारोदीच्यवा से औडुव नहीं होती, अर्थात ये संपूर्ण या षाडव ही होती है। बाकी बची १० के तीन प्रकार भी बताए है।

पूर्व के "साधारण" प्रकरण में दो प्रकार के साधारण बताए हुए ही है। (१) स्वर साधारण तथा (२) जाति साधारण। बाद में स्वर साधारण के चार प्रकार बताये है (१) काकली साधारण (२) अंतर साधारण (३) षड्ज साधारण (४) मध्यम साधारण। काकली साधारण = काकली निषाद ही होता है, अंतर साधारण = अंतर गांधार होता है, षड्ज साधारण = कैशिकी निषाद का तथा मध्यम साधारण = साधारण गांधार।

"पंचमी मध्यमा षड्ज मध्यमाख्यासु जातिषु।
स्वर साधारणं प्रोक्त मुनिमिर्भरतादिभि. ॥ २ ॥
(सं.र.प्र.अ. ७ प्र.)

पचमी मध्यमा, षड्जमध्यमा इन जातियों की रचना में "स्वर साधारण" करना पड़ता है तथा वह करने के लिये भरतादि मुनियों द्वारा कहा गया :-

'अंशेषु समपेषु एतद्यथा स्वनियमा, द्रवेत् ।
एतदल्प निगास्वाहुः कंबलाश्चतरादयः ।
अल्पद्विश्रुतिके रागभाषा दाव पितन्मनतम् ॥ २२ ॥
(सं.र.प्र.अ. ७ प्र.)

जिस समय स, म, प इनमें से एकाद अंश स्वर रहता है उस समय स्वर साधारण होना ही चाहिये । अर्थात उन-उन स्वरों के अनुरोध पर वह करना है । 'सा' अंश स्वर होने पर "षड्ज साधारण" करना चाहिये । मध्यम अथवा पंचम "षड्ज साधारण" करना चाहिये, मध्यम साधारण करना चाहिये । "कंबल" तथा "अश्वतर" यह कहते हैं कि जिस जाति में "गांधार" तथा "निषाद" अल्प बताए गये, वहां सभी का साधारण करना ही चाहिये ।

निगयोः अंशयोः षड्चमध्यमायां न तद्भवेत् ।
विकृता एव तत्रापि स्वर साधारणाश्रयाः ॥ २३ ॥

(सं.र.प्र.अ. ७ प्र.)

किन्तु जब षड्ज मध्यमा जाति में "नी" व "ग" अंश स्वर होते है तब स्वर साधारण नहीं करना चाहिये । बहुतांश विकृत भेदों में स्वर साधारण प्रायः होता है ऐसा नियम है ।

अंशों की संख्या कुल तिरसठ मानी है तथा वह इस प्रकार विभाजित की गई है । (अर्थात अठारह जातियों में)

नन्दयन्ती, मध्यमोदीच्यवा, गांधारपंचमी में	(प्रत्येकशः)	१	अंश	=	३
धैवती, गांधरोदीच्यवा, पंचमी, इनमें	(प्रत्येकशः)	२	अंश	=	६
नैषादी, आर्षभी, षड्ज कैशिकी में	(प्रत्येकशः)	३	अंश	=	९
आंध्री, कार्मारवी, षड्जोदीच्यवा में	(प्रत्येकशः)	४	अंश	=	१२
रक्तगांधारी, गांधरी, मध्यमा, षाड्जी	(प्रत्येकशः)	५	अंश	=	२०
कैशिकी में.....		६	अंश	=	६
षड्ज मध्यमा में.....		७	अंश	=	७
			कुल जोड़		६३

एक ही समय पर ये स्वर अंश नहीं मानना है । ऐसा अर्थ करना चाहिये कि उसमें दिये हुए अंश स्वरों में से जो चाहिये वह स्वर अंश हो सकेगा । यह तिरसठ अंश संख्या संपूर्ण जाति हेतु है । षाडव जाति के लिये सैंतालीस अंश संख्या है, जो इस प्रकार है :-

सदा संपूर्ण जाति अर्थात कर्मारवी,गांधार पंचमी, षड्ज कैशिकी,मध्यमोदीच्वा के लिये नौ अंश । इस प्रकार बराबर गिने गये तो षाडव जातियों को सैंतालिस अंश व औडव जाति को तीस अंश आवेंगे ।

जाति कौन सी है उसकी पहिचान करने हेतु १३ प्रकार के जाति लक्षण बताए गये है अपने सामने की जो रचना होगी उसे यह १३ बातें लगाकर देखना चाहिये तथा बाद में उसकी सहायता से उसे नाम प्रदान करना चाहिये । ये लक्षण इस प्रकार है :-

ग्रहांशतारमंद्राश्च न्यासापन्यासकौ तथा ।
अपि संन्यासविन्यासौ बहुत्वं चाल्पता ततः ।।२८।।
एतान्यंस्वरमार्गेण सह लक्ष्माणि जातिषु ।
षाडवौडुविते व्क.पीत्येवमाहुस्त्रयोदशः ।।२९।।

[सं. र., प्र. अ., ७ प्र.]

भावार्थ: + १ ग्रह, २ अंश, ३ तार, ४ मन्द्र, ५ न्यास, ६ अपन्यास, ७ संन्यास, ८ विन्यास, ९ बहुत्व, १० अलपत्व, ११अन्तरमार्ग, (१२ षाडवत्व, १३ औडुवत्व कुछ जातियों में) इतनी बातें प्रत्येक जाति में लगाकर देखना है तथा उसके बाद जाति लक्षण उदाहरणों सहित दिये हुए है । इससे यह निश्चित होता है कि जाति अठारह् में से कौन सी है ? १२ एवं १३ कुछ जातियों हेतु कहे गये है इसका कारण ऐसा है कि कार्मारवी इत्यादि ४ जाति सदा संपूर्ण होती है । उन्हें यह लक्षण लागू नहीं होते ।

ग्रंथकार ने उपर्युक्त १३ बातों में से प्रत्येक को इस प्रकार समझाया है :-

ग्रह

गीतादिनिहितस्तत्र स्वरोग्रह इतीरित : ।
तत्रांशग्रहयोरन्यतरोक्ताषुभयग्रहः ।।३०।।

भावार्थ:- जो स्वर जाति के प्रारंभ में लिया जाता है उसी को "ग्रह" स्वर कहना चाहिए । सगीत का साधारण नियम यह है कि जो स्वर अंश (वादी) होता है वहीं ग्रह भी होता है । अतएव एक के संबंध में बताने पर दूसरे के विषय में बताने की आवश्यकता नहीं । इस पर कोई शंका कर सकता है कि यदि ऐसा माना है तो फिर अंतर कैसा ? अतएव बताता हूं:--

अंशो वाद्येव परं, ग्रहस्तु वाद्यादिभेदभिन्नश्चतुर्विधः ;
अंशश्च रागजनकत्वात्प्रधानमं, ग्रहस्त्वप्रधानम्, इति तयोर्भेदः ।।
(देखिये सिंहभूपाल की टीका स-र-प्र. अ. ७ प्र., मतंग से)

भावार्थ:- अंश स्वर सदैव केवल वादी ही रहता है । ऐसा "ग्रह" के संबंध में नहीं है । 'ग्रहस्वर' वादी, संवादी, अनुवादी, विवादी इन चारों में से एकाद हो सकता है ।

सूचना:- ('विवादी हो सकता है' । क्या इस लक्षण से यह नहीं दिखता कि राग में विवादी स्वर की आवश्यकता सौन्दर्य उत्पन्न करने के लिये रखी जाती थी ? अंश राग की उत्पत्ति का कारण है । ऐसा महत्व ग्रह स्वर को नहीं है ।

२ अंश लक्षणम्

यो रक्तिव्यंजकों गेये यत्संवाद्यनुवादिनौ ।
विदार्या बहुलौ यस्मात्तारमंद्रव्यवस्थितिः ।।३१।।

यः स्वयं यस्य संवादिवानुवादी स्वरोऽपरः ।
न्यासापन्यासविन्याससन्यासग्रहतां गतः ।
प्रयोगे बहुलः यः स्याद्वाद्यंशो योग्यतावशात् ॥३२॥

(सं. र., प्र. अ., ७ प्र.)

भावार्थः– प्रत्येक गीत में जो स्वर सच्ची रक्ति उत्पन्न करने वाला; जिस स्वर को संवादी एवं अनुवादी है, प्रत्येक विदारी में जिसका उपयोग यहां वहां दिखता है, (विदारी दो प्रकार के है, (१) गीत– विदारी, (२) पद विदारी। गीत का भाग अथवा अवयव अथवा चरण) जिस स्वर की सहायता से मन्द्र एवं तार स्वरों की मर्यादा निश्चित होती है, (तार सप्तक में अमुक स्वर तक ही चढ़ना है तथा मन्द्र में अमुक स्वर तक ही उतारना ऐसी मर्यादा लगाना संभव होता है), जो स्वर स्वतः अथवा उसका संवादी अथवा अनुवादी स्वर न्यासापन्यास, संन्यास, विन्यास, इत्यादि स्थानों में भी दृग्गोचर होता है, जो जात्यादि प्रयोग में प्रमाण से अधिक ही रहता है, (षाड्जी जाति में उदाहरण दिया है) उस स्वर को उसकी महत्वपूर्ण योग्यता के कारण अंश कहते है ।

शंका–अंश इस शब्द का अर्थ प्रचार में भाग, हिस्सा ऐसा है। तो फिर ऐसे महत्वपूर्ण स्वर को अंश क्यों कहा जाय ?

समाधानः– हां ठीक भी है। यह स्वर भी तो जातिरागादि के विभाग करता है, वर्गीकरण करा देता है। अतएव उसे अंश कहना उचित है।

३ तार लक्षण

मध्यमे सप्तकेंऽशः स्यात्तस्मात्तारास्थितात्परान् ।
स्वरांश्चतुर आरोहेदेष तारावधिः पर ॥३४॥
अर्वाक् तु कामाचारः स्यात्तारे लुप्तोऽपि गण्यते ॥३५॥

[सं- र-, प्र. अ-, ७ प्र.]

भावार्थः– मध्य सप्तक में अंश स्वर देखिये। उसे ही तार सप्तक में लेकर उसके आगे चार स्वर गिनने से तार मर्यादा हुई। उसके बाद गायन नहीं करना चाहिये। (वह आनंद नहीं देगा) उस मर्यादा के नीचे इच्छानुसार बिना कष्ट गाया जा सकता है। यह चार स्वर गिनते समय जो स्वर छोड़े गये है उन्हें भी गिना जाय। [कारण यदि वर्ज्य स्वर न गिने गये तो आवाज को बहुत ऊंचे, ले जाना पड़ेगा।

सूचनाः– भरताचार्य कहते है "चतुर्थपंचमसप्तमस्वरपर्यंतंतारगतिरुक्ता"
चौथे, पांचवे अथवा सातवें स्वर तक यह तार मर्यादा है परन्तु–
आतारषड्जमारोहो नंदयन्त्यां प्रकीर्तितः ।

अर्थ – नंदयंती जाति की रचना ऐसी है कि उसमें तार षड्ज तक ही आरोह करना है।

आगे जातियों के उदाहरण एवं व्याख्या हैं, उन्हें भी देख लें।

४ मंद्रावधि

मध्यस्थानस्थितादंशादामंद्रस्थांशमाव्रजेत् ।
आमंद्रन्यासमथवा तदधःस्थरिधावपि ॥३७॥
एषा मन्द्रगतेः सीमा ततोऽर्वाक् कामचारिता ।

अर्थ – मध्य सप्तक में अंश स्वर से मन्द्र स्वर, तक आरोहण अवधि समझना चाहिये या फिर "आमन्द्र न्यास" आरोह अवधि "मनि" स्वरों तक अथवा उसके नीचे "रे" "ध" तक (क्रम से) मानते है। यह मन्द्रस्थान की गति की मर्यादा मानते है। उसके बाद अपनी रूचि एवं शक्ति (?) पर निर्भर है।

५ न्यास

"गीते समाप्तिकृन्न्यास एकविंशतिधा च सः ॥३८॥

यस्तु गीत समाप्तिकः। जिस स्वर पर गीत समाप्त किया जाता है उसे न्यास कहते है। न्यास २१ प्रकार के है।

मेरे पूर्वोक्त लेखों में बम्बई में रहते हुए जातिप्रकरण के विषय में रत्नाकर के श्लोकों के आधार से थोड़ा–थोड़ा लिखा ही है। यह प्रकरण कठिन भी है। अतएव इसका प्रायोगिक व्यवहार अकेले व्यक्ति को समझना कठिन है। आज खाली होने के कारण तथा इस नगर में संगीत जानने वाला दूसरा कोई न होने के कारण रत्नाकर की पुस्तक हाथ में लेकर बैठा था। उसमें जातियों का वर्णन पढ़ रहा था। उसमें १५३ जातियों के प्रकार बताये है। उन्हें कागज पर लिख लिये और वे सुसंगत भी बन पड़े। कदाचित् पिछले लेखों में लिख सकना संभव नहीं हुआ होगा। इसलिये यहां लिख रखा है। यदि पहले भी लिख रखे हो तो पुनरूक्ति हो सकती है। फिर भी इसमें नुकसान तो कोई नहीं। जातियों के लक्षण तेरह बताए है। वह भाग समझने में सहज है। तथा बाद में स्वरलिपि में नमूने दिये है। उनको लिखने की आवश्यकता नहीं। यह विचार करने योग्य है कि बहुलत्व समझाते समय 'षाड्जी" में कुल कितनी बार "सा" आया है जिसे गिन कर बहुलत्व निश्चित किया है। इस प्रकार का यंत्रवत् बहुलत्व देखकर जरा आश्चर्य हुआ।

त्रिची

१ जनवरी १९०५

आज एक बजे की गाड़ी से हम लोग बंगलौर के लिये प्रस्थान करेंगे। कल श्री भीमाचार्य ने बताया कि मैसूर के सुभाना बीन वादक तंजौर गये है। वे अर्थोपार्जन हेतु प्रति वर्ष इस

प्रकार की यात्राएं करते है। मैं उनसे मैसूर जाकर मिलने वाला था। परन्तु ऐसा नहीं लगता कि जब वह योग आवेगा। अस्तु। वहां पहुंचने पर पैलेस पुस्तकालय देखूंगा व शेषाण्णा–सुभाणा से मिल लूंगा।

बंगलौर
२ जनवरी १६०५

हम लोग आज प्रात: लगभग ६–३० बजे पहुंच गये। त्रिचनापल्ली से एक परिचयपत्र इस शहर के रेवन्यू कमिश्नर श्री टी. आनन्दराव को पहिले ही भेज दिया था ऐसा लगा कि वह इनको समय पर नहीं मिला। कारण उनका कोई भी व्यक्ति स्टेशन पर नहीं दिखा। हम स्टेशन के समीप ही तोड़ाअप्पा छत्रम् नामक उतरने के स्थान पर जाकर ठहर गये। दोपहर ३ बजे के लगभग श्री टी. आनंदराव के रिश्तेदार गोविंदराव छत्रम् में आये और कहा कि मेरा पत्र दोपहर की डॉक से मिला तथा वे मुझे अधिक सुविधाजनक स्थान पर ले जाने को तैयार है। मुझे वहां कोई अडचन न होने के कारण आभार मानते हुए मना कर दिया। बाद में उनके साथ आनंदराव से मिलने गया। वार्तालाप के मध्य मैंने अपने मिशन की जानकारी दी। वे प्रसन्न हुए तथा बोले कि मैसूर में इनका स्वयं का मकान है। वहां ठहरने का प्रबंध हो जावेगा। अपने लिपिक के नाम पत्र भी देंगे। वह हमें सभी प्रकार की मदद करेगा। बड़ी खुशी से ऐसे पत्र भी देंगे जिससे मैसूर पुस्तकालय भली भांति देखने को मिल सकेगा। तथा मेरा वहां जाने का उद्देश्य सफल होगा। मैंने उन्हें बताया कि शेषण्णा तथा शुभण्णा से भी कुछ जानकारी प्राप्त करनी है। इस पर वे बोले कि मैसूर के महाराज अभी यहां बंगलौर में है। उनके साथ संगीतकार आये हैं या नहीं इसका आज रात पता लगाता हूं और उसे आपको सूचित करता हूं। इसके बाद, यहां वहा की बात कर आभार मानते हुए उनसे इजाजत ली। यदि कोई दूसरी अडचने न आई तो कल मैसूर जाना निश्चित किया है। देखना है आगे क्या होता है। पर्याप्त जानकारी मिलने की आशा तो है क्योंकि तंजौर एवं मैसूर दोनों ही संगीत के प्रसिद्ध शहर है। विद्यमानों में शेषण्णा को इस समय प्रथम स्थान पर यहां मानते है तथा उन्हें मैसूर के महाराज ने पिछले वर्ष "वीणा नायक शिरोमणि" यह उपाधि प्रदान की है।

मैसूर
३ जनवरी १६०५

मैं कल रात्रि १०.४५ की गाड़ी से निकला तथा यहां प्रात: ६.३० बजे आ पहुंचा। श्री टी. आनंदराव, रेवन्यू कमिश्नर के बंगले पर ठहरने की अच्छा व्यवस्था हुई है। यहां पहुंचने पर आनंदराव के गुमाश्ता को मेरे आने का मुख्य उद्देश्य बताया। उन्होंने कहा कि श्री आनंदराव ने उन्हें भी पत्र लिखा है कि आपको यहां दो प्रसिद्ध पुस्तकालय (पैलेस एवं ओरियन्टल) तथा शेषण्णा एवं सुभाण्णा नामक दो प्रसिद्ध विद्वानों से मिलवाना है। मैंने कहा. हां मुझे भी वही देखना है। मैं जब तजौर में था तब यह सुना था कि करवीर राव का नाम भी संगीत के लिये प्रसिद्ध है। अतएव उनके संबंध में गुमाश्ता से पूंछा उन्होंने भी यह बताया कि वे यहाँ बहुत प्रसिद्ध है। वे शास्त्र जानते है। बहुत अधिक क्रिया कुशल नहीं है। मुझे भी ऐसा ही व्यक्ति चाहिये था, अतएव बोरिया–बिस्तर वहां छोड़कर बिना कपड़े आदि बदलते हुए उन्हीं गुमाश्ता के भाई के साथ (उसे भी संगीत का थोड़ा सा शौक है) करवीर राव के दर्शन करने चल पड़ा।

रास्ते में कृष्णराव (उनके भाई का नाम) कहने लगे कि करवीर राव को अपने शास्त्र ज्ञान का बड़ा अहंकार है तथा वे शेषण्णा–सुभाण्णा को कुछ नहीं समझते। राजा उनसे नौकरी के संबंध में कह रहे थे परन्तु उन्होंने अपनी कुछ अजीब शर्तें रखी। संगीत में पड़े हुए सभी व्यक्ति उनसे घबराते है। यह सब सुनकर मैं बड़ा उत्साहित हुआ और ऐसी आशा जगी कि मुझे इस नगर में बहुत सी जानकारी मिल सकेगी। परन्तु प्रयत्क्ष में मुझे निराशा ही मिली। घटित हुई बातों से यह समझ में आवेगा।

हम दोनों लगभग आठ बजे उनके घर पहुंचे। उनके घर में टेबुल, कुर्सी का ठाठ–बाट दिखा तथा वे आधुनिक अभिरुचि के प्रतीत हुए। वे स्वयं बाहर गये हुए थे। अतएव हमने उनकी प्रतीक्षा करते बैठे रहने का निश्चय किया। उनके घर पर गरीब अंधे लड़कों को संगीत सिखाने की एक छोटी सी कक्षा है। उन्हें एक सनेत्र लड़का शिक्षा दे रहा था। वह राग 'दरबार' है ऐसा उस लड़के ने बताया। वह थोड़ा अपने सारंग की भांति लगा, उसमें कोमल "ग" व तीव्र "ध" थे। कुल मिलाकर चलन सारंग वर्ग का ही था। ऐसा लगता है कि यहां इस प्रकार के चलन के राग अधिक प्रिय हैं। थोड़ी देर में करवीर राव घर आये तथा कृष्णस्वामी ने उनसे मेरा औपचारिक परिचय करा दिया तथा उससे संबंधित आगत–स्वागत के प्रश्न हुए। उन्हें मैंने अपने आने का तथा उनसे मिलने का उद्देश्य बताया। बहुत प्रसन्न हुआ ऐसा कह कर मुझे जो चाहिये उसके संबंध में बोलने की स्वीकृति दी। हमारा सभाषण इस प्रकार हुआ :–

प्र. – श्री करवीर राव, क्या आपको संस्कृत आती है ?

उ. – साधारण काम चलाने लायक आती है।

प्र. – ऐसा कहते है कि मैसूर में संगीत के बड़े–बड़े विद्वान है। क्या बताएंगे कि यहां किस ग्रंन्थ को आधारभूत मानते हैं ?

उ. – संगीत रत्नाकर, (ऐसा कहकर पूना से प्रकाशित आवृत्ति का दूसरा भाग लाकर टेबुल पर रखा) मेरे पास झोले में भी एक प्रति थी।

प्र. – यह रत्नाकर क्या आपने पढ़ा है ?

उ. – हां !

सूचना :– इन सज्जन से लोग भय करते है, इसका कारण यह है कि उन्होंने रत्नाकर के अनेक श्लोक मुखस्त किये हुये है तथा वे उन्हें जब तब कहते रहते है। उदाहरणार्थ केवल श्रुति की बात चलते ही बाईस श्रुतियों के नाम रटने लगे। इसी प्रकार मूर्च्छना एवं ग्राम के भी श्लोक कहते गये। परन्तु इतने से ही उनसे भयभीत होने पर काम नहीं बनेगा।

प्र. – श्री करवीर राव ! रत्नाकर कहता है कि श्रुति २२ है (इतना कहते ही तीव्रा, कुमुद्वती, मंदा इत्यादि श्लोक रटना प्रारंभ कर दिया। पूर्ण श्लोक नहीं आता)

मैं – वह रहने दीजिय। नामें आपको ज्ञात होंगे। मेरा प्रश्न यह नहीं है। मैं यह पूछता हूं कि आपके द्रविड प्रदेश में क्या इन सबको व्यवहार में लाते है ?

उ. – अवश्य इस्तेमाल करते है।

प्र. – आपकी कौन सी पद्धति है ?

उ. – रत्नाकर की। जिसकी यह पुस्तक आपके सामने पड़ी हुई है। (यह देखकर कि मेरे ऊपर प्रभाव नहीं पड़ा) यह पुस्तक रत्नभंडार है ऐसा मैं समझता हूं।

मैं – समझदार के लिये !

प्र. – आपके यहां रागादि की रचना किस तत्व पर है तथा वे कौन से और कितने माने है ?

उ. – शुद्ध मध्यम के छत्तीस तथा प्रति मध्यम के छत्तीस हैं।

प्र. – रत्नाकर में वे कहां बताए है ?

उ. – (पुस्तक खोलकर और बंदकर) वह इस भाग में नहीं है।

(मैंने जब अपने झोले में रखे रागध्याय को निकाल कर सामने रखा तो वे चौंक गये और कहने लगे कि उसमें देखने पर आपको वे मिलेंगे। मैंने कहा कि जो आप कह रहे है वह उस पुस्तक की रचना नहीं हैं। अतएव उसमें एकदम नहीं मिल सकती।)

प्र. – अब रागाध्याय आपके सामने हैं। क्या इसके उपरान्त भी आप यह कहेंगे कि शुद्ध मध्यम एवं प्रति मध्यम के राग भेद रत्नाकर के है ?

उ. – नहीं। परन्तु मैं वह मानता हूं। तथा वह हमारी पद्धति है।

मैं – अर्थात् बहत्तर जनकराग अथवा मेलकर्ता की पद्धति ही आपके यहां है तथा उसे ही आप गाते है ?

उ. – हां ! परन्तु वह रत्नाकर की ही होनी चाहिये। मेरे पास रत्नाकर की प्रति पांडुलिपि में है। उसमें वह है।

प्र. – वह प्रति ले आइये तो ! देखे, उसमें वह कहां है।

करवीर राव घर से एक हाथ से लिखी हुई चोपड़ी लेकर आये और मुझसे कहा, मेरे पास अनेक विद्वान लोग चर्चा के लिये आते रहते है। परन्तु मैं उन्हें यह पुस्तक नहीं दिखाता। प्रथम तो ऐसे विषय में मुझसे कोई विवाद करता ही नहीं परन्तु आपने जब पूछा है तो अब दिखाता हूं। ऐसा कहकर मेल–नामों के श्लोक पढ़कर दिखाने लगे।

उनका अर्थ ऐसा है :-

गाल्व ऋषी का	=	कनकांगी मेल
देवभक्त का	=	रक्तांगी
बाण ऋषी का	=	गानमूर्ति
नित्यानंद का	=	वनस्पती
योगानन्द का	=	मानवती
भोगानन्द का	=	तानरूपी
इत्यादि		इत्यादि ।

यह प्रकार देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि ये बातें रत्नाकर में कैसे आ सकती है ? इन प्रत्येक मेल के स्वर शुद्ध ऋषभ, चतुःश्रुति इत्यादि इत्यादि कर्नाटक पद्धति के होते हुए भी संपादक की दृष्टि में कैसे नहीं आये । परन्तु आगे चलकर एक दूसरी बात प्रकट हुई । इन मेलों के शीर्षकों में कुछ लिखा हुआ था । उसे पढ़ने के लिये मैंने उनसे कहा तो 'नारदसूत्र' ऐसा प्रगटित हुआ । इस पर···

प्र. – क्यों साहब ! इस पर 'नारदसूत्र ऐसा क्यों लिखा है ?

उ. – यह उदाहरण वहां का है ।

मैं – रत्नाकर से नहीं है ?

उ. – नहीं । वह उन सूत्रों का प्रतीत होता है ।

प्र. – मुझे "नारदसूत्रों" का ग्रंथ दिखावेंगे क्या ?

उ. – मेरे पास नहीं है । इस पृष्ठ पर ये अठारह मेल इस प्रकार से स्वरों सहित तथा ऋषियों के नाम सहित लिखे हुए है । मुझे लगता है वह, ग्रंथ मैंने पैलेस पुस्तकालय में देखा था । वह अब जल गया है । यह तब हुआ जब महल जला था ।

प्र. – तो फिर क्या द्रविड़ अथवा कर्नाटक पद्धति नारदसूत्र पर आधारित है क्या ?

उ. – हाँ । इससे तो ऐसा लगता है ?

प्र. – बहत्तर मेल होते हुए आपके पास अठारह क्यों ?

उ. – मुझे लगता है ये बहत्तर अठारह से ही हुए होंगे । कारण अठारहवें में काकली निषाद इत्यादि बताया है । अतः इसके बाद और कोई संबंध स्थापित नहीं हो सका । (इस पर विचार करना होगा) ।

प्र. – परन्तु कनकांगी से पांच-छह नाम तो क्रम से ही दिखते है । यदि बीच-बीच में आये

होते तो आपके कहने पर विचार किया जा सकता था ?

उ. – जो कुछ हैं वह मैंने उस कागज पर लिख रखा है। आगे और कुछ था कि नहीं यह मुझे ध्यान में नहीं आता।

मैं – क्या आप मुझे इन दो पृष्ठों की प्रतिलिपि देंगे ? मैं अन्य स्थान पर खोजूंगा। मुझे अधिक पृष्ठ मिलने पर आपको लिख भेजूंगा।

उ. – हां। परन्तु आप मैसूर के महाराज से भेंट कर उनकी स्वीकृति लेंगे तो मैं दे सकूंगा।

मैं. – यह मैं समझा नहीं। आप तो एक स्वावलंबी और स्वतंत्र व्यक्ति है। महाराज के नौकर नहीं। ये पृष्ठ तो आपकी स्वयं की सम्पत्ति है तथा इनके संबंध में महाराज को कुछ भी मालुम नहीं है। तो फिर महाराज की स्वीकृति किस लिये यह मेरे समझ में नहीं आता। क्या महाराज का ग्रंथ आपने हस्तगत कर अपने पास रख लिया है ?

उ. – नहीं, नहीं ! मुझे ऐसा ही लगा कि इस कारण मेरी कीर्ति महाराज तक पहुंच जावेगी। इसी लिये ऐसा कहा।

मैं. – मुझे ऐसा करना शोभा नहीं देगा। मैं महाराज के पास जाकर यह कैसे कह सकता हूं कि एक स्वावलंबी व्यक्ति की किसी नीति पुस्तक से दो पृष्ठ मुझे दीजिये। यदि केवल कीर्ति की अपेक्षा है तो यहां के पैलेस अधिकारी श्री रामकृष्ण से मिलने जाने वाला हूं। उस समय संभाषण में आपके संबंध में कहूंगा।

करवीरराव – नहीं वह रहने दीजिये। आप इन कागजों की नकल चाहिए हो तो ले लीजिये।

प्र. – आपकी पद्धति में बारह श्रुतियों को व्यवहार में लाकर शेष का उपयोग करने के संबंध में क्या कहा है ?

उ. – वें उन्ही के अन्तर्गत होती है। "सा" की तीव्रा इत्यादि "सा" में ही विलीन हो जाती है। अतएव "सा" गाते समय 'नि' का स्पर्श उसमें रहता ही है। वे गुप्त श्रुति है। (श्लोक– "श्रुत्यनंतर भावी" इत्यादि, "अधराधर तीव्रा" इत्यादि, "द्वेवीणे सदृशेकार्ये" इत्यादि श्लोक कहने लगे) इस प्रकार की असंम्बद्ध बातें देखकर मुझे हंसी आ गई। परन्तु वे तो श्लोक पढ़े ही जा रहे थे। बीच–बीच में अनुदात्त, उदात्त, शब्द भी डालते थे। "अग्निमीडे पुरोहितं" यह भी आ गया।

मैं. – करवीर राव ! आप बोलने का बहुत कष्ट उठा रहे है। यह रत्नाकर का पहिला स्वराध्याय देखिये। (निकाल कर दिखाते हुये) इसमें आप कह रहे है वे सभी श्लोक है तथा उन्हें मैं समझ भी चुका हूं। ऐसा लगता है आपकी समझ में कुछ भ्रम हुआ है।

प्र. – रत्नाकर के सात शुद्ध स्वर कौन से ?

उ. – शुद्ध रे (कोमल), शुद्ध ग (अपना शुद्ध रि) इत्यादि।

मैं. – यह विधान गलत है यह आपके सामने रत्नाकर है। सिद्ध कीजिये। आपके शुद्ध स्वर देखूं। (मैंने जानबूझकर ऐसा पक्ष ले लिया था यह समझ में आवेगा ही।)

उ. – रत्नाकर में हमारे स्वर है। (अन्त का परिशिष्ट दिखाकर)

मैं. – यह रत्नाकर की अपनी रचना नहीं है। वह तो स्वरों की तुलनात्मक तालिका मात्र है। और वह संपादक ने स्वयं के बुद्धिविलास से तैयार की है।

प्र. – मूर्च्छना माने क्या ?

उ. – ("सा को लेकर मींड) प्रत्येक स्वर के लिये उदात्त, अनुदात्त व स्वरित ऐसी तीन अत-एव ७ × ३ = २१ हुई। परन्तु मैं कुल २३ मानता हूं। और यही मेरे पास एक श्लोक में कहा भी है। (पढ़कर) "आरोह श्चावरोहणंत्र, क्रमात्स्वराणाम्"

मैं. – मैं बड़े मजे में देख रहा हूं कि आप श्लोकों को फटाफट कहते जाते हैं और उनके अर्थ कुछ और ही करते हैं। "क्रमात्स्वराणाम्" यह श्लोक कहकर "उदात्त, अनुदात्त' समझाते है ? इस श्लोक का यह अर्थ किस ग्रंथ से लिया है ?

उ. – बिलकुल ठीक ही तो है। सात स्वरों में से प्रत्येक को क्रम से एक बार आरोह करने से "उदात्त" फिर अवरोहण अर्थात दूसरी "अनुदात्त", तथा कुछ भी न करने पर "स्वरित" इस रीति से इक्कीस होती है।

मैं. – उन श्लोक का यह अर्थ नहीं है। "सारेगमपधनी" नीपधमरेस यह एक संपूर्ण मूर्च्छना हुई ऐसा वहां कहा गया है।

उ. – कहा होगा, पर मैंने ऐसा अर्थ सीखा है।

प्र. – ग्रामों के संबंध में आप क्या समझते है ?

उ. – (हँसकर) मुझे लग ही रहा था कि अब आप यही पूछेंगे। "सतु नास्तीह भूतले" इत्यादि दो–चार श्लोक कहकर कहते हैं गांधार ग्राम अस्तित्व में नहीं है और यही नारद भी कहते है। परन्तु यह सब गलत है। मैं कहता हूं वे सभी मौजूद है। मेरे पास ऐसे श्लोक है जिनमें ऐसा कहा है कि षड्ज, मध्यम, गांधार ये तीनों ग्राम एक सप्तक में ही है "सरीमन्द्रे" इत्यादि श्लोक कहते हैं। सारी –गमप–धनी" ऐसे यह तीन ग्राम
1 2 3
मैं मानता हूं। दूसरा अर्थ ऐसा है कि "म" को "सा" करके गायन करने से "मध्यम-ग्राम" "होता है" "मपधनीसा = सारेगमप" यह मध्यमग्राम हुआ। "गमपधनी" = सारेगमप" यह गांधारग्राम हुआ।

प्र. – यह अर्थ कहां बताया गया है ?

उ. – मेरे पास ग्रन्थों के उद्धरण है।

मैंने देखा कि इन सज्जन को यहां वहां संस्कृत श्लोकों को ठूंसते रहने की आदत है। अतएव उन पर थोड़ा अटकाव डालने के विचार से बीच में ही एक ऐसा प्रश्न पूछा।

प्र. – श्री करवीर, रत्नाकर में "कपाल" बताये हैं। उनका अर्थ एवं उद्देश्य क्या है ?

उ. – कहां है वे ? (हाथ में पुस्तक लेकर) (मुझे स्पष्ट प्रतीत हुआ कि वे वहां तक पहुंचे ही नहीं थे। (वे पढ़ने लगे) "शुद्ध जाति सभुद्भूतानि कपालानि ब्रुवे" ("कपाल तथा उसके उपरान्त "ब्रुवे ये शब्द जोर से उच्चारण करते हुए सिर हिलाकर, भौंह को हाथ लगाते हुए) हां, हां, ब्रुवे; एकदम ठीक। कपाल और भौंह की उपमा दी हुई लगती है। यह देखकर सचमुच हंसी आयी। श्लोकों की सब गड़बड़ रुक गई और कहने लगे मैं यह सोचकर बताऊंगा। इसका अर्थ लगाना ही चाहिये। मैंने कहा मत लगाईये, दूसरा प्रश्न ही पूछ लेता हूं जिससे काम बन जायगा।

प्र. – "जाति प्रकरण" में तेरह लक्षण बताए हैं। उसमें "अन्तरमार्ग" का क्या अर्थ है ?

उ. – मुझे ज्ञात नहीं।

प्र. – जाति का क्या उपयोग है ?

उ. – ज्ञात नहीं।

प्र. – अंश व ग्रह इनका अर्थ एवं नियम क्या है ?

उ. – ऐसा एकदम नहीं बता सकता।

प्र. – ३५ तालों के श्लोक व अंग कहां मिलेंगे ?

उ. – ज्ञात नहीं।

धीरे-धीरे यह विश्वास हो गया कि ये संस्कृत श्लोक पढ़ते हैं, उनका मुखोद्गत पाठ करते हैं। परन्तु इनको संस्कृत नहीं आती तथा इन श्लोकों के सही अर्थ नहीं समझते।

प्र. – रागों के कुछ श्लोक कहिये देखे ?।

उ. – नहीं आते। आवश्यक हो तो "कनकांगी" इत्यादि मेलों के संबंध में मिल जावेंगे।

प्र. – "रागबोध" "परिजात" "दर्पण" इनमें से कोई देखा है ?

उ. – (भीतर से लाकर) हां। "गायकलोचन" तथा "भरतकल्पलता मंजरी" ये है।

मैं. – वे तेलगू में है और अभी–अभी ही छपी है। प्राचीन संस्कृत पुस्तकों के बारे में पूछ रहा था।

उ. – नहीं, मेरे पास कोई नहीं है।

प्र. – भाषा, अंतरभाषा, विभाषा का क्या अर्थ है ?

ये प्रश्न सुनकर वे मुझसे कहने लगे आप अपने प्रश्न मुझे कागज पर लिख कर देवें। मैं विचार करके उत्तर दूंगा।

मैं. – ठीक हैं, लीजिये। (बारह प्रश्न) सायंकाल आऊंगा।

उ. – ऐसे नहीं। मैं ग्रन्थ देखकर उत्तर लिखकर आपको डांक से भेजूंगा।

प्र. – कौन से ग्रन्थ, और उन्हें कहां देगें ?

उ. – यदि सरस्वती महल में हो तो देखूं।

प्र. – "दशविध" गमक के उदाहरण दीजिये।

उ. – मुझे दे सकना संभव नहीं है।

प्र. – "रागांग व राग, भाषांग व भाषा, राग व उपराग, क्रियांग व उपांग इन्हें पृथक–पृथक समझा दीजिये।

उ. – मुझसे नहीं बनेगा। इन विषयों में किसी ने कभी पूछा ही नहीं था अतएव मैंने उनका विचार नहीं किया। परन्तु "श्रुति" एव "मूर्च्छना" के ये चक्र तो देखिये। (दिखाकर) उन्हें निकाल कर गणित में मैंने बैठाया है।

मैं – इनको किसका आधार है ?

उ. – आधार नहीं बता सकता। परन्तु ऐसा कहा जा सकता है कि "नारदसूत्रों का"।

मैं. – करवीरराव, मुझे लगता है आपको रत्नाकर का "रागप्रकरण" समझ में नहीं आवेगा। कारण आपको "जाति प्रकरण" मालूम नहीं तथा संस्कृत स्वर सप्तक भी ज्ञात नहीं। राग की व्याख्या में मूर्च्छना का अर्थ भी चमत्कारिक रीति से करते हैं। खैर, आप धैवतादिक मूर्च्छना का अर्थ क्या करेंगे ?

उ. – धैवत स्वर लेकर उसको "उदात्त" "अनुदात्त" करुंगा। परन्तु इसका अर्थ मुझे ऐसा लगता है कि "ध" स्वर से प्रारंभ कर फिसलते हुए (करके दिखाते हुए) 'निसा' इस प्रकार का कृत्य करना है। किन्तु धैवत के नीचे नहीं जाना है, कारण "धैवतादिक"

कहा गया।

बाद में घर जाकर (कन्नड़ में) लिखा हुआ कागज का एक बंडल मेरे सामने रखा और बोले, यह देखिये मेरे पास एक पुस्तक छापने हेतु तैयार है। परन्तु मेरी कोई कदर ही नहीं करता। पिछले राजा को मैंने कहा था कि आप इसे छपवाइये परन्तु किसी ने बीच में नुक्का मारा जिसके कारण मेरी पुस्तक नहीं छपी।

प्र. – क्या संगीत शास्त्र जानने वाला यहाँ कोई दूसरा प्रसिद्ध है ?

उ. – नहीं। रत्नाकरादि ग्रन्थ किसी ने देखे भी नहीं।

प्र. – क्या "व्यंकटमरवी" एवं "चतुर्दण्डिप्रकाशिका" यह नाम सुने हैं ?

उ. – नहीं।

प्र. – क्या "मायामालव गौल" को अनादि काल से चला आ रहा प्रथम स्वर सप्तक समझते हैं ?

उ. – हाँ।

प्र. – मेलकर्ता में वह पंद्रहवां है। अतः यह पद्धति बाद में किसी न किसी ने रची है जिसमें उसका क्रम पंद्रहवाँ आ गया होगा। परन्तु रूढ़ि को स्वीकार कर मायामालव यथावत रह गया ऐसा आपको नहीं लगता क्या ?

उ. – यह नहीं बता सकता।

प्र. – आपके मेल पद्धति वाले संगीत के नियम किस पुस्तक (प्राचीन) में है ?

उ. – "गायकलोचन" "व" "भरतकल्पलता मंजरी" में।

मैं – यह तो अभी की पुस्तकें हैं। मैं प्राचीन व संस्कृत के बारे में पूछ रहा था।

उ. – वे मुझे नहीं मालूम।

प्र. – इस "गायकलोचन" में लघु, गुरू के मेरू लिखे हुए है। क्या मुझे समझाएंगे कि उसमें लिखी हुई संख्याएं किस प्रकार बनती है ?

उ. – मुझे वैसा कर सकना संभव नहीं होगा।

ताल के संबंध में चर्चा चलने पर प्रतीत हुआ कि चर्चा में उत्साह से भाग लेना अथवा प्रश्न पूछने में उन्हें कोई रुचि नहीं थी। हमारे सामने एक दो व्यक्ति और बैठे हुए थे। अतएव किसी बात पर उनके सम्मान को ठेस पहुंचाने वाले प्रसंग में उन्हें बुरा लगेगा ऐसा मान कर मैंने अपने प्रश्नों पर अधिक जोर नहीं दिया। दिलचस्प बात तो यह थी कि अमुक ग्रंथ आपने

देखा है क्या इस प्रश्न को स्पष्ट शब्दों में उत्तर देने में उन्हें बड़ा संकोच लगता था।

प्र. – क्या नंदी भरत आपने पढ़ा है ?

उ. – हां।

प्र. – उसमें तालों की जानकारी किस शैली से दी है। अर्थात् उस पुस्तक की रचना किस प्रकार से की है ?

उ. – याद नहीं आता। पढ़े हुए अनेक वर्ष हो गये।

आगे और कुछ पूछने लायक मुझे नहीं लगा ऐसा भी कह सकते है कुछ सूझा ही नहीं इधर करवीर राव भी कुछ थके हुए से दिखे अतएव भाषण रोक दिया। उठते–उठते मैंने कहा कि मैं संगीत ज्ञान की खाज में आया हू। यदि सायंकाल में बैठने की इच्छा हो तो पुनः आऊँगा तथा कुछ अन्य क्रियात्मक विषयों का चर्चा करेंगे। उन्होने कह दिया कि ऐसे विषय उनके तैयार नहीं है। इन्हें पढ़कर तैयार करने और उत्तर दे सकने के लिये इतना समय पर्याप्त नहीं है। आपके कतिपय प्रश्न मैंने लिख लिये है। उनके उत्तर मैं आपको डाक से भेजूंगा। (किंतु पता भी नहीं पूछा) इस प्रकार से कचहरी बर्खास्त हुई।

देखिये कितना आश्चर्य है। जो बात मालूम नहीं उसे स्पष्टतः स्वीकार करने में मनुष्य को कितनी कठिनाई होती है। इन सज्जन की ख्याति केवल संस्कृत शास्त्र की ??? कृष्णा स्वामी को भी आश्चर्यजनक लगा। ये सभी को भयभीत करते रहते। भन्नाटे से श्लोक कहते जाते। परन्तु उनके अर्थ इन्हें कौन पूछेगा ? यहां के बिचारे शौकीन लोग तो इतनी गहराई में नहीं जाते। उनके पास शंका निवारण हेतु वे गये भी तो शंका समाधान की इनकी रीति उपर्युक्त वर्णनानुसार है। ऐसे में क्या समाधान होने वाला है ? अतः इनके सामने चकित होकर वे कोई अनाकलीय महासुर है ऐसा लगना स्वाभाविक है। जो व्यावसायिक है वे बहुतांश अविद्वान होने से पुस्तकों की राह में पड़ेंगे ही नहीं। इसीलिये ऐसा लगा कि ये सज्जन अपने ही रंग में मस्त है। अब यह बात सच है कि उनसे मेरा वार्तालाप दुभाषिये के माध्यम से हुआ था। तथापि मेरे दुभाषि श्री कृष्णाराव अंग्रेजी अच्छी जानते है तथा उन्हें संगीत में अभिरूचि और थोड़ी बहुत समझ भी है। अतएव मुझे ऐसा नहीं लगा कि उनके साथ किसी प्रकार का अन्याय हुआ होगा। इस पर उनके उत्तर संतुलित लगने से मेरी यह धारणा बनी कि इन सज्जन की शास्त्रीय जानकारी अधिक सम्मान के लिये पात्र नहीं है। वे स्वयं एवं लोग भी कहते है कि क्रियात्मक कुशलता की दृष्टि से प्रशंसा करने लायक तो वे हैं ही नहीं। उन्होंने मुझसे पूछा कि बम्बई के अंधविद्यालय में संगीत विषय क्यों नहीं रखते। मैंने उत्तर दिया कि अच्छे स्तर की क्रमिक पुस्तकें व उन्हें पढ़ाने वाले आचार्य प्राप्त होने लगने पर वह भी होगा। परन्तु उसमें अभी समय है। बाद में साड़े ग्यारह बजे वापस घर आया।

भोजन समाप्त कर डेढ़ बजे यहां के ओरियन्टल पुस्तकालय में ग्रन्थ देखने गया। वहाँ की व्यवस्था मद्रास की ओरियन्टल लाईब्रेरी के अनुसार ही है। एक क्यूरेटर तथा पांच-छह।

लिपिक है। ग्रन्थों के सुन्दर "केटेलाग" बनाते है। कानडी, अंग्रेजी तथा संस्कृत में तीन भिन्न भिन्न "केटेलाग' हैं। तथा प्रकाशित ग्रन्थों के एवं पांडुलिपियों के पृथक-पृथक "केटेलाग" है। मैंने जाते ही प्रकाशित पुस्तकों का "केटेलाग' देखा। उसमें व्यंकटेश शास्त्री की पुस्तक एवं कुछ दूसरी तेलगू पुस्तकें थीं। पांडुलिपियों का "केटेलाग" देखने का विशिष्ट उद्देश्य था अतएव उसे देखकर संगत ग्रन्थों की सूची इस प्रकार से लिख ली।

ग्रंथसूची, गवर्नमेन्ट ओरिएन्टल लायब्रेरी, मैसूर

भरत ग्रंथा:

(१) अभिनवभरतसारसंग्रहः- मुंमडिचिक्क भूपकृतः- कर्नाटक लिपि में २½ तालपत्रों में।

(२) आदि भरतं - भरताचार्यकृत असमग्र, ग्रंथलिपि आंध्र,, ८५ पत्रों में, ८३ पत्र, असमग्र तालपत्रों में तालादिलक्षणम्।

(३) भरतसार संग्रह- चंद्रशेखरकृत, (कर्नाटक) ७७ पत्र, (कर्णाट ४५)

(४) संगीत चूड़ामणिः- हरिपाल महीपतिकृत (आंध्र) ५७ पत्र कर्णाटांध्र टीका

(५) संगीतमकरंद

(६) संगीतलक्षणदीपिका - गोरणार्यकृत (नागरी) ११ पत्र।

(७) संगीतलक्षणं [आंध्र] २६ पत्र।

(८) संगीत समय सार संग्रहः- पार्श्वदेव कृत [कर्णाट] ९६ पत्र

(९) स्वर प्रस्तार [कर्णाट] १२ पत्र।

[१०]स्वरमेलकलानिधिः- रामामात्यकृत्यः, ७ पत्र, उपोद्घात प्रकरण।

इतनी पुस्तके इस पुस्तकालय में हैं। इनमें से एक भी मैंने नहीं मांगी। उसका कारण यह हैं:-

(१) अभिनवभरत - यह पुस्तक प्रथम वाद्याध्याय से प्रारंभ होकर बाद में उसके उत्तरार्ध में स्वर एवं राग पर लिखी है। ये श्लोक लिपिक से पढ़वा लिये। ऐसा दिखा कि पूरी तरह रत्नाकर की नकल है परंतु रत्नाकर मे और अधिक विस्तार से है। प्रश्न इतना ही है कि क्या रत्नाकर ने उसकी नकल की है? परन्तु अत्यंत सुबोध शब्दों में ये तो अभिनव भरत" हैं तथा इसकी समग्र लिखावट वस्तुतः रत्नाकर की हो है। इनकी छपी हुई पुस्तक मेरे पास है।

(२) आदिभरतं-यह पुस्तक बम्बई में "निर्णयसागर" ने छाप कर प्रसिद्ध की है और वह मेरे पास है।

(३) भरत सारसंग्रह- यह ग्रंथ नृत्य कला पर है, जो मेरा विषय नहीं है।

(४) संगीत चूड़ामणि- इस ग्रंथ की नकल त्रिवेन्द्रम् के पुस्तकालय से प्राप्त करने बाबत मैंने प्रार्थनापत्र दिया है तथा वह मुझे मिलने ही वाली है।

(५) संगीत मकरंद– यह ग्रंथ कृत्य पर है तथा इसकी नकल मुझे तंजौर पुस्तकालय से मिली है। इसे मैंने गलती से ले लिया। इसका नाम देखकर मैंने लिया था परन्तु वह मुझे निरूपयोगी सिद्ध हुई।

(६) संगीत लक्षण दीपिका– यहां पर इसके केवल ग्यारह पृष्ठ है। लिपिक को अच्छी तरह पढ़ना संभव नहीं हुआ। परन्तु जो एक-दो पृष्ठ पढ़े उसमें स्वर राग के विषय में कुछ जानकारी नहीं थी अतएव इन विषयों पर होना ही चाहिये ऐसा प्रतीत हुआ।

(७) संगीत लक्षण– यह ग्रंथ पुस्तकालय में नहीं है। लिपिक का कहना है कि किसी को पढ़ने के लिये दी है, परन्तु ऐसा नोट किया हुआ नहीं है।

(८) संगीत सार संग्रह– इस ग्रंथ को प्राप्त करने के लिये मद्रास ओरियन्टल पुस्तकालय में अर्जी कर पैसे भी जमा कर दिये है। वह वहाँ से मिलने वाली ही है।

(९) स्वर प्रस्तार –
(१०) स्वरमेल कलानिधि –

ये दोनों ग्रंथ खो जाने से अब अप्राप्य है। यदि किसी को पढने के लिये दिये हों तो मालूम नहीं। कुल मिलाकर ऐसा कुछ हुआ। इसलिये लगभग चार बजे वहां से निकला। बंगलौर के श्री आनंदराव ने मुझे यहां के कंट्रोलर ऑफ पैलेस इस्टेब्लिशमेंट श्री रामकृष्ण राव के नाम से परिचय-पत्र दिया था तथा उसमें यह विशेष रूप से लिखा हुआ था कि मेरा उद्देश्य पुस्तकालय के ग्रंथ देखने का तथा संगीत पर वैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त करने का है। वह पत्र श्री रामकृष्ण राव से मिलकर देना था तथा उनसे वैसा अनुरोध भी करना था। अतः ओरियन्टल पुस्तकालय से सीधे फोर्ट में उनके कार्यालय में गया। भाग्य से उनसे भेंट हो गई। ये सज्जन अत्यँत सरल एवं परोपकारी है। उन्होंनें भली भांति आगत-स्वागत किया तथा सभी प्रकार से सहायता करना स्वीकार किया। सब पूछताछ की। उनसे मिलकर बहुत आनंद हुआ। ऐसा ही आनन्द श्री आनन्दराव से मिलकर हुआ था। श्री रामकृष्ण राव पैलेस के पदाधिकारी मुख्य कार्यवाहक होने के कारण समस्त सांगीतिक-संस्थापन उनके अधिकार में है। उन्होने मुझे बताया कि अभी महाराज प्रवास-यात्रा पर निकले है अतः इस अवसर का लाभ लेते हुए संगीतकारों ने अन्य नगरों में जाने के लिये स्वीकृति ले ली है। अतएव लगता है कि कुछ व्यक्ति बाहर गये हुए होंगे। तथापि जो नगर में हैं उन्हें आदेश भेजता हूं कि आज रात को आपके बंगले पर पहुंचकर आपको जो जानकारी चाहिये वह प्रदान करें तथा अपनी कला का प्रदर्शन करें। मेरे वहां पहुंचते ही उन्होंने पूछ-ताछ के लिये भेजा हुआ व्यक्ति लौट कर आया और बताया कि शेष्णा बाहर गये है, परन्तु ऐसा ज्ञात हुआ है कि सुंभाणा शहर में ही है। इसी प्रकार "वीणा सुंभराव", "सेतुराव वैणिक" व "शामणा वैणिक" भी नगर में ही है। इस पर रामकृष्ण राव ने उन्हें आदेश भेजा और कृपापूर्वक मुझे एक नोट लिख दिया जो इस प्रकार है –

"पैलेस के संगीतज्ञ एवं गायक पंडित सुभाणा एवं सेतुराज श्री वी. एन. भातखण्डे से भेंट करने आज सायंकाल श्री टी. आनंदराव के घर पर जावेंगे। पंडित कृष्णा आयंगार को

सूचित किया जाता है कि कल प्रात: ८ बजे जगमोहन पैलेस के सरस्वती भंडार में उपस्थित रह कर भंडार की संबंधित पांडुलिपियां महानुभाव को दिखावें।

३-१-१९०५

हस्ताक्षर- बी. रामकृष्णराव
पैलेस अधिकारी, मैसूर

यह नोट लेकर आभार मानकर पांच बजे के उपरान्त घर आया। शहर भी घूम कर देखा। वह बहुत ही मनोरम है। मार्ग चौड़े एवं स्वच्छ है। शासकीय भवन अच्छे देखने योग्य है। अस्तु।

सायंकाल में साढ़े सात-आठ बजे श्री वीणा सुभराव और सेतुराव अपनी-अपनी वीणाएं लेकर आये। उन्होंने उत्तम रीति से बजाकर दिखाया। किन्तु सुभाणा नहीं आये। वे जागीरदार है एवं सुखी है। एक घंटे तक वादन होने के उपरान्त मैंने शास्त्र के संबंध मे तथा यहां की कर्नाटक पद्धति के संगीत सिद्धांतों के संबंध में प्रश्न पूछे। इस पर इन दोनों सज्जनों ने खुले मन से बताया कि वे परंपरा से सीखे हुए है। राजाश्रय है, खा पीकर सुखी हैं। वे केवल क्रिया कुशल वादक है। तथा जो अच्छा बुरा आता है वह आपने सुना ही है। ग्रन्थ अथवा विज्ञान के खटाटोप में हम कभी नहीं पड़े। यह सच है कि यह बहुत उपयोगी एवं आनन्ददायक विषय हैं तथा हम व्यवसायिक लोगों को उसकी जानकारी अवश्य होनी चाहिए। परन्तु इस विषय के जानकार इस क्षेत्र में कोई नहीं है तथा हमें यह विषय किसी ने सिखाया भी नहीं। उन्होंने स्फुरित, प्रत्याहत, ढालू, मोठं, विवर, इत्यादि यहां प्रचलित गमक के प्रकार वीणा पर दिखाये। वीणा अच्छी बजी। मुझे सुनकर बहुत आनन्द हुआ। मुझे उन्होने यह बताया कि यहां के सभी संगीतज्ञकार केवल क्रियाकुशल है। शेषणा एवं सुभाणा भी उनमे से ही है। शेषणा का वादन हमारी अपेक्षा अधिक कुशलता का हो सकता है, परन्तु ढंग यहीं है। सुभाणा अपने वादन में कुछ हिन्दुस्तानी ढंग भी लेते है, अतएव उनकी कुछ अधिक प्रशंसा है। वे बहुत बुद्धिमान है। शेषणा अधिक तैयार है। सुभाणा को अधिक जानकारी है ऐसा मानते है। वह कुछ भी हो। शास्त्र व ग्रन्थ इत्यादि उन्हें भी नहीं आते। हमारे शहर में करगीर राव इस विषय में कुछ कुछ बातें बताते रहते हैं। उन्होने यदि आपको जानकारी दी तो कह नहीं सकते। शामना नामक एक वैणिक है, परन्तु वे भी हमारे जैसे ही है। ऐसा सुनते है कि तजौर की तरफ तथा दक्षिण की ओर इस विषय की चर्चा अधिक है। कहते है आपके बम्बई के लोग बड़े शोधक हैं। अतएव ऐसा संभव नहीं लगता कि आपको व्यावसायिकों के पास से शास्त्रीय जानकारी मिल सकेगी।

मुझे उनका प्रामाणिक भाषण सुनकर संतोष हुआ। जब यह भाषण चल रहा था तब सिटी मजिस्ट्रेट श्री एन. व्यंकटराव भी वहां उपस्थित थे। उन वैणिको ने उनके ही सामने यह सारी बातें कही। श्री व्यंकटराव को इन विषय में मेरा उत्साह देखकर आश्चर्य हुआ। वे भी बड़े सभ्य एवं स्नेहार्द्र व्यक्ति हैं। उन्होंने मुझे बताया कि इस नगर मे एक अवकाश प्राप्त बड़े व्यक्ति गोविन्दाचार्य नाम से हैं। उन्होंने मेरे ही सदृश्य बहुत दिनों तक इस शास्त्र पर परिश्रम किये हैं। मैं उनके पास आपको कल ले चलूंगा। मैंने उनके बड़े आभार माने तथा कल उनके

आकर्षण के बिन्दु :–

वीणा शेषण्णा, मैसूर

साथ वहां जाने का विचार किया है। अस्तु; बड़े आनंद में दिन बीत गया। उल्लेख करने योग्य जानकारी भर कुछ नहीं मिली। अच्छा दिलबहलाव हुआ।

मैंसूर
बृहस्पतिवार, ४ जनवरी १९०५

निश्चयानुसार आज प्रातः आठ बजे उठकर सरस्वती भंडार में पांडुलिपियां देखने गया। पर वहां तो एकदम निराश हुआ। वहां केवल दो ही ग्रन्थ है। (१) अभिनय दर्पण और (२) संगीत रत्नाकर। इनमें से प्रथम की मुझे आवश्यकता नहीं थी और दूसरा मेरे पास है। फलस्वरुप वहां से सिर्फ पंद्रह मिनट में लौट आया। आज दोपहर में ही बंगलौर जाने के लिये निकलने वाला था तथापि श्री व्यंकटराव के साथ गोविंदाचार्य के यहां जाना है, और शायद सुभाषण एवं शामना से भेंट हो जावे, इस आशा से रुक गया। रात्रि में निकलने वाला हू। साथ के सभी साथी बंगलौर में रुके हैं तथा वे भी अकेले हैं।

'पुनः रामकृष्णराव'

सुबह लगभग १० बजे श्री रामकृष्णराव मेरे घर आये तथा उन्होंने बताया कि उन्हें महाराज के निजी महल में हाथों से लिखी हुई दो पांडुलिपियां दिखी जिसे मुझे दिखाने के लिये वे ले आये हैं। इनका उपयोग यदि होता होगा तो उनकी नकलें करवा कर मुझे भेजेंगे। पढ़ने के लिये उन्होंने साथ में लिपिक भी लाया था। उसने पहला ही श्लोक जो पढ़ा वह था "गंगाधर-स्तिलक" भैरव का था। बाद में भैरवी का पढ़ा वह "स्फटिकरचित पीठे-कैलास श्रंगे" ऐसा था। इस पर मुझे स्पष्ट हुआ कि यह भाव "संगीतदर्पण" से लिया गया है। मैंने "दर्पण" खोलकर आगे के श्लोक पढ़कर सुनाये। उस पर लिपिक ने कहा कि उस हस्तलिखित में ठीक ऐसा ही है। अतएव उस पुस्तक की आवश्यकता मिट गई। उस पुस्तक में प्रत्येक राग व रागिनी के श्लोकों के नीचे चित्र निकाले गये थे। आधी पुस्तक "नायक-नायिका" के लक्षणों से भरी हुई थी। उसे भी चित्रों के उदाहरणों से समझाया था। कुछ चित्र तो वीभत्स भी थे। अस्तु। दूसरी पुस्तक यहां के बहत्तर मेलों की थी। उसमें मेलों के आरोह एवं अवरोह लिखे हुए थे। कुछ जन्य रागों के आरोहावरोह भी थे। इस पुस्तक का नाम "संगीतरत्न माला" दिया हुआ था। ये आरोह अवरोह मेरे पास थे। अतएव वह पुस्तक भी मेरे उपयोग की नही थी। यहां वहां की गपशप के उपरान्त श्री रामकृष्णराव गये।

"गोविन्दाचार्य के साथ चिन्नुस्वामी की व्यथा कथा"

वायदे के अनुसार दोपहर में श्री व्यंकटराव सिटी मजिस्ट्रेट के यहां गया तथा वहां से ए. गोविन्दाचार्य भूतपूर्व कार्यपालन यंत्री मैंसूर के घर गया। यह ज्ञात हुआ कि इन सज्जन ने कुछ वर्ष पूर्व संगीत में सक्रिय अभिरुचि दिखाई थी। बाद में उनमें रुचि परिवर्तन होकर वे थिआसोफी की ओर मुड़े तथा आज भी थिआसोफिस्ट है। अच्छे विद्वान है। मेरे कार्य का

उन्होंने अभिनन्दन किया तथा शोध करते रहने के लिये कहा। उनके घर में उपलब्ध संगीत की पुस्तकें उन्होंने मेरे सामने रखी। उनमें से टैगोर द्वारा लिखित "संगीत सार संग्रह" केवल मेरे पास नहीं था। सुदैव से उनके पास दो प्रतियां थीं, जिनमें से एक मुझे भेंट दे दी। मैंने उनसे पूछा कि आपने संगीत में कौन-कौन से ग्रन्थ पढ़े हैं। उन्होंने कहा कि उन्हें कोई भी ग्रन्थ अच्छी तरह समझा नही था। उचित समय पर मदद न मिलने से वह रूचि समाप्त हो गई। उसे भी बहुत वर्ष हो गये। चिन्नु स्वामी मेरे मित्र थे। उस समय स्टाफ नोटेशन में अपने संगीत को कैसे बैठाना तथा कौन से निश्चित करना इस संबंध में उन्होने यथेष्ट परिश्रम किये। बाद में उनकी आर्थिक हालत खस्ता हो जाने से सभी कुछ पीछे छुट गया। चिन्नु स्वामी के विषय में उन्होंने एक बात बताई। वह यह कि "गोविन्दराव (आचार्य) के यहां" ओरियंटल 'म्यूजिक" की कुछ प्रतियां बेचने हेतु रखी थीं। परन्तु उन्हें कोई खरीदता न था। लोगों में शास्त्र की रुचि नही थी। अंततः चिन्नु स्वामी ने गोविंदराव से कहा कि उन प्रतियों को अच्छे व्यक्तियों तथा पुस्तकालयों में भेंट के रुप में दे दीजिये। गोविन्दराव ने वह अपने घर में यूं ही रख छोड़ी थी। एक दिन चिन्नुस्वामी के पत्र का स्मरण आने पर वे लिपिक के पास विभिन्न स्थानों पर प्रतियों की पार्सलें बांधते हुए बैठे थे। इतने में ऐसा चमत्कार हुआ कि चिन्नुस्वामी स्वयं आकर गोविन्दराव के दरवाजे पर खड़े हो गये तथा देखने लगे कि उनकी पुस्तको को रवाना किया जा रहा था। वे यह देखकर हाथ जोड़कर बोले कि गोविन्द राव ये पुस्तके मत भेजों। उनकी बिक्री से कुछ दिन तक तो मेरा चरितार्थ चल सकेगा। सांराश,वह पुस्तकें जिस कीमत पर भी सभव हुआ धीरे-धीरे बिकीं और सौ, दो सौ रुपया जो आये उन्हें लेकर चिन्नुस्वामी गये। चिन्नुस्वामी एम. ए. थे तथा अति बुद्धिमान थे तथा उन्होंने अपना सर्वस्व इस छापने-छपवाने मे लगा दिया। परन्तु उनकों यश नहीं मिला तथा निराश अवस्था में उनका देहान्त हो गया।

"सामगान की तलाश"

यह बात सुनकर हम सभी को बुरा लगा। उसके उपरान्त वेद एवं वैदिक संगीत की बात निकली। इस पर उन्होंने कहा इस नगर में कृष्णा आयंगर नामक एक ब्राह्मण सामवेद के बहुत अच्छे गायक हैं तथा इस नगर में उनकी बहुत प्रशंसा है। मैंने कहा मैं उन्हें सुनना चाहता हूं। इस पर हम तीनों (अर्थात् गोविन्दराव और एक प्रोफेसर इनके नाम का कागज खो गया) उन आयंगार के घर गये। रास्ते में जाते समय प्रोफेसर महोदय बोले कि इस नगर में "सुन्दर शास्त्री" नामक एक संगीत शिक्षक कन्या शाला में है। वे भी संगीत ग्रन्थ पढ़े हुए है ऐसा कहते है। सुदैव से उनके घर जाते समय वे शास्त्री जी मार्ग में ही मिल गये। हम उन्हें अपने साथ लेकर श्री आयंगार के घर गये। वे भी मिले। परन्तु जब मैं पहुंचा तब वे बाहर गये हुए थे। उन्हें बुलवा लिया। उनकी प्रतीक्षा करते समय श्री सुन्दर शास्त्री से कुछ प्रश्नोत्तर हुए, वे इस प्रकार है :-

- सुन्दर शास्त्री से वार्ता -

प्र. - बुबा, आपने संस्कृत ग्रन्थ पढ़े हैं, ऐसा सुनता हूं। कौन-कौन से पढ़े है ?

भातखण्डे जी के आदर्श

ए. एम. चिन्नास्वामी मुदलियार

उ. – "रत्नाकर" पढ़ा है। रागबोध का कुछ अंश तथा थोड़ा "परिजात" का अंश भी देखा है।

प्र. – रत्नाकर के रागाध्याय का एक राग आपके सामने रखा तो क्या आप उसे गा सकेंगे ?

उ – हां !

मैं – (थैली से पुस्तक निकाल कर सामने रखकर बोला) यह लिजिये पहिला ही राग "शुद्ध साधारित" इसे कहिये, देखें। मैंने पुस्तक सामने करते ही गड़बड़ाते हुए बार–बार श्लोक पढ़ने लगे। परन्तु गाना नहीं बन रहा था। इस पर मैंने कहा, शास्त्री बुवा, इसमें "षड्जादि" मूर्च्छना कही गई। इसका उपयोग क्या है तथा वह कैसी है यही पहिले गाकर दिखाइये।

उ. – 'क्रमात्स्वराणां" ऐसे प्रकार को मूर्च्छना कहा गया है।

मैं – ठीक है। हां, तो फिर रत्नाकर के सात शुद्ध स्वर कौन से वह कहिये। बाद में व्याख्या के दूसरे अंश देखेंगे।

उ. – "चैतुश्चतुश्चैव" आदि होने से ये सभी प्रकार मैं वीणा पर दिखा सकता था।

मैं – आपको तो गले से गाना आता है। आप संगीत शिक्षक है,मुझे स्वर समझते है और आपके कर्नाटकीय नाम भी ज्ञात है। आपके यहां यह "क्रोमेटिक स्केल" है। (बारह स्वरों का आरोह–अवरोह करके दिखाकर) अब यह बताइये कि उनमें से "षड्जादि मूर्च्छना" के लिये कौन से स्वर लेना है। रत्नाकर के स्वर नामों को छोड़िये परन्तु आपकी पद्धति के नामों से बताने पर भी मैं समझ सकूंगा। (करहर प्रिया, शकराभरण, मायामालव के स्वर सप्तक गाकर) रत्नाकर का शुद्ध स्वर सप्तक क्या इनमें से है ? अथवा क्या इसके आस–पास वाला भी है ?

उ. – मैं यह नहीं कह सकता।

प्र. – तो फिर अन्य मूर्च्छनाएं जैसे "धैवतादिक मूर्च्छना" आदि किस लिये बताई है यह भी आप नहीं बता सकेंगे।

उ. – नहीं।

मैं – जब आप यही नहीं जानते कि रत्नाकर के शुद्ध स्वर कौन से है तो फिर उसमें से कैसे गा सकेंगे यह मेरे समझ में नहीं आता।

उ. – मैं स्वीकार करता हूं कि मुझे गाना संभव नहीं है।

प्र. – श्रुति की रचना कैसी व क्यों करनी है यह भी तो आप नहीं बता पाएंगे।

उ. – श्लोक समझता हूं परन्तु उसका उपयोग नहीं मालूम।

प्र. – "रागबोध" के स्वरों में आपको कोमल "रे" "ध" दिखा क्या ?

उ. – नहीं ! यही तो बड़ी कठिनाई है। इसी कारण "रत्नाकर" में अटक गया। कतिपय स्वर ही नहीं मिलते।

प्र. – गांधार ग्राम इस भूतल पर क्यों नहीं है ?

उ. – मुझे लगता है कि उसकी वह श्रुति रचना करते हुए उत्पन्न होने वाले राग गायन के लिये कठिन तथा सुनने में कटु लगे होंगे।

प्र. – क्या आपकी कर्नाटक पद्धति के लिये कोई संस्कृत ग्रन्थ है ? क्या आपने उन्हें पढ़ा है ?

उ. – नहीं, मुझे नहीं मालूम तथा मैंने उन्हें पढ़ा भी नहीं है।

प्र. – क्या रागांग, भाषांग इत्यादि की जानकारी है ?

उ. – नहीं।

प्र. – "जाति प्रकरण" ज्ञात (आवश्यक) है क्या ?

उ. – नहीं।

प्र. – आपका संगीत किस आधार से गाया–बजाया जाता है ?

उ. – परंपरा से सीखकर तथा तेलगू पुस्तकों में दी हुई जानकारी के अनुसार.

श्री कृष्ण आयंगार से – सामवेद पर चर्चा

इतनी बातचीत हुई कि इतने में श्री आयंगार आये और बाद में सामवेद संबंधी भाषण में लग गया। दुभाषिये की सहायता लेता रहा।

मैं – मैं सुनता हूं कि "नारदी शिक्षा" में वेद कैसे गाया जाय आदि बातों की जानकारी दी हुई है। क्या यह सच है ?

श्री आयंगार – हाँ ! यह सच है।

प्र. – क्या आप वैसा गाते है ?

उ. – हां !

इसके उपरान्त वे 'नारदी शिक्षा' से श्लोक कहने लगे तथा हाथ कैसे रखना चाहिये, अंगुलियां कैसे रखनी चाहिये, यह समझाने लगे। "नारदी शिक्षा" का मैं प्रथक भाषांतर कर नहीं रखता। परन्तु उसमें महत्व के श्लोकों में सप्त स्वरों के नाम तथा मिलते–जुलते वैणिको के स्वर कौन

से हैं– इतना ही था । कैसे गाने से क्या फल होगा इत्यादि बातें महत्व की नहीं है । इसके उपरान्त "साम" गाने लगे । हाथों से संकेत दर्शाकर कह रहे थे । "गायन में सोहनी" के सप्तक के द्वितीय अर्धचतुष्क के स्वर थे । एक ऐसा आश्चर्य देखा, लगभग छः माह पूर्व हमारे क्लब में "कठियावाड़" अथवा "सिद्धपुर" स्थान के एक सामवेदी ब्राम्हण को मैंने सुना था । इसी प्रकार और एक दूसरा "सामवेदी" (स्थान नाम याद नहीं) भी सुना था । इन सभी के गायन में "सोहिनी" के ये ही स्वर थे । "सानीध में धनीसां" यही प्रकार था । ऐसा क्यों इसका विचार करना चाहिये । आयंगार ने बताया कि हमारे सपूर्ण दक्षिण में "साम" को ये ही स्वर लगाकर गाते हैं । यद्यपि ऊंची आवाज में गा रहे थे परन्तु केवल ऊंचे स्थान पर आधार स्वर कायम करते हुए सप्तक के ठीक वे ही स्वर प्रयुक्त कर रहे थे । आधार स्वर भिन्न–भिन्न लेते हुए उन्होने अनेक प्रकार से गाकर दिखाया तथा उसमें "हौ हौ" इत्यादि शब्द प्रयुक्त करते थे । उन्होंने कहा विभिन्न देवताओं के विभिन्न अक्षर है । "हौ" यह वायु देवता के लिये है । 'अनुदात्त" उदात्त" इत्यादि नाम सात स्वरों के पर्याय शब्द नहीं है । परन्तु वे "सामान्य वाचक" है । अर्थात किसी भी "ऊंचे स्वर को उदात्त स्वर कहेंगे । नीचे के स्वर को "अनुदात्त" कहेंगे तथा बराबर के स्वर को "स्वरित" कहेंगे । इस प्रकार "सामगान" सुनकर रात के आठ बजे घर लौटा । घर आकर देखता हूं कि महल के गायक सुभाण्णा, वीणा सुबराव (फल वाले नहीं) एन. व्यंकटराव तथा अन्य दो तीन सज्जन बैठे हुए थे । सुभाण्णा को रामकृष्णराव ने आदेश दिया था । अतएव वे बहुत देर से आकर बैठे हुए थे । वीणा लाई हुई नहीं दिखी । मेरे पास थोड़ा समय बचा था । कारण मैं ९.३० की गाड़ी से निकलने वाला था । सुभाण्णा की वीणा नहीं सुनी । उनको शास्त्र का ज्ञान नहीं है यह सेतुराव ने बताया ही था अतएव उनसे कुछ अधिक नहीं पूछा और समय भी नहीं था । प्रश्नोत्तर इस प्रकार हुए :–

प्र. – आपके पास ग्रन्थ है ऐसा कहते हैं ?

उ. – हां गाड़ी भर है ।

प्र. – एक–दो नाम लीजिये ?

उ. – वह कैसे कहूं ? मैंने एक–दो ही लाये हैं । वे तेलगू में "भरत कल्पलता मंजरी" तथा शिंगराचार्य की क्रमिक पुस्तक मालिका थी ।

मैं. – मुझे इस प्रकार की पुस्तकों से संतोष नहीं होगा । मेरा शोध भिन्न दिशा में है । मुझे संस्कृत अथवा बहुत प्राचीन हो तो तेलगू ग्रन्थ देखने हैं ।

उ. – मेरे घर में पिता जी के संग्रह में है । उन्हें मैंने आज यहां नहीं लाया । (यह उत्तर मुझे झूठा लगा, कारण रामकृष्णराव का व्यक्ति उनके साथ था और उसने उन्हें बताया था कि मैं संस्कृत ग्रन्थ देखना चाहता हूं ।)

मैं. – ठीक है, न लाये हों । आपके पास जो संस्कृत ग्रन्थ है उनके कुछ नाम तो लीजिये । उनमें कौन से उपयोगी होंगे यह मैं देखूंगा ।

उ. – ऐसा मुझे जुबानी कह सकना संभव नहीं है। घर में रखे हुए हैं। मैंने उन्हें ध्यानपूर्वक नहीं देखा है।

मैं. – आपको समय नहीं, इसका उपाय नहीं है।

यह सुनकर हमारे सीधे–सादे यजमान श्रीनिवासराव मुझे कहने लगे, आज की रात आप रूकिये न ! कल सुबह सुभाण्णा आपको ग्रन्थ दिखायेंगे तथा जानकारी भी देंगे। मुझे यह सब ढोंग लग रहा था। अतएव मैंने उनसे कहा कि आप सुभाण्णा से पूछिये कि यदि मैं आज रहूं तो क्या कल सुबह वे ग्रन्थ दिखावेंगे ? उन्होंने तदनुसार पूछा जिस पर सुभाण्णा बोले, कि ऐसा करना कठिन होगा। उनके घर में प्लेग की एक घटना हो जाने के कारण, ग्रन्थ ढूंढना पड़ेंगे। उन्हें अच्छी तरह ढूंढ सकना संभव नहीं है। उससे हम दोनों समझ गये कि उनका ढोंग खुल गया है। परन्तु बाद में श्रीनिवास राव और कृष्णराव दोनों ही बोले कि इनके भरोसे ठहरने में लाभ नहीं होगा। सुभाण्णा ने मुझसे कहा कि आप जो कह रहे हैं वह मुझे लिख देना मैं लिख-कर उत्तर भेज दूंगा। (मुझे वह भी झूठ लगा) परन्तु नमूने के रूप में एक–दो प्रश्न पूछे, वे इस प्रकार है :–

प्र. – आपके ७२ मेल किस ग्रन्थ में बताए है ? वर्तमान तेलगू पुस्तकों के नाम नहीं चाहिये। संस्कृत ग्रन्थों के नाम कहिये।

उ. – वह बता नहीं सकता।

प्र. – क्या "रत्नाकर" में मेल है ? वे कौन से हैं और कितने ?

उ. – यह याद नहीं।

प्र. – क्या व्यंकटमरवी अथवा चतुर्दण्डिप्रकाशिका" ये नाम सुने हैं ?

उ. – पहिला नहीं। दूसरा सुना है।

प्र. – दूसरा किस विषय के संदर्भ में सुना है ? "चतुर्दण्डि" का क्या अर्थ है ?

उ. – याद नहीं आता।

प्र. – क्या "जाति" मालूम है ?

उ. – नहीं

प्र. – "भाषांग" एवं "उपांग" का क्या अर्थ है ? वे कैसे होते हैं ?

उ. – लक्षण याद नहीं।

प्र. – आपके मेल क्या "रत्नाकर" के अनुकूल है ?

उ. – याद नहीं।

उन्हें ग्रन्थों की जानकारी नहीं थी। उनसे प्रश्न पूछते रहना शोभा नहीं देगा, अतएव ठहर गया। वे बोले कि आप अपने प्रश्न लिख दीजिये तो मुझे विचार करना संभव होगा। मैंने कह दिया कि मैं बम्बई से भेजूंगा। परन्तु इसमें कोई मतलब नहीं है। उनको शास्त्र की जानकारी नहीं लगती। ये क्रियाकुशल वैणिक है। आचार व्यवहार में दक्ष हैं क्षुल्लक कृति को फुलाकर बताना इनको सध गया है। महाराज के साथ प्रवास किये हुए होने से उत्तर का रंग-ढंग समझे हुए है। वे हिन्दुस्तानी राग गाते और बजाते है ऐसा सुना है। उन्हें तिलंग राग हिन्दुस्तानी ढंग से गाकर दिखाया तथा बताया कि "धैवत" लगाकर अशुद्ध कर डालते है। किन्तु जो नकल उन्होंने सुनायी वह तो चतुर्थ श्रेणी की थी। मैंने उन्हें गाकर दिखाया तथा खमाज कहाँ व कैसे होता है यह करके दिखाया। एकत्रित व्यक्तियों को मेरा ही पसद आया। सुभाण्णा हिन्दुस्तानी गायकों के विरूद्ध बोलने वाले थे कि इतने में मैंने उन्हें स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मैं हिन्दुस्तानी गायन का प्रशसक हूं। वह संगीत यहां के संगीत से ऊपर की सीढ़ी का है। उसमें कसब, सौन्दर्याभिव्यक्ति, कलात्मक माधुर्य तथा अन्तःकरण पर प्रभाव उत्पन्न करने की शक्ति अधिक है। आपके आरोह-अवरोह के अनुबन्ध श्रेष्ठ है परन्तु गायन की रीति, उगलियों पर मात्रा गिनने की रीति, और उन्हीं संकेतो मे सदा जकड़े रहने की उसके इशारे पर चलने की रीति में विशेष खूबी कुछ भी नहीं है। ये बातें कारणों सहित सिद्ध करके दिखायी। और कहा कि यहां के गायको को खुले मन से हिन्दुस्तानी स्वरालंकार ग्रहण करने चाहिये तथा उनमे अपने नियम लगाना चाहिये। फिर सुभाण्णा कहने लगे कि वह अच्छा ही है। हमारे यहां जो गायक आते हैं उनका गायन हम सुनते है। हमको वह अच्छा लगता है। हम उसकी विशेषताओं को भी ग्रहण करते है।

सुभाण्णा ने अपने घर की पुस्तकों का कैटेलाग बनाकर मेरे पास भेजना स्वीकार किया है। वह मेरे पास आ जाने पर मैं अपने प्रश्न उनको लिखकर भेजूंगा। नहीं तो अण्णा घारपुरे साहिब के प्रश्नों जैसा हो जावेगा। मुझे उस "केटेलाग" की आवश्यकता बहुत अधिक नहीं है। अतएव मैंने उनसे कहा कि इस प्रवास में अध्ययन किये हुए बुद्धिमान पंडित अकेले सुब्राम दीक्षित ही मिले। वे बहुत उत्तम व्यक्ति हैं। सुभाण्णा ने उनका पता लिखा लिया। मैंने उनसे यह भी कहा कि संभव हुआ तो "चतुर्दण्डि प्रकाशिका" ग्रन्थ प्राप्त कीजिये। इसके उपरान्त एक दूसरे से भेंट करने संबंधी प्रश्न होकर मैसूर प्रवास समाप्त हुआ। रात्रि ९.३० की गाड़ी से घर जाने हेतु निकला। मार्ग में पूना में उतर कर बनहट्टी से भेट की। ये सज्जन संगीत विषय में बड़ी आशा रखते हैं ऐसी उनकी प्रसिद्धि सुनी थी। मैं, कुछ प्रश्न मूर्च्छना विषयक पूछने वाला था। परन्तु पहिले ही प्रारंभिक वार्तालाप में ऐसा दिखा कि उनके पास उपयुक्त जानकारी मिलना संभव नहीं है अतएव शीघ्र ही उनसे स्वीकृति लेकर सभी साथियों के साथ कुशलतापूर्व बम्बई में घर पर आ पहुंचा।

लेखमाला-जिज्ञासुओं के लाभार्थ –

इस प्रवास में मुझे अत्याधिक आनंद हुआ यह पृथक रूप से कहने की आवश्यकता नहीं। उपर्युक्त घटनाएं लिख रखने का मेरा उद्देश्य इतना ही है कि मेरे समान कोई दूसरा संगीत में रूचि रखने वाला विद्यार्थी दक्षिण की ओर जानकारी एकत्रित करने हेतु गया तो उसे सहायता स्वरूप कुछ मदद मुझसे मिल सके। यह स्पष्ट है कि नये व्यक्ति को नये स्थान में जाकर जानकारी एकत्रित करने में बहुत समय लगेगा। अतएव इन लेखों को पढ़ने से उसका कुछ समय बच सकेगा। इस आशा से इसे लिख रखने की मन में इच्छा हुई। मेरे मित्र रतनसी, वहां जाने की योजना बना रहे है। उस समय उनको भी यह जानकारी उपयोगी होगी, यह समझ कर उसे लिखना प्रारंभ किया। यदि यह मेरे किन्हीं अन्य मित्रों के उपयोग में आ सकी तो मुझे विशेष आनंद होगा और यह समझूंगा कि लिखना सार्थक हुआ।

एक टिप्पणी– रत्नाकर से एक वाक्यता कैसी हो। मेरे प्रवास का सार इस प्रकार बताया जा सकता है कि अभी भी दक्षिण में इस विषय की पर्याप्त चर्चा है। उसे कुछ हद तक ग्रन्थो से जोडा जा सकती है। पद्धति अनुकरण करने योग्य है। यह कहा जा सकता है कि प्रत्यक्ष गायन, अपने यहां के लोगों को रूचिकर लगने जैसा नहीं है। संभवतः सहवास न होने के कारण यह हो सकता है। मैं यह खोज कर रहा था कि रत्नाकर में हम जो संगीत पढ़ते है उसके साथ दक्षिण के आज के ग्रन्थों में जो थाट, स्वर इत्यादि विस्तार से बताए है, रागों के आज के नाम गांव जो पुराने से बहुत मिलते जुलते हैं, परन्तु वर्णन भिन्न परिभाषा मे हैं, उनकी एक वाक्यता किस प्रकार कर सकना सभव है ? रत्नाकर की "मूर्च्छना' व जाति, तथा उनसे संबंधित थाट, ग्रहंशन्यास की सारी सजावट किस युक्ति से निश्चित की है यह योजना है। यह प्रश्न समाधान कारक रीति से सुलझा तो मुझे जन्म सफल होने के समान आनंद होगा इस संबंध में "रत्नाकर" के शुद्ध स्वर माने हुए है वें ही होंगे ऐसा मुझे लगने लगा है। कुछ ग्रन्थो में तो इस प्रकार से स्पष्ट लिखा हुआ भी है। जैसे "कलानिधि, 'सारामृत" इत्यादि। इस संबंध में समाधान कारक शोध यदि मेरे द्वारा नहीं हुआ, तो कोई मेरे मित्र अथवा शिष्य यह करेंगे ऐसी मुझे आशा है। दक्षिण के अन्य ग्रन्थों में परस्पर संबंध बना ही हुआ है। केवल "रत्नाकर" से उनका संबंध स्थापित है दुर्भाग्य से ग्रन्थ पढ़े हुए लोग यहाँ दिखाई नहीं पड़ते तथा ग्रन्थकार इस विषय पर मौन धारण किये हुए है। अस्तु अभी सारा देश घूमना है और शोध करना है। कदाचित कहीं पर अभीष्ट जानकारी प्राप्त हो जावेगी।

स्फुट विचार

बम्बई–

संगीत की द्रविड़ पध्दति

यह कहे तो चलेगा कि मद्रास क्षेत्र में द्रविड़ संगीत पध्दति प्रचलित है। इस क्षेत्र के संगीत के संबंध में एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि आप चाहे जिस शहर में जायें वहां की संगीत पद्धति उसके अन्तर्गत सभी राग–रागिनियों सहित, बिना किसी अन्तर के, वही मानी गई है। वही मुख्य बहत्तर राग, वही उनके स्वर विन्यास, वही जन्य राग, तथा उनके वही आरोह

आकर्षण के बिन्दु :–

वीणा धनाम्मल

अवरोह, वही ताल. वही तालों के भेद सारी बातें सभी को मान्य हैं। यह बात महत्व की समझनी चाहिये, क्योंकि इस प्रकार कायम की हुई पद्धति होने पर ही उसका इतिहास उसकी स्वरलिपि इत्यादि लिखना पर्याप्त सुलभ हो जाता है कि वह वैज्ञानिक है। सचमुच जिस पंडित ने इस प्रकार की विलक्षण रचना बनाकर लोकप्रिय करायी वह कितना महान् व्यक्ति होना चाहिये इस प्रकार की एक आद पद्धति उत्तर के संगीत को लगाकर किसी ने निश्चित की होती तो हम उस व्यक्ति का कितना आभार मानते। हमारे यहां जो दस बीस राग अत्यन्त साधारण होकर बैठे हैं उनके स्वर नियमों की बात छोड़ दे, परन्तु अन्य अनेक रागों के स्वरों के संबध में कितना मतभेद और वितंडावाद देखने को मिलता है ? मुझे ऐसा लगता है कि यदि उत्तर के राग रागनियों को इस प्रकार की पद्धति लगा सकना संभव हुआ तो एक महत्वपूर्ण कार्य हो जावेगा। यह कार्य बहुत कठिन है तथा मुसलमान गायकों के हाथ में संगीत होने के कारण और भी कठिन हो गया है। वे लोग अवसर अविद्व न तथा दुराग्रही होने के कारण नये नियम लगाने में अथवा लगाये हुए ग्रहण करने में प्रसन्न नहीं होते, यह अनुभव है। मैं जब दक्षिण की ओर गया तब सबसे प्रथम मेरा ध्यान इसी बात पर गया। इस प्रकार की लोकप्रिय पद्धति की जानकारी मेरे क्षेत्र के मित्रों को यथा शक्ति दूं, इस उद्देश्य से आगामी पृष्ठों में लेख लिखा है। मुझे आशा है कि इस लेख से मेरे मित्रों को इस पद्धति का अच्छा ज्ञान हो सकेगा। उत्तर हिन्दुस्तान में छह राग मुख्य मानकर प्रत्येक के साथ बधू, पुत्र, पुत्रवधु इत्यादि जोड़कर कुटुंब रचना की हुई दिखती है। इस प्रकार की रचना दक्षिण में नहीं है। जन्य जनक राग जैसे नाम वहां अवश्य है परन्तु छह राग एवं तीस अथवा छत्तीस रागिनी इस प्रकार की रचना नहीं है। संगीत रत्नाकर में जन्य जनक राग प्रकार कुछ अंश में है परन्तु छह रागों की रचना उसमें भी नहीं है। उत्तर में ऐसी कुटुंब रचना केवल नाम मात्र के लिये ही है, परन्तु उसमें आज यथार्थत्व नहीं दिखता। दक्षिण के जन्य जनक रागों में बड़ा सुन्दर संबंध है तथा वह स्पष्ट समझने योग्य भी है कदाचित् छहः रागकर्ता के समय राग रागिनी में उसी प्रकार का योग्य संबंध बताया भी होगा, परन्तु वर्तमान में जो रूप हमारी दृष्टि में आते हैं, वें तो इस प्रकार का कोई संबंध नहीं दर्शाते। अमुकराग की अमुक रागिनी किस प्रकार से हुई, अर्थात उनमें क्या साध्य है, इत्यादि प्रश्न यदि हम किसी से पूंछे तो उसके समाधान कारक उत्तर नहीं मिल सकेंगे। भिन्न भिन्न वर्गीकरण किये हैं। परन्तु जिन तत्वों पर वह किया, उन्हें स्पष्ट रूप से उन्होंने लिखकर नहीं रखा। अस्तु प्रस्तुत प्रसंग पर इस संबंध में अधिक गहराई में नहीं जाऊंगा। कारण द्रविड़ संगीत-पद्धति समझाने का प्रयत्न मैं इस लेख में करने वाला हूं।

सम्पूर्ण इलाके में यह पद्धति प्रचलित है, ऐसा मैंने ऊपर कहा ही है। प्रत्येक पद्धति की नींव श्रुति एवं स्वरों में होती है। मैंने द्रविड़ आचार्यों से पूंछा कि क्या आप एक सप्तक के बाईस विभाग मानते है ? रत्नाकर आदि ग्रन्थों में एक "सा" से दूसरे "सा" तक ऐसे बाईस स्पष्ट, पृथक पहिचान कर सकने योग्य, सांगीतिक नाद मानकर उन्हें श्रुति कहा है। क्या आपकी पद्धति में भी वे श्रुतियां उसी प्रकार तथा उतनी ही मानते है ? उस प्रश्न का उत्तर देते समय उन विद्वानों ने कहा कि हमारे यहां सभी लोग रत्नाकर को नाममात्र का आधारभूत ग्रन्थ मानते है। अर्थात उस रत्नाकर से हमारी पद्धति निकली है ऐसा समझते है; परन्तु रत्नाकर की पद्धति उन्हें समझी नहीं है। "सा" से "सा" तक एक सप्तक में श्रुति कितनी है ऐसा पूंछने

पर श्रुति बाईस है ऐसा उत्तर देंगे। परन्तु इस श्रुति का क्या अर्थ है तथा वे कहां कैसी है यह बहुत थोड़े लोगों को ही मालूम है उन लोगों का यह उत्तर सुनकर मुझे आश्चर्य नहीं हुआ कारण हमारे यहां भी यही हालत है। श्रुति बाईस कैसी तथा कौन सी यह यहां पर भी लोग ठीक से नहीं जानते। परन्तु भाग्य से द्रविड पद्धति समझने के लिये श्रुति की उठापटक करने की आवश्यकता ही नहीं है। वे क्या तथा कैसी है, यह मैं पूर्व में लिख चुका हूं तथा वही जानकारी द्रविड पद्धति के लिये मन में रखकर चलें तो भी ठीक होगा। जैसे हमारा संगीत जैसे मुख्य सात स्वरों पर अवलंबित है वैसे ही दक्षिण में भी है। अर्थात "सा रे ग म प ध नी यही सात स्वर वहां मानते है। उन्हें प्रकृति अथवा शुद्ध मानते है। इनके विकृत जैसे अपने यहां पांच माने गये है, (सभी प्रायोगिक कार्य हेतु) वैसे ही वहां भी माने है। एक सप्तक में "सा" और "प" अचल मानकर शेष पांच शुद्ध एवं विकृत हम मानते है तथा प्रकृत विकृत स्वरों की संख्या बारह निश्चित करते है ठीक ऐसी ही दक्षिण में भी संगीत के स्वरों की व्यवस्था है। वे लोग भी एक सप्तक में बारह सेमीटोन मानते है। सारांश, योरोपीय क्रोमेटिक सप्तक ही आज वहां रागरागिनी की मुख्य नींव है ऐसा समझ लेना चाहिये। अपने यहां भी ऐसा ही है, परन्तु इधर कुछ वर्षो से अच्छे कसबी लोग अति कोमल इत्यादि स्वर मानकर रागों के अधिक सूक्ष्म भेद करते है। इसमें कोई तथ्यांश नहीं है ऐसी बात नहीं परन्तु, यह भाग कुछ हद तक अभी भी अपूर्ण तथा प्रयोगावस्था में है ऐसा कहा जा सकता है। किसी हार्मोनियम में सप्तक के स्वर देखने से वह भी क्रोमेटिक स्केल सेमीटोन्स का दिखेगा। यह भूलना नहीं है कि दक्षिण पद्धति के सभी जनक व जन्य राग इन बारह क्रोमेटिक स्वरों पर ही रचे है। श्रुति का संबंध एकदम मन में न लायें तो भी चलेगा। यहां के गायन श्रुति रचना के समीप ही नहीं जाते। शुद्ध एवं विकृत मिलाकर बारह स्वर हैं इतना मानकर इसके उपरान्त वे रागों की ओर बढ़ते हैं। उन्हें श्रुति की जानकारी कहां तक है तथा उनका उपयोग समझता है कि नहीं यह देखने के लिये मैंने दो प्रकार के कोमल रिषभ लगाकर दिखाये तथा पूंछा कि इसका भिन्न उपयोग कर सकना क्या संभव है ? उनको इसका उत्तर दे सकना संभव नहीं हुआ। प्रथम तो, इस प्रकार के स्वर गले से राग में गाते है इस पर ही उनको आश्चर्य लगा तो फिर उनका उपयोग तो बहुत दूर की बात हुई। अस्तु। अपने विषय की ओर आगे बढ़े। यद्यपि दक्षिण में क्रोमेटिक स्केल ही मुख्य माना है तथा अपने और उनके बारह सेमीटोन्स एकदम एक से है, तो भी, उनके स्वरों के नाम अपने स्वरों के नामों से भिन्न हैं ऐसा मैं पहिले लिख ही चुका हूं। परन्तु संदर्भ हेतु यहां पुनः लिखता हूं। अपने नाम इस प्रकार है :-

		हिन्दुस्तानी स्वर नाम
(१)	सा	(सभी जगह एक)
(२)	कोमलरी	(भैरव में लेते हैं वह)
(३)	शुद्ध री	(कल्याण का)
(४)	कोमल ग	(काफी का)
(५)	तीव्र ग	(कल्याण का)
(६)	शुद्ध, कोमल म	(बिहाग का)
(७)	तीव्र म	(तोड़ी का)
(८)	शुद्ध प	(सभी जगह एक)
(९)	कोमल ध	(भैरव का)
(१०)	शुद्ध, तीव्र ध	(कल्याण का)
(११)	कोमल नी	(काफी की)
(१२)	शुद्ध तीव्र नी	(कल्याण की)

दक्षिण में इन्हीं बारह स्वरों को सोलह नाम है, तथा वे कुछ आश्चर्य उत्पन्न करने वाले भी है। यह नाम केवल काल्पनिक है। इन्हें वहां के कुछ ग्रंथकारों ने अपनी रचनाएं समझाने हेतु व्यवहार में लाये हैं, यह आगे दिखेगा। जैसे ज्यामिति में यूक्लिड इत्यादि सीखते समय हम उसकी व्याख्या गृहीत मानकर, उसके संबंध से पूरी पुस्तक समझ सकते हैं, वैसी ही बात यह भी है। अपने सामने स्वर तो बाहर ही हैं तो फिर उनके नाम वे चाहे जो देते रहे! यदि हम उनके नाम लेकर चले तो उनकी पुस्तक में समझाये गये राग स्वरुप तुरंत समझ में आने लगेंगे। अब उनके अथवा अपने नाम किस-किस प्रकार के हैं यह चित्र द्वारा अधिक शीघ्र समझ में आ सकता है। अतएव आगे के पृष्ठ पर एक के बाद ऐसे दो चित्र खींचकर दिखाता हू।

अपने यहां एक सप्तक में १२ स्वर इस प्रकार है। किसी सितार पर अचल थाट बांधना हो तो हम इस प्रकार के स्वर लगाएंगे :-

हिन्दुस्तानी संगीत के स्वरनाम

क्रम संख्या	स्वरनाम
१	सा
२	कोमल री
३	शुद्ध अथवा तीव्र री
४	कोमल ग
५	शुद्ध अथवा तीव्र ग
६	शुद्ध अथवा कोमल म
७	तीव्र अथवा चढी म
८	प
९	कोमल ध
१०	शुद्ध अथवा तीव्र ध
११	कोमल नी
१२	शुद्ध अथवा तीव्र नी
१३	सा तार सप्तक का

इसमें के नाम ग्रन्थगत नहीं समझने चाहिये। उन्हें केवल प्रचार में गायक लोक प्रयुक्त करते हैं। कुछ-कुछ ग्रन्थों में भी ये ठीक ऐसे ही है, परन्तु सभी में ऐसे नहीं है।

द्रविड पद्धति में इसी अचल थाट में बारह स्वरों के नाम नीचे लिखे अनुसार दिये हैं। दाई ओर चार नाम अधिक है। वे काल्पनिक अप्राकृतिक होने के कारण एक विशेष ग्रन्थकर्त्ता ने अपनी विशिष्ट रचना हेतु अतिरिक्त दिये हैं :-

बारह स्वरों के द्रविड नाम

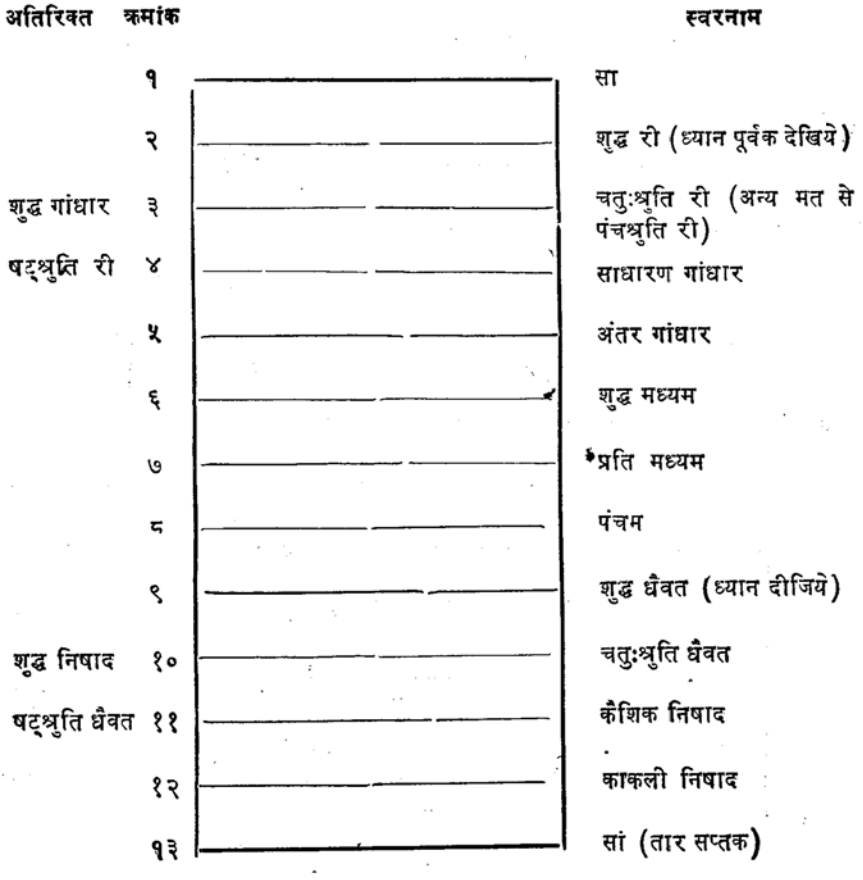

इस द्रविड स्वर चित्र से ऐसा दिखेगा कि यद्यपि स्वर बारह ही है फिर भी उनके कुल नाम सोलह है यह सोलह किस कारण दिये यह बाद में देखेंगे। परन्तु अभी हमारे स्वर व उनके स्वरों के नामों की तुलना कर उनमें जो भेद है वह ध्यान में रखने का है।दक्षिण के बहुत से नाम ग्रन्थों में मिलते है। (परन्तु ऐसा नहीं समझना चाहिये कि उनके स्वर स्थान भी ग्रन्थों के अनुसार ही है। रत्नाकर, दर्पण, राग बोध, इन ग्रन्थों में ये स्वर नाम हैं, परन्तु स्थान कुछ भिन्न है। तो फिर प्रश्न ऐसा उपस्थित होता है कि ये नाम व ये स्थान इन लोगों ने कहाँ से लाये। जिस प्रकार अपने यहां गायक लोग विद्या में (ग्रन्थ विद्या में) कम रहते हैं, कुछ यही स्थिति दक्षिण में भी है। वहा भी संस्कृत पढ़े हुए विद्वान वर्तमान में दो फीसदी भी नहीं मिलेंगे। सुनी हुई जानकारी से काम चलाने वाले सभी है। कोमल री (हमारी) को शुद्ध रे आप किस आधार से कहते हैं ? यह जानकारी किस ग्रन्थ में मिलेगी ? इस प्रकार के प्रश्न मैंने पूँछे। वे प्रश्न सुनकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। परन्तु उत्तर क्या है कुछ नहीं। हम लोग ऐसा ही मानते आये हैं, बस इतना ही। इसी प्रकार मैंने पूछा था चतुः-श्रुति रिषभ यह नाम आपने कहां से कैसे लाया ? ये श्रुतियां कौन सी तथा आप किस प्रकार से गिनते है?शास्त्रों में ऋषभ की तीन ही श्रुतियां हैं तो फिर चतुः श्रुति कैसे हुआ तथा वह क्यों किया ? इसका भी उत्तर नहीं मिला। अतएव ये नाम केवल काल्पनिक हैं ऐसा मानना पड़ेगा। वे लोग भी ऐसा स्वीकार करते हैं। किसी ग्रन्थकार ने अपनी पध्दति इन नामों के आधार पर लिखी फलतः ये नाम प्रचार में आ गये है। यह स्पष्ट दिखेगा कि ग्रन्थों में बताये भावार्थों के अनुसार वें नहीं लिखे है। मुझे लगता है ग्रन्थों में बताए हुए स्वरों का चित्र यहां दिया तो अधिक अच्छा रहेगा। कारण उससे पाठकों को एकदम भरोसा होगा कि द्रविड़ पध्दति के बारह स्वर प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार नहीं है। रत्नाकर के बाद वाले दक्षिण के ग्रन्थकारों की यह रचना है। रत्नाकर एवं दर्पण की रचना एक सी ही है, इसलिये अलग-अलग नहीं लिखता।

रत्नाकर तथा दर्पण में प्रकृत विकृत स्वर, चूंकि उस समय अपना क्रोमेटिक स्केल नहीं था, उन्होंने बाईस श्रुतियों पर कैसे निश्चित किये थे, यह दर्शाने के लिये बाईस श्रुति निकाल कर दिखायी है। चित्र एकदम सही नहीं है। केवल हाथ से जैसा बना वैसा खींच दिया है। केवल स्वर नामों की ओर ध्यान दिया जाय।

रत्नाकर व दर्पण के शुद्ध स्वरों के स्थान

श्रुति नाम	श्रुति क्रम	सप्तक का क्षेत्र	स्वर नाम - क्रम
छंदोवती	४	- - - - - - - -	सा (शुद्ध) १
दयावती	५		
रंजनी	६		
शक्तिका	७	- - - - - - - -	शुद्ध री २
रौद्री	८		
क्रोधा	९	- - - - - - - -	शुद्ध ग ३
वज्रिका	१०		
प्रसारिणी	११		
प्रीति	१२		
मार्जनी	१३	- - - - - - - -	शुद्ध म ४
क्षिती	१४		
रक्ता	१५		
संदीपिनी	१६		
आलापिनी	१७	- - - - - - - -	(शुद्ध) प ५
मदंती	१८		
रोहिणी	१९		
रम्या	२०	- - - - - - - -	शुद्ध ध ६
उग्रा	२१		
क्षोभिणी	२२		
तीव्रा	१	- - - - - - - -	शुद्ध नि ७
कुमुद्वती	२		
मंदा	३		
छंदोवती	४	- - - - - - - -	शुद्ध सा (तार) ८

रत्नाकर एवं दर्पण के विकृत स्वरों का चित्र दिखाने का उद्देश्य इतना ही है कि द्रविड नामों को इन (इस) ग्रन्थों का आधार नहीं है :–

रत्नाकर (दर्पण) के विकृत स्वर नाम

श्रुति क्रम	सप्तक क्षेत्र	विकृत स्वर नाम
४	– – – – – – – – –	सा (शुद्ध)
५		
६		
७	– – – – – – – – –	री (शुद्ध); प्रसंगवश विकृत री
८		
९	– – – – – – – – –	ग (शुद्ध)
१०	– – – – – – – – –	साधारण गांधार
११	– – – – – – – – –	अतर गांधार
१२	– – – – – – – – –	च्युत मध्यम
१३	– – – – – – – – –	अच्युत – (शुद्ध) मध्यम
१४		
१५		
१६	– – – – – – – – –	च्युत पंचम – विकृत
१७	– – – – – – – – –	(शुद्ध) पंचम
१८		
१९		
२०	– – – – – – – – –	(शुद्ध) धैवत: प्रसंगवश विकृत ध
२१		
२२	– – – – – – – – –	(शुद्ध) निषाद
१	– – – – – – – – –	कैशिकी निषाद
२	– – – – – – – – –	काकली निषाद
३	– – – – – – – – –	च्युत सा
४	– – – – – – – – –	अच्युत सा, (शुद्ध) तार सां

उपर्युक्त कोष्टक रत्नाकर की भाषा के आधार पर तैयार किया है। यह ध्वनि दृष्टि से अभी भी निश्चित करना रह गया है यह पाठकों को समझ कर चलना है।

राग विबोध ग्रन्थ के सभी स्वर भी आज द्रविड पद्धति में नहीं है।

राग विबोध (सोमनाथ) के शुद्ध - विकृत स्वर

ति क्रम	सप्तक क्षेत्र	शुद्ध स्वर नाम	विकृत स्वर संज्ञा
१	.....		
२	.....		
३	- - - - - - -	- - -	मृदु सा
४	- - - - - - -	शुद्ध सा	
५	- - - - - - -	- - -	(शु - सा से शु - री कोई स्वर नहीं)
६			
७	- - - - - - -	शुद्ध री	
८	- - - - - - -	- - -	तीव्र री
९	- - - - - - -	शुद्ध ग	
१०	- - - - - - -	- - -	साधारण ग
११	- - - - - - -	- - -	अंतर ग
१२	- - - - - - -	- - -	मृदु म
१३	- - - - - - -	शुद्ध म	
१४			
१५	- - - - - - -	- - -	तीव्रतम म
१६	- - - - - - -	- - -	मृदु प
१७	- - - - - - -	शुद्ध प	
१८	- - - - - - -	- - -	(शु - प से शु - ध कोई स्वर नहीं)
१९			
२०	- - - - - - -	शुद्ध ध	
२१	- - - - - - -	- - -	तीव्र ध
२२	- - - - - - -	शुद्ध नि	
१	- - - - - - -	- - -	कैशिकी नि
२	- - - - - - -	- - -	काकली नि
३	- - - - - - -	- - -	मृदु सां (पुनरावृत्ति)
४	- - - - - - -	तार सां	(पुनरावृत्ति)

उपर्युक्त चित्र से स्पष्ट दिखेगा कि द्रविड पद्धति के सभी बारह स्वरों के आज के नाम ऊपर लिखे ग्रन्थों के नहीं है। "परिजात में तो कोमल तीव्र जैसे आधुनिक शब्दों का व्यवहार कर उन्तीस नाम प्रकृत विकृत स्वरों को दिये है। अतएव परिजात का चित्र व्यर्थ में यहां नहीं देता हूं। मेरे एक दूसरे लेख में उसे चित्र सहित स्पष्ट किया ही है। अतः हम यह मान कर आगे चल सकते हैं कि द्रविड पद्धति का आधार भूत ग्रन्थ ऊपर लिखे ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य दूसरा कोई होना चाहिये। तथा वह ऐसा है भी। सुब्राम दीक्षित ने मुझसे कहा है कि "चतुर्दण्ड प्रकाशिका" इत्यादि ग्रन्थों में इस प्रकार के नामों का व्यवहार किया गया है तथा उनका उपयोग भी उस अर्थ में किया है। वे मुझे ग्रन्थ की नकल ही देने वाले हैं तथा वह मिलते ही मैं उसका भाषान्तर लिखने वाला हू। अस्तु, आगे बढ़ता हूं।

द्रविड संगीत पद्धति के बारह स्वर उनके नामों सहित आप सीख ही चुके है। ऊपर लिखी चर्चा से यह स्पष्ट दिखेगा कि द्रविड शुद्ध स्वरों का सप्तक नीचे अनुसार है :-

द्रविड शुद्ध स्वरों के समकक्ष हिंदुस्तानी स्वर

वीणा दण्ड		द्रविड शुद्ध सप्तक		समकक्ष हिंदुस्तानी स्वर	
	१	सा	(शुद्ध)	सा	
	२	रे	शुद्ध	रे	कोमल
	३	ग	शुद्ध	रे	शुद्ध
	४	म	शुद्ध	म	कोमल
	५	प		प	
	६	ध	शुद्ध	ध	कोमल
	७	नि	शुद्ध	ध	शुद्ध
	८	सां	(तार)	सां	(तार)

उपर्युक्त प्रकार देखकर आपको आश्चर्य होना स्वाभाविक है । परन्तु नामों का अन्तर बनावटी रखने पर भी कोई फर्क नहीं पड़ता है । मैंने वहाँ के लोगों से स्पष्ट रुप से पूंछा कि आपके पूर्वज एक सप्तक में बाईस नाद मानकर उनके नाम भी देते थे । आप उनमें से बारह नाद चुनकर (क्रोमेटिक सप्तक के स्वर) उनको नाम देते हैं । शेष दस श्रुतियों की क्या व्यवस्था है ? क्या वे उपयोग में नहीं आती ? और यदि आती हैं तो वे कैसे, कहां, किन-किन नामों से एवं नियमों से प्रयुक्त की जाती है ? इस प्रश्न का उत्तर उन्होंने इतना ही दिया कि हमारे यहां उन्हें पृथक स्वर नहीं मानते । उन्हें यहां भली-भांति समझकर गले से कोई नहीं गाता । हम गायन के बीच-बीच में मींड, गमक इत्यादि लेते है वे उनमें आ जाते होंगे । परन्तु उसके नियम क्या है यह बता सकना हमें सभव नहीं है । अस्तु । उनकी पद्धति कैसी है यह हमें देखना है । उसकी आलोचना नहीं करनी है । अत हम उसे केवल समझ ले तो पर्याप्त होगा । द्रविड पद्धति की अच्छी जानकारी स्व. चिन्ना स्वामी मुद्लियार ने अपनी ओरियन्टल म्युजिक नामक मासिक पुस्तकों में बहुत अच्छी तरह स्पष्ट की है । यह सज्जन बहुत ही विद्वान थे तथा उन्होने अपना सर्वस्व संगीत विषय हेतु समर्पित किया था ऐसा कहें तो ठीक ही है । उनकी पुस्तक की एक प्रति मैंने कुछ दिनों के लिये प्राप्त की है तथा उसके आधार से कुछ जानकारी मैं यहा देने वाला हू । यह मासिक पुस्तक बहुत दिनों नहीं चली तथा ग्रन्थकर्ता भी गरीबी में पहुचकर गुजर गये । उनके जीवित रहते उन्हें तथा उनकी पुस्तक को किसी ने मदद नहीं दी । परन्तु अब मेरे सुनने देखने में यह आया है कि प्रत्येक नगर में उनके विषय में बहुत ऊचे विचार हैं तथा वे संगीत विषय के एक अमूल्य रत्न थे ऐसे उद्गार वहां सर्वत्र व्यक्त किये जाते है । मनुष्य का मूल्यांकन मरणोपरान्त होता है इसका वे उदाहरण है, यह कह सकता हूं । ऊपर में मैंने सात स्वरों का सप्तक बताया था परन्तु इससे यह कदापि नहीं समझना चाहिये कि यह सप्तक छोटे बालकों को अथवा नये सीखने वालों को सर्वप्रथम सिखाया जाता है । अपने यहा ऐसी परिपाटी है कि विद्यार्थी को प्रारभ में शुद्ध स्वर सप्तक गवाकर सिखाना तथा बाद में धीरे-धीरे विकृत स्वर सिखाना चाहिये । दक्षिण में ऐसा नहीं है तथा ऐसा करना भी संभव नहीं है कारण उनका शुद्ध स्वरों का सप्तक अच्छे कसबी लोगो से भी सहज में गा सकना संभव नहीं होता तथा वह कान को भी मधुर नहीं लगता । स्पष्ट है कि आपको सा रे (कोमल) रे (तीव्र) एक के बाद एक आरोह अथवा अवरोह से गाना कठिन लगेगा तथा मधुर भी नहीं लगेगा । यही प्रकार दक्षिण के इस शुद्ध स्वर सप्तक में है । दो प्रकार के "रे" एव ध एक के बाद एक आते है अतएव छोटे बच्चों को वह सीखना संभव नहीं होता तथा वह इसी कारण सिखाया भी नहीं जाता । इसीलिए हम यह कह सकते है कि स्वर सप्तक कृत्रिम एवं काल्पनिक है । वहा छोटे बच्चों को सदैव जो स्वर सप्तक प्रथम सिखाते है वह अपने "भैरव" राग का सप्तक है अर्थात उसके स्वर हमारे हिसाब से इस प्रकार है :- (१) स (२) कोमल रे (३) तीव्र ग (४) शुद्ध कोमल म (५) प (६) कोमल ध (७) तीव्र नी इस प्रकार के स्वर सप्तक की वहां मायामालव कहते है । मायामालव नाम से एक मुख्य राग वहां है और वह इस स्वर सप्तक के स्वरों से गाते है, इसी कारण उस सप्तक को वही नाम देते है । हमारा यह अनुभव है कि पद्धति चाहे जो हो, उसे सिखना प्रारंभ करते ही वह किसने की, कब की, तथा उसके आधार भूत ग्रन्थ कौन से हैं यह जानने की इच्छा प्रत्येक सुशिक्षित मनुष्य के मन में उत्पन्न होती है । उसके अनुसार वह जानकारी

प्राप्त करने के उद्देश्य से मैंने अनेक स्थानों पर इस प्रकार के प्रश्न पूछे तथा उनके प्राप्त उत्तर मैंने अन्यत्र दिये ही है। उस जानकारी का साराश हम इस प्रकार लेकर चल सकते है, कि यह सुन्दर रचना वर्तमान में जिस रुप में है वह व्यंकटमरवी नामक एक बड़े विद्वान ने की है। यह पंडित प्रसिद्ध गोविन्द दीक्षित का पुत्र था। गोविन्द दीक्षित ये तानप्पाचार्य के शिष्य तथा ये तानप्पाचार्य सीधी परंपरा से शार्ङ्गदेव के शिष्य थे। इससे यह समझना चाहिये कि ये व्यंकट-मरवी अपनी परम्परा से शार्ङ्गदेव की प्रणाली के एक पंडित हो गये। इस जानकारी के लिये आधार श्री सुब्राम दीक्षित नामक एक संगीत पंडित है जो वर्तमान में मद्रास क्षेत्र के इटैय्यापुरम नामक गाँव में रहते हैं।

व्यंकटभरवी ने चतुर्दण्डिप्रकाशिका नामक एक ग्रन्थ लिखा है। उसमें उन्होंने उप-रोक्तानुसार उल्लेख किया भी है, ऐसा दीक्षित कहते हैं। वह ग्रन्थ प्राप्त हो जाने पर उस इतिहास के संबंध में मैं अधिक लिखूंगा। वह ग्रन्थ पांडुलिपि में श्री दीक्षित के पास है, परन्तु वह तेलगू लिपि में है। वे उस ग्रन्थ की एक नकल द्रविड़ लिपि में लिखवाकर मुझे भेजने वाले है। वह मिलने पर सब स्पष्टीकरण हो जावेगा। यदि व्यंकटभरवी, ये पंडित शार्ङ्गदेव की असली परंपरा में है तो रत्नाकर एवं इस दक्षिण पद्धति में संबंध स्थापित हो सकेगा। रत्नाकर के जनक राग लेकर व्यंकटमरवी ने यह रचना की है ऐसा श्री दीक्षित कहते है। श्री दीक्षित स्वत: संस्कृत पंडित नहीं है अतएव यह कड़ी वे नहीं जोड़ सके। परन्तु यदि चतुर्दंडिप्रकाशिका ग्रन्थ मुझे मिला तो मैं अवश्य प्रयत्न करूंगा। श्री दीक्षित मेरे साथ इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये बहुत उत्सुक है। इसी कारण उन्हें अपने पास साल छह महीने रखकर यह कार्य प्रारंभ करने वाला हूं। परन्तु दीक्षित केवल तेलगू एवं तमिल दो भाषा ही बोलते हैं जो मुझे एकदम नहीं आती। (सीखना प्रारंभ किया है।) यदि सुदैव से मुझे कोई दुभाषिया वेतन देकर मिला, तो श्री दीक्षित को तुरंत बुलवा लूंगा। वे बहुत वृद्ध (पैंसठ के ऊपर) हो गये हैं। अतएव समय व्यर्थ नहीं गंवाना चाहिये, यह मुझे मालूम है। अस्तु हरि इच्छा। व्यंकटमरवी, यह पंडित १६ वीं शताब्दि में हुआ। गोविन्द दीक्षित ईसवीं सन् १५३० में तंजौर का दीवान था। इनके परिवार की कुछ संक्षिप्त जानकारी श्री दीक्षित ने अपनी "संगीत संप्रदाय प्रदर्शिनी" नामक तेलगू पुस्तक में दी है। व्यंकटभरवी ने "रागप्रकरण" नामक एक और पुस्तक लिखी है, वह भी रागों की जानकारी के लिये आधारभूत है। यहां इतना कहना चाहिये कि आज के दिन सपूर्ण मद्रास क्षेत्र में श्री सुब्राम दीक्षित के समान द्रविड़ संगीत का जीवित पंडित दूसरा कोई नहीं है। तथा यदि उनका देहान्त हो गया तो उनके साथ संगीत का एक भंडार भी विलीन हो जावेगा। इटैय्यापुरम् के जमीदार ने "संगीत प्रदर्शनी" पुस्तक छपवाकर बहुत जानकारी प्रसिद्ध की है। यह सच है कि कम से कम उसे बचा लिया है। परन्तु अभी भी सच्ची उपयुक्त शास्त्रीय जान-कारी पीछे छूट गई है ऐसा मुझे लगता है। श्री दीक्षित का भी यही मत है। यह जानकारी तथा उसका मूल्य क्या है, यह उस राजा के समझ में नहीं आ सकता यह स्पष्ट है। इसी कारण श्री दीक्षित मुझसे उसे लिख रखने का आग्रह कर रहे हैं। परन्तु अपनी कीर्ति तथा जानकारी उनके पश्चात टिकी रहे ऐसी स्तुत्य इच्छा उनमें जागी है। ईश्वर कृपा से तेलगू दुभाषिया मिलने पर मुझे वह जानकारी लिख सकना संभव हो, ऐसी मैं ईश्वर से कामना करता हूं। व्यंकटमरवी ने कुछ अंश में स्वरसमूहों की गणित सिद्ध उलटफेर के न्याय से क्रोमेटिक सप्तक के

बारह स्वर लेकर उनको जो सोलह नाम दिये हैं वे दूसरे प्रकार के प्रतीकाक्षरों से लिखे हैं। यह प्रकार चित्र द्वारा आगे दिखाता हूं। ऐसा करने का कारण इतना ही है कि स्वरलिपि पद्धति को सुलभ हो। केवल स्वरों के नाम पढ़ने से ही उसकी जाति (प्रकृत या विकृत) तत्काल समझ में आ जाय। एक सप्तक में "सा" से "सा" तक (तार सा सहित) आठ स्वर होते है। सबसे पहले उस सप्तक के दो भाग किये। जैसे 'सा रे ग म' तथा 'प ध नि सां'। रत्नाकर के श्रुति नियम से भी ऐसे सम-समान दो-दो भाग बनते है। इन दो भागों में ४ श्रुति का रिक्त स्थान रहता है। "सा रे ग म" इस भाग को हम पूर्व स्वर चतुष्क, "लोअर टेट्रा कार्ड" तथा "प ध नी सां" इस भाग को उत्तर स्वर-चतुष्क "अपर टेट्राकार्ड" कहेंगे। टेट्राकार्ड अर्थात केवल चार स्वरों का समुदाय। बड़ा गंभीर अर्थ एकदम नहीं है। "सा रे ग म" यह प्रथम टेट्राकार्ड लेकर, उसमें विकृत होने वाले स्वर देखें। "सा" की विकृति नहीं मानते (द्रविड़ पद्धति के अनुसार, रत्नाकर के अनुसार नहीं) "म" की विकृति भी फिलहाल नहीं मानकर चलेंगे (प्रति या तीव्र "मे" की विकृति का भिन्न प्रकार से उपयोग करेंगे अतः हमारी इस व्यवस्था के अनुसार 'रि' एवं 'ग' इन दो स्वरों को ही विकृत करना है, यह हमने ठहरा लिया है। यही नियम "अपर टेट्राकार्ड" को लगाया तो "प" एव "सां" ये विकृत होंगे ही नहीं और "ध" एवं "नी" ये दो स्वर ही विकृत होंगे।

अब पीछे बताये हुए द्रविड़ प्रकृत-विकृत स्वरों को अत्यंत ध्यान पूर्वक देखने से हमें पता चलेगा कि "रि" के तीन रुप (प्रकृत एव विकृत) है तथा "ग" के भी वैसे ही तीन रुप है। वें इस प्रकार है :- "रि" के तीन रुप है, (१) शुद्ध रि (कोमल), (२) चतुःश्रुति "रि" (प्रकृत) (३) षट्श्रुति रि (कोमल ग)। "ग" के तीन रुप- (१) शुद्ध ग (प्रकृत रि), (२) साधारण ग (३) अन्तर ग।

इस प्रकार से इन दो स्वरों को छः भिन्न-भिन्न नाम दिये हुए हैं। हमारे प्राचीन ऋषि मुनि सदैव संक्षिप्त रीति से तथा काव्यात्मक शैली से हमारे शास्त्र सिद्धांत लिखते थे यह प्रसिद्ध हा है। अतः इन स्वरों के ये लम्बे चौड़े नाम अपनी कविता में डाल सकना संभव नहीं यह समझकर व्यंकटमखी ने भिन्न प्रकार से समझाने की युक्ति निकाली जो इस प्रकार है :- रिषभ के तीन प्रकारों (अथवा तीन स्वरुपों) को "रा, री, रु" इस प्रकार लिखना है। अर्थात् :-

रा = शुद्ध री (कोमल री)

री = चतुःश्रुति री (तीव्र री)

रु = षट्श्रुति री (कोमल ग)

इसी प्रकार गंधार के रूपों को भी "गा, गी, गु" नाम दिये है :-

गा = शुद्ध गांधार (तीव्र री)

गी = साधारण गांधार (कोमल ग)

गु = अंतर गांधार (तीव्र ग)

इसी न्याय से उत्तरांग के चतुष्क में निम्नानुसार रूप बनते है :-

धा = शुद्ध धैवत (कोमल ध)

धी = चतु श्रुति धैवत (तीव्र ध)

धु = षट्श्रुति धैवत (कोमल नी)

ना = शुद्ध निषाद (तीव्र ध)

नी = कैशिकी निषाद (कोमल निषाद)

नु = काकली निषाद (तीव्र निषाद)

व्यंकटमखी अपनी पुस्तक में यह कहते हैं कि यह रचना उनकी अपनी स्वयं की है। यह कहने में कोई संकोच न होगा कि यह युक्ति बड़ी सुविधा जनक एवं मौलिक है। यहां कोई यह प्रश्न कर सकता है कि इस प्रकार के कृत्रिम नाम "रा री रु, गा गी गु" देने से क्या लाभ है? स्वर तो वही हैं। उन्हें लम्बे चौड़े ही सही परन्तु उनके शास्त्रीय स्वर नाम तो है ही। फिर इन संज्ञाओं की ऐसी क्या विशेषता है? उनका उपयोग भी क्या है? प्रश्न उचित है, तथा इसका उत्तर अपने आप आगामी पृष्ठों में मिल जावेगा।

अब, इन नई सज्ञाओं के सहारे हम अपने क्रोमेटिक स्केल को लिखकर बाद में रागों की योजना किन तत्वों पर की गई है, इस पर विचार करेंगे। मैंने ऊपर कहा ही है कि एक सप्तक के दो विभाग (अर्थात पूर्वांग एवं उत्तरांग) है। प्रति मध्यम अथवा तीव्र मध्यम किस कार्य में प्रयुक्त करना है यह अभी नहीं बताया। फिलहाल हम उस स्वर का विचार स्थगित रखेंगे। तथा 'सारिगम', 'प ध नि सां' इन दो चतुष्कों के सहारे राग रचना करेंगे :—

उपर्युक्त सोलह संज्ञाओं के योग से हम अधोदर्शित चित्र बना सकते हैं।

त्वरित संदर्भार्थ क्रोमेटिक सप्तक के स्वर दक्षिण की संकेत संज्ञाओं में

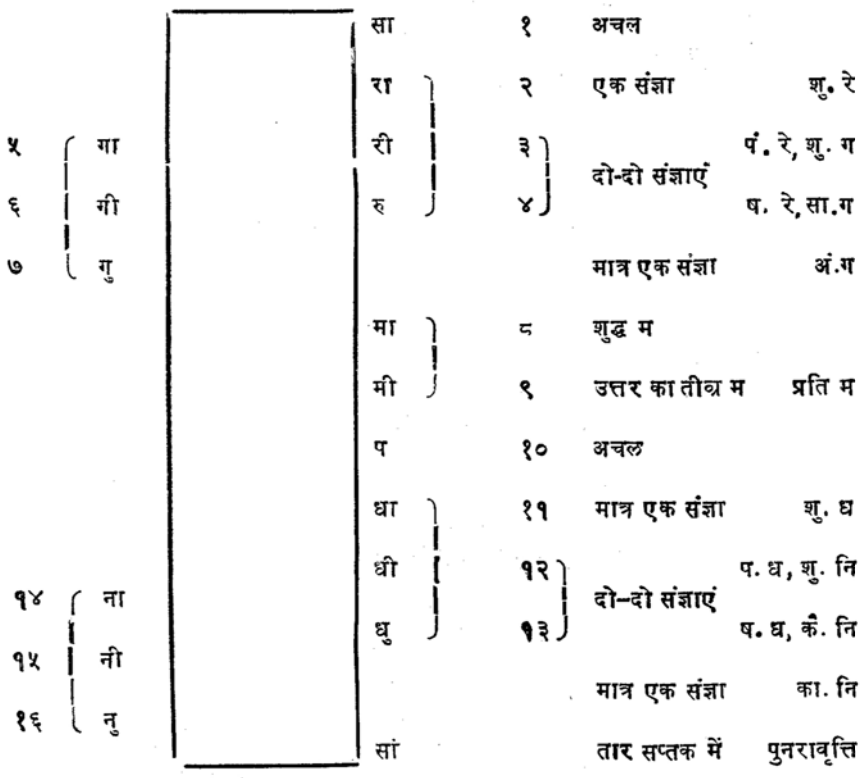

इस कोष्टकाकृति में सत्तरह संज्ञाएं लिखी हैं। परन्तु सत्तरहवीं को लिखने की आवश्यकता नहीं है, कारण वहां "सां" स्वर दुहराया गया है। शेष बचे १६ स्वरों में भी यह दिखेगा कि पूर्वांग के चतुष्क में दो नाम अतिरिक्त है तथा उसी प्रकार उत्तरांग के चतुष्क में भी दो नाम अतिरिक्त है। उदाहरणार्थ "चतुःश्रुति री" तथा "शुद्ध गांधार" भिन्न स्वर नहीं है, षट्-श्रुति री "तथा" साधारण गांधार ' भिन्न स्वर नहीं है। अर्थात् एक ही स्वर को कुछ कारणों से दो नाम दिये गये हैं। यही बात उत्तरांग के चतुष्क में देखने मे आवेगी। वहां :-

चतु.श्रुति धैवत = शुद्ध निषाद तथा
षट्श्रुति धैवत = कैशिकी निषाद है।

यह दूसरे नाम एक तरफ रख दे तो यह स्पष्ट दिखेगा कि बारह स्वर ही है। आप यहां यह प्रश्न न उठायें कि बाईस नाद के सप्तक में बारह नाद का क्रोमेटिक सप्तक क्यों बनाया

गया ? योरप में एनहार्मनिक (श्रुति) सप्तक से क्रोमेटिक स्केल उत्पन्न हुआ । उसके उत्पन्न होने में जो कारण वहां सहायक हुए वही यहां भी रहे होंगे, यह कहकर वह भाग यहाँ छोड़ दें । योरोपीय नेचुरल स्केल के स्वर द्रविड़ शुध्द स्वरों के सप्तक से नहीं मिलते। योरोपीय शुध्द स्वरों के सप्तक को अपना "कल्याण" राग का थाट कहें तो चलेगा। केवल "मध्यम" "कोमल" लेना होगा, इतना ही ।

दक्षिण की पद्धति में जो मुख्य जनक राग बहत्तर माने हैं उन्हें "मेलकर्ता" राग कहते है। इस प्रदेश में "मेलकर्ता" यह शब्द नितांत सामान्य है। प्रत्येक गायक उसे समझता है । "मेलकर्ता" राग ऊपर लिखे बारह स्वरों से ही बनाए जाते है उन्हें बनाते समय कुछ नियम ध्यान में रखने होते हैं। वे ऐसे है :-

(१) प्रत्येक जनक अथवा मेलकर्ता राग ऊपर लिखे चतुष्कों में से एक के बाद एक को जोड़ते हुये आठ स्वरों की सहायता से बनाया जाता है ।

(२) दोनों चतुष्क जोड़ते समय प्रत्येक चतुष्क के दोनों ओर के स्वर 'सा म' और 'पं सा' ये अपरिवर्तनीय समझना चाहिये ।

(३) उन चतुष्कों के बीच में शेष बचे दो, दो स्वर क्रम से एक के बाद एक लेकर प्रत्येक राग बनाना चाहिये ।

(४) प्रत्येक राग संपूर्ण अर्थात सात भिन्न स्वरों का होना चाहिये ।

(५) जब एक चतुष्क में एक ही स्वर की दो विकृति एक के बाद एक आती है, उस समय स्वर का नाम बदल कर अगले स्वर वाला उसी डिग्री का नाम देना चाहिये । प्रत्येक मेल में सप्तक के सातों स्वरों के प्रतिनिधि रहना चाहिये यह बात भूलना नहीं है ।

पुन्हश्च :- यह नियम नि शब्दों से समझ में नहीं आयेगा । अतएव एक उदाहरण देकर समझाता हूं। जैसे, "रा, रि "व" नि, नु" यह एक ही मेल राग में इस प्रकार उच्चार नहीं करना है। हम जानते है कि "रि" का दूसरा नाम "गा" (शुद्ध गांधार) है, वैसे ही "नि" का अर्थ "धु" होगा, अतएव इस मेल के स्वर "स रा गा मा प धु नु" इस प्रकार कहना है। यह संभव हो सकें, इसीलिये बारह स्वरों को सोलह संज्ञाएं दी है।

इस रीति से दोनों चतुष्क के सभी स्वरों की सहायता से छत्तीस भिन्न "जनक राग" "अथवा" मेलकर्ता" उत्पन्न होंगे। इसमें हमने 'म' को अचल मान लिया है यह ध्यान में होगा ही। मध्यम के दो प्रकार है। अर्थात (१) शुद्ध (२) प्रति मध्यम। जिस प्रकार से शुद्ध मध्यम को अचल मान कर हमने छत्तीस राग उत्पन्न किये, वैसे ही उस "मध्यम" के स्थान पर "प्रति मध्यम" ग्रहण कर अन्य छत्तीस उत्पन्न करना है। अर्थात कुल ३६ + ३६ = ७२ मुख्य "रागांग राग" "जनक या मेलकर्ता राग" हुए। मध्यम यह बहुत ही महत्वपूर्ण तथा चमत्कारिक स्वर है, इसमें संदेह नहीं। उदाहरण स्वरूप अपना प्रातः कालीन "भैरव" राग देखें। इसके स्वर "सारे

K

ग म प ध नी सां" ऐसे मानते है। उसमें से एक शुद्ध मध्यम निकालकर "प्रतिमध्यम" रखते ही तत्काल उसमें संध्या काल" की छायां पड़ेगी। अन्य स्वरों को बदलने की कोई आवश्यकता नहीं। दीक्षित ने 'मध्यम" का यह महत्व समझकर संपूर्ण राग व्यवस्था ही उसके सहारे कर डाली है। अतः शुद्ध मध्यम के छत्तीस राग तथा प्रति मध्यम के छत्तीस राग ऐसा कहते है।

"शुद्ध मध्यम" के छत्तीस राग किस प्रकार रचे जांय यह समझ में आया कि "प्रति-मध्यम" के छत्तीस राग समझ में आ ही जावेंगे। कारण दोनों में "मध्यम" के अतिरिक्त और कोई अन्तर नहीं है। श्री चिन्नुस्वामी मुदलियार ने यह रचना बड़ी सुन्दर रीति से समझाई है। (ओरियन्टल म्यूजिक देखिये)

उत्तरांग के छह चतुष्क उपर्युक्त संज्ञाओं की सहायता से इस प्रकार तैयार करेंगे :-

१. प धा ना सां
२. प धा नि सां
३. प धा नु सां
४. प धा नी सां
५. प धी नु सां
६. प धु नु सां

इसमें चौथे क्रम में "प ध नी सां" ऐसा कहा है। सरसरी निगाह से देखने पर ऐसा लगता है कि यहां 'प धी ना सां" इस प्रकार होना चाहिये। परन्तु ऐसा कर सकना संभव नहीं है। कारण "धी" व "ना" यह दोनों एक ही स्वर के नाम है तथा उन्हें लेने पर अपने राग को सातों स्वर नहीं मिल पावेंगे।

इस उत्तरांग के चतुष्क में "मध्यम" स्वर न होने के कारण उसके केवल छह प्रकार ही हो सकते हैं। पूर्वांग के चतुष्क के बारह प्रकार बनेंगे कारण, छह शुध्द मध्यम के तथा छह "प्रतिमध्यम" से बनाने है। ये प्रकार अथवा इन १२ चतुष्कों को इस प्रकार लिखेंगे।

शुद्ध मध्यम के छह पूर्वांग चतुष्क

अ	१	स	रा	गा	मा	(शुध्द मध्यम को 'मा' संज्ञा देंगे
अ	२	स	रा	गी	मा	
अ	३	स	रा	गु	मा	
अ	४	स	री	गी	मा	
अ	५	स	रो	गु	मा	
अ	६	स	रू	गु	मा	

प्रति मध्यम के छह पूर्वांग चतुष्क

ब	१	स	रा	गा	मी	(प्रति मध्यम को 'मी' संज्ञा देंगे)
ब	२	स	रा	गी	मी	
ब	३	स	रा	गु	मी	
ब	४	स	री	गी	मी	
ब	५	स	री	गु	मी	
ब	६	स	रू	गु	मी	

अब नीचे के एवं ऊपर के "चतुष्क" अपने पास तैयार होने के कारण शुध्द मध्यम के ३६ राग तैयार करना एकदम सहज है। वह कैसे करना वह बताता हूँ :-

किस चतुष्क के साथ कौन सा चतुष्क जोड़ना है उसका कोष्टक :-

मेलराग क्रमांक	पूर्वांग के चतुष्क का क्रम संकेत	+	उत्तरांग के चतुष्क का क्रम संकेत	मेलराग क्रमांक	पूर्वांग के चतुष्क का क्रम संकेत	+	उत्तरांग के चतुष्क का क्रम संकेत
पहला प्रकार				**चौथा प्रकार**			
१	१ अ	+	पहला उत्तरांग	१९	४ अ	+	पहला उत्तरांग
२	१ अ	+	दूसरा उत्तरांग	२०	४ अ	+	दूसरा उत्तरांग
३	१ अ	+	तीसरा उत्तरांग	२१	४ अ	+	तीसरा उत्तराग
४	१ अ	+	चौथा उत्तरांग	२२	४ अ	+	चौथा उत्तरांग
५	१ अ	+	पांचवा उत्तरांग	२३	४ अ	+	पांचवा उत्तरांग
६	१ अ	+	छठा उत्तरांग	२४	४ अ	+	छठा उत्तरांग
दूसरा प्रकार				**पांचवाँ प्रकार**			
७	२ अ	+	पहला उत्तरांग	२५	५ अ	+	पहला उत्तरांग
८	२ अ	+	दूसरा उत्तरांग	२६	५ अ	+	दूसरा उत्तरांग
९	२ अ	+	तीसरा उत्तरांग	२४	५ अ	+	तीसरा उत्तरांग
१०	२ अ	+	चौथा उत्तरांग	२८	५ अ	+	चौथा उत्तरांग
११	२ अ	+	पांचवा उतरांग	२९	५ अ	+	पांचवा उत्तरांग
१२	२ अ	+	छठा उत्तरांग	३०	५ अ	+	छठा उत्तरांग
तीसरा प्रकार				**छठा प्रकार**			
१३	३ अ	+	पहला उत्तरांग	३१	६ अ	+	पहला उत्तरांग
१४	३ अ	+	दूसरा उत्तरांग	३२	६ अ	+	दूसरा उत्तरांग
१५	३ अ	+	तीसरा उतरांग	३३	६ अ	+	तीसरा उत्तरांग
१६	३ अ	+	चौथा उत्तरांग	३४	६ अ	+	चौथा उत्तरांग
१७	३ अ	+	पाँचवा उत्तरांग	३५	६ अ	+	पांचवा उतरांग
१८	३ अ	+	छठा उत्तरांग	३६	६ अ	+	छठा उत्तरांग

इस प्रकार से पूर्वांग एवं उत्तरांग को दोनों चतुष्कों का सयोग करते हुए सात स्वरों के छत्तीस राग बनते है। इनमें मध्यम शुध्द है। उसके स्थान पर प्रतिमध्यम करने से अन्य छत्तीस

बनेंगे। स्पष्ट ही है कि प्रत्येक राग का स्वरूप स्वतंत्र एवं भिन्न हैं। प्रत्येक जनक राग को अथवा मेलकर्त्ता को भिन्न नाम दिया है। उनके बहत्तर नाम इस प्रकार है :-

१	कनकांगी	स	रा	गा	मा	प	धा	ना	स
२	रत्नांगी	स	रा	गा	मा	प	धा	नी	स
३	गानमूर्ती	स	रा	गा	मा	प	धा	नु	स
४	वनस्पति	स	रा	गा	मा	प	धी	नी	स
५	मानवती	स	रा	गा	मा	प	धी	नु	स
६	तानरूपी	स	रा	गा	मा	प	धु	नु	स
७	सेनापती	स	रा	गी	मा	प	धा	ना	स
८	हनुमतोड़ी	स	रा	गी	मा	प	धा	नी	स
९	धेनुक	स	रा	गी	मा	प	धा	नु	स
१०	नाटकप्रिया	स	रा	गी	मा	प	धी	नी	स
११	कोकिलीप्रिया	स	रा	गी	मा	प	धी	नु	स
१२	रूपावती	स	रा	गी	मा	प	धु	नु	स
१३	गायकप्रिया	स	रा	गु	मा	प	धा	ना	स
१४	बकुलाभरण	स	रा	गु	मा	प	धा	नी	स
१५	मायामालवगौड	स	रा	गु	मा	प	धा	नु	स
१६	चक्रवाक	स	रा	गु	मा	प	धी	नी	स
१७	सूर्यकांत	स	रा	गु	मा	प	धी	नु	स
१८	हाटकांबरी	स	रा	गु	मा	प	धु	नु	स
१९	झंकारध्वनि	स	री	गी	मा	प	धा	ना	स
२०	नटभैरवी	स	री	गी	मा	प	धा	नी	स
२१	कीरवाणी	स	री	गी	मा	प	धा	नु	स
२२	करहरप्रिया	स	री	गी	मा	प	धी	नी	स
२३	गौरीमनोहरी	स	री	गी	मा	प	धी	नु	स
२४	वरूणप्रिया	स	री	गी	मा	प	धु	नु	स
२५	माररंजनी	स	री	गु	मा	प	धा	ना	स
२६	चारूकेशी	स	री	गु	मा	प	धा	नी	स
२७	सरसांगी	स	री	गु	मा	प	धी	नु	स
२८	हरिकांबोदी	स	री	गु	मा	प	धी	नी	स
२९	धीरशंकराभरण	स	री	गु	मा	प	धी	नु	स
३०	नागानंदनी	स	री	गु	मा	प	धु	नु	स
३१	यागप्रिया	स	रू	गु	मा	प	धा	ना	स
३२	रागवर्धनी	स	रू	गु	मा	प	धा	नी	स
३३	गांगेयभूषणी	स	रू	गु	मा	प	धा	नु	स

३४	वागधीश्वरी	स	रू	गु	मा	प	धी	नी	स
३५	शूलिनी	स	रू	गु	मा	प	धी	नु	स
३६	चलनाट	स	रू	गु	मा	प	धु	नु	स

प्रतिमध्यम (संकेताक्षर 'मा') से बनाये हुए छत्तीस जनकराग अथवा मेलकर्ता :–

३७.	सालग	५५.	श्यामलांगी
३८.	जलार्णव	५६.	षण्मुखप्रिया
३९.	सालवराळी	५७.	सिंहेन्द्रमध्यम
४०.	नवनीत	५८.	हेमवती
४१.	पावनी	५९.	धर्मवती
४२.	रघुप्रिया	६०.	नीतिमती
४३.	गवांबोधी	६१.	कांतामणी
४४.	भवप्रिया	६२.	ऋषभप्रिया
४५.	शुभपंतुवराळी	६३.	लतांगी
४६.	षड्विधमार्गिणी	६४.	वाचस्पति
४७.	सुवर्णांगी	६५.	मेच कल्याणी
४८.	दिव्यमणि	६६.	चित्रांबरी
४९.	धवलांबरी	६७.	सुचरिता
५०.	नामनारायमणी	६८.	ज्योति स्वरुपी
५१.	कामवर्धिनी	६९.	धातुवर्धनी
५५.	रामप्रिया	७०.	नासिकाभूषणी
५३.	गमनाश्रमां	७१.	कौशल
५४.	विश्वंभरी	७२.	रसिकप्रिया

टीप :– पिछले पृष्ठ पर प्रथम ३६ मेलों के सामने उनके आरोह अवरोह है। वे ही इन दूसरे ३६ के भी है। केवल "शुद्ध मध्यम" त्याग कर प्रतिमध्यम स्वर इन ३६ में लेना है। अतएव वे सब यहां नहीं लिखता। मुझे लगता है यह सूची सरल एवं मनोरंजक है।

ऊपर लिखे हुए चतुष्कों को भली–भांति ध्यान में रख लेने पर अमुक क्रमांक के मेलकर्ता राग के स्वर कैसे हैं, तुरंत बता सकना क्या संभव न होगा ? छह–छह रागों के एक एक समूह में यह व्यवस्था की गई है। उसके आधार पर किन दो चतुष्कों का संयोग करना है यह बता सकना एकदम संभव हो जाता है। अब आगे इतनी बात बची रहती कि केवल रागों का नाम सुनकर उनका क्रमांक तथा उनके स्वरों का बोध होना। दक्षिण के पंडितों ने वह भी करके रख दिया है। इसीलिये इस प्रकार की व्यवस्था पर आश्चर्य होता है। इस युक्ति को "कटप-

यादि" फार्मूला कहूँगा। उसकी समझ संक्षेप में इस प्रकार देता हूं। "कटपय" इन चार में से प्रत्येक अक्षर अपने मूल अक्षर के वर्ग को सूचित करता है। 'क' = क + आदि + नवं = कादिनव, ट' = ट + आदि + नवम् = आदिनवम्, 'प' = प ◆ आदि + पंच = पादिपंच, 'य' = य + आदि + अष्टम् = याद्यष्टं अर्थात् "क" से नौवा, "ट" से नौवा, "प" से पांचवा, तथा "या" से आठवां। इस प्रकार के अक्षरों का कोष्टक लिखना है। जैसे :-

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ
ट	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध
प	प	फ	ब	भ	म				
य	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	

न = इसका अर्थ शून्य समझना है।

ऊपर जो बहत्तर मेलराग बताए है उनमें से जिस राग के क्रमांक की आवश्यकता हो उसे इस कोष्टक से ढूंड लिया जा सकता है। क्रमांक निकालते समय नाम के प्रारंभिक दो अक्षर ही लेना है,तथा उनके क्रमांक ऊपर के आंकड़ों को उलटने पर राग का क्रमांक प्राप्त हो जावेगा। (अंकानाँ वामतो गतिः)

उदाहरण :-

प्र. - रूपवती मेल का क्रमांक कौन सा होगा ?

उ. - यहां रु, प ये दो अक्षर मात्र लेना है।

रु = यह "य" वर्ग में दूसरा है।

प = यह "प" = वर्ग पहिला। अतएव "रूप" = २१ इस प्रकार हुआ। इसे उलट दिया तो यह संख्या "१२" होती है। यह मेल का इच्छित क्रमांक है। अर्थात यह दूसरे चक्र का अंतिम मेल है। छह-छह मेलों के एक ऐसे कुल बारह चक्र है। अतः 'स रा गी मा प धु नु सां = सा री री म; प नि नो सां, इस प्रकार इस बारहवें मेल के स्वर हुए।

'पुनश्च तंजोर - अवशिष्ट पृष्ट'

श्री नागोजीराव के विचार

दिनांक २/१२/१९०४

तंजोर

प्रिय महोदय,

यहां मैं श्रुति के संबंध में पहिले की अपेक्षा कुछ अधिक निश्चित तथा संभवतः अधिक

सही बात बता रहा हूं। मैंने यहां मद्रास से कैप्टन डे की पुस्तक लाई है। यदि आपने इसे न देखा हो तो इसे मैं आपको कल दिखा सकता हूं। आशा है, आप यहां अपना प्रवास – काल सानन्द व्ययीत कर रहे होंगे।

आपका स्नेहभाजन

हस्ताक्षर – सी. नागोजीराव

'इस कथन को देखते हुए कि "सा" की चार श्रुतियां है जिसका यह अर्थ हुआ कि "सा" एवं "रे" के बीच में तीन श्रुतियां है (न कि जैसा अन्य कहते है), यह श्रुति सप्तक शंकराभरण सप्तक होगा। षड्ज ग्राम :-

सी – डी – ई + एफ – जो
सा – रे – ग + म – प
प – ध – नि ÷ सा
G - A - B + C

एक पुस्तक में दिये अनुसार स्वरांतरों को लेते हुए मध्यम ग्राम इस प्रकार होगा:–

ग – म – प – ध – नि
नि – सा – रे – ग

जहां "ध" १७ वीं श्रुति पर है तथा अन्य सब स्वर षड्ज ग्राम के है। "ध" आज के प्रकृत या विकृत स्वरों की भांति नहीं है। तथा संभवत यही कारण हो सकता है कि यह स्वर ग्राम आज प्रचार में नहीं है। इसी प्रकार गांधार ग्राम इस प्रकार होगा :–

सा – रे – ग – म
म – प – ध – नी

} जहां "रे" चौथी श्रुति पर ध, १७ पर, "ग" ७ वीं पर तथा "नी" २० वीं पर है। इनमें से, कोई भी हमारा आज का प्रकृत या विकृत नहीं है। तथा यही कारण हो सकता है कि यह ग्राम मध्यम ग्राम के बहुत पहिले अप्रचलित हो गया हो। मूर्च्छना परिवर्तन करने से हमें कल्याणी करहरप्रिया, कांबोदी तथा नटभैरवी मेल (थाट) प्राप्त होते है।

सा	१ ली श्रुति	---	१	
	२ री श्रुति	---	१.०३२ जो २२/२है। इसे 'क' कहेंगे।	
शु. री.	३ री श्रुति	---	१.०६५ या १६/१५	लगभग
	४थी	---	१.०९९	लगभग
शु. गां अथवारी२	५वीं	---	१.१३४ या ९/८	लगभग
सां. गा या री३	६वीं	---	१.१७० या ७/६	लगभग

	७वीं	---	१.२०८ या $\frac{६}{५}$	लगभग
अंतरंगा.	८वीं	---	१.२४७ – $\frac{५}{४}$	लगभग
	९वीं	---	१.२८७ -----	लगभग
शुद्ध. म.	१०वीं	---	१.३२८ ----- $\frac{४}{३}$	लगभग
	११वीं	---	१.३७१	
प्रीतम.	१२वीं	---	१.४१५	
	१३वीं	---	१.४६०	
प	१४वीं	---	१.५०६ = (इसको "अ" कहें) अथवा $\frac{३}{२}$	
	१५वीं	---	अ ⅄ क	
शु. ध.	१६वीं	---	अ ⅄ क २ -- ८/५	
	१७वीं	---	अ ⅄ क ३	
ध.	१८वीं	---	अ ⅄ क ४ -- ५/३	
शु. नि.	१९वीं	---	अ ⅄ क ५	
	२०वीं	---	अ ⅄ क ६	
का. नि.	२१वीं	---	अ ⅄ क ७	
	२२वीं	---	अ ⅄ क ८	
सां	२३वीं	---	अ ⅄ क ९ या $क^{22}$ ---२	

(यह मानकर कि श्रुतियां समानांतर है ।)

किसी भी राग में वादीस्वर अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है तथा बार २ दुहराया जाता है। संवादी ९ या १३ श्रुति की दूरी पर होता है तथा वादी के बाद वह दूसरा महत्वपूर्ण स्वर है। वादी की तुलना राजा से तथा संवादी की मन्त्री से की गई है। यहां तक ठीक है। प्राचीनों को यह बात अवश्य ध्यान में आई होगी। परन्तु भले ही आप किसी राग के वादी संवादी को जानते हों, आपने राग के बारे मे सब कुछ नहीं जान लिया है। जिस बात को प्राचीन लोग नहीं पहिचान पाये तथा जिसे मैंने ध्यान में लाया है वह यह है कि किसी विशेष राग में २ या ३ अन्य स्वर (संवादी के अनुसार जो ९ वीं या १३ वीं पर है) का दो या तीन स्वरों से वहीं सँबध है जो कि वादी का संवादी से होता है। जैसे संवादी, वादी से चौथा या पांचवां होता है उसी प्रकार वादी से अनुवादी तीसरा होता है। वादी एवं अनुवादी के बीच का अन्तराल "सा" तथा "ग" अथवा "सा" एवं कोमल "ग" की भाति होगा इस बिन्दु पर लेखक गण स्पष्ट या निश्चयात्मक नहीं है। उन्होंने यह नहीं बताया कि किस प्रकार वादी, संवादी तथा अनुवादी किसी राग के चलन या विश्रान्तियों को निर्धारित करते है ? मैंने बनाये हुए शास्त्र में यह है। मेरे शास्त्र से निष्कर्ष निकाला जा सकता है। यदि एक राग के विषय में कुछ तथ्य ज्ञात हो तो मेरे सिद्धांत का प्रयोग करते हुए राग की चलन संबंधी समस्त बातों को प्राप्त किया जा सकता है।

अन्य किसी विधि से यह संभव नहीं है। सिद्धान्त का प्रमाण इस तथ्य में निहित है कि वह रागों की एक बड़ी संख्या के चलन को अथवा प्रत्येक राग के चलन को समझा सकने में समर्थ है। मेरा राग सिद्धन्त स्वर-संवाद (हार्मनी) के सिद्धन्त से संबंधित होना, उनके पक्ष में है। इस सिद्धन्त के अनुसार राग के अनुवादी स्वर वे हैं जो मेजर या माइनर कार्ड में स्वर-संवाद उत्पन्न करते है। सा – ग – प – सां – मेजर, सा – ग – प – सा – माइनर (इसके अनुसार सोहनी या बिहाग या सारंग सवज्ञाया गया) टिप्पणी यह नवीन सिध्दान्त विचार करने योग्य है।

भूप :– सा – ग – प – सां – संवाद है।
रि – ध – रें – संवाद है।

चलन :– सारि – गरि – गपध – सां
सांरि – गंरि – गंरिसां – धप
धपग – रिग – रि सा।

मोहन :– ध सा – ग – ध – संवाद

रे प रें – संवाद।

चलन :– रेगप – गपध – सां – रिगं रिसां
धप – गरि – सारि – गप – गंरे सा

सोहनी :– निसां – गं, मे, गंरि, सांनीध
सां एवं नि, ग एव नी, ध एवं रें संवाद करते है
सा – ग मे, ध मे, धनीसां, नी, नीध, मे – ग, मे ग रे सा,
साग – मे ध नी – सां, ध नी सांरेंग, मे गं रें सां नीध,
नी, नीधमे ग, सां, सांनीधनी, नीध मे ग, मेधनीसां
गं रें सांसां, नीरेंसां, नीसां, धनीसां, रें निसां, धनीसां रे सां।

बिहाग:– सा – म संवाद है। नी, – ग – प संवाद है।
ध एवं रे भी संवादी है परन्तु यहां महत्वहीन हैं।
निसा, गम – पम – गरेसा – नीधप, नीसा, गमप

यही टुकड़े तार सप्तक में दुहराये जाते है।
निसां, गंरेंसा, निरेंसा – नांधपमग – गमपम – गरे सानिसा

सारंग:– रें – सां नि – पम
मप – नी – सांरें सां नी, पम, रे, सानी, प नी – सा।

'घर लौटने पर' (श्री नागोजीराव के विचार यहां संपूर्ण हुए)

टिप्पणी :– त्रुटिपूर्ण ग्रहीत निश्चय ही त्रुटिपूर्ण निष्कर्षों पर पहुंचावेंगे। कोई भी व्यवस्था जिसे ग्रन्थों का आधार नहीं है, समाधन कारक नहीं हो सकती।

वर्तमान दक्षिण पध्दति के शुध्दरि तथा शुध्द "ध" संपूर्ण विश्व में फ्लेट "डी" तथा फ्लेट "ए" (कोमल रि" एवं कोमल "ध") के समकक्ष स्वीकार किये जाते हैं । नागोजी–राव उन्हें सेमीटोन कहते हैं। संस्कृत ग्रन्थकार इन स्वरों को प्रत्येकश: तीन श्रुतियां प्रदान करते है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या एक सेमीटोन, ३ श्रुति के बराबर है ? नागोजी कहते है, "नही" वे शुध्द घ एवं शुध्द रि की जगहों को दो श्रुतियों के "सेमीटोन्स" के रूप में स्थापित नहीं कर सकते। "सा" एवं "रे" तथा "प" एवं "ध" के बीच में दक्षिण पध्दति तथा दक्षिण के संस्कृत पंडितों द्वारा कोई अन्तरिम स्वर स्वीकर नहीं किया गया। अत: प्रश्न उठता है कि दक्षिण का शुध्द "रे" तथा शुध्द "ध" कोमल स्वर दो श्रुतियों का विशुध्द सेमीटोन अर्थात कोमल फ्लैट कब और कैसे' बन गया ? यह प्रश्न सदा ही निरूत्तर रहा है । ऐसी स्थिति में आज के दक्षिणी स्वर सप्तक को आलोचकों द्वारा "टेम्पर्ड" स्केल कहा जाना लगभग संभावित है। परन्तु यह पाश्चात्य "टेम्पर्ड" सप्तक भी नहीं है। मुझे इस प्रश्न का उत्तर किसी दक्षिण पंडित से किसी दिन अवश्य ही प्राप्त करना होगा।